स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

MAAH-113

प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र

Ancient Indian Numismatics

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

कुलपति

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

॥ सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥

संदेश

प्रयागराज की पवित्र भूमि पर भारत रत्न राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के नाम पर वर्ष 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ0प्र0 का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय उ0प्र0 जैसे विशाल जनसंख्या वाले राज्य में उच्च शिक्षा के प्रत्येक आकांक्षी तक गुणात्मक तथा रोजगारपरक उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने में निरन्तर अग्रसर एवं प्रयत्नशील है। तत्कालीन देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में एक वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा व्यवस्था के रूप में भारत में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का पदार्पण हुआ था, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों तथा तकनीकी का सार्थक प्रयोग करते हुये मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा आज की सर्वोत्तम पूरक शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने व्याप्त पाँच मुख्य चुनौतियों - (i) पहुँच (Access), (ii) समानता (Equity), (iii) गुणवत्ता (Quality), (iv) वहनीयता (Affordability) तथा (v) जवाबदेही (Accountability) को केन्द्र में रखकर घोषित देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) के प्रस्तावों को क्रियान्वित करने में उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कृत संकल्पित है। उ0प्र0 की माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति की सद्इच्छाओं के अनुरूप उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, शैक्षिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी लगातार नवप्रयास कर रहा है। चाहे वह गाँवों को गोद लेकर उनके समग्र विकास का प्रयास हो या ग्रामीण महिलाओं, ट्रान्सजेन्डर व सजायाफ्ता कैदियों को शुल्क में छूट प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास जागृति व उच्च शिक्षा के प्रति अलख जगाने का प्रयास हो ।

राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा एक मूलभूत जरूरत है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तनों व वैश्विक स्तर पर रोजगार की परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तनों के कारण भारतीय युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में सफलता हेतु शिक्षा को सर्वसुलभ, समावेशी तथा गुणवत्तापरक बनाना समसामयिक अपरिहार्य आवश्यकता है। वर्तमान परिस्थितियों ने परम्परागत शिक्षा को और भी सीमित कर दिया है जिसके कारण मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था ही एकमात्र पूरक एवं प्रभावी शिक्षा व्यवस्था के रूप में सार्थक सिद्ध हो चुकी है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस दायित्व को एक चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान, परम्परा तथा सांस्कृतिक दर्शन व मूल्यों की समृद्ध विरासत के आलोक में सभी के लिए समावेशी व समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा देने के लिए अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में जागरूकता में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, परास्नातक डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक तथा शोध उपाधि के समसामयिक शैक्षिक कार्यक्रमों की संख्या तथा गुणात्मकता में वृद्धि की है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में संख्यात्मक वृद्धि, गुणात्मक वृद्धि तथा रोजगारपरक बनाने के साथ-साथ प्रत्येक उच्च शिक्षा आकांक्षी तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन केन्द्रों व क्षेत्रीय केन्द्रों के विस्तार के साथ-साथ प्रवेश परीक्षा, प्रशासन तथा परामर्श (शिक्षण) में आनलाइन व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया है। विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली में पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चियन की दृष्टि से तकनीकी के प्रयोग को बढ़ाया गया है। 'चुनौती मूल्यांकन' की व्यवस्था सुनिश्चित करने का कार्य किया गया है, तो शिक्षार्थी सहायता सेवाओं में भी वृद्धि की जा रही है। शिक्षार्थियों की समस्याओं के त्वरित निस्तारण हेतु शिकायत निवारण प्रकोष्ठ को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पुरातन छात्र परिषद को गतिशील किया गया है।

''गुरुकुल से छात्रकुल'' के सूक्त वाक्य को आत्मसात करते हुए विश्वविद्यालय ने शिक्षार्थियों को विश्वविद्यालय द्वारा तैयार किये गये गुणवत्तापूर्ण स्वअध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने के साथ-साथ विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर भी उपलब्ध कराया गया है। छात्रहित को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों द्वारा तैयार व्याख्यान को भी ऑनलाईन उपलब्ध कराया गया है।

शोध और नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर होते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) नई दिल्ली तथा माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति, उ0प्र0 की अनुमति से विश्वविद्यालय में शोध कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ किया गया है तथा वर्ष पर्यन्त समसामयिक विषयों पर व्याख्यान, सेमिनार, वेबिनार तथा आनलाइन संगोष्ठियों आदि की श्रृंखला भी प्रारम्भ की गयी है। विभिन्न क्षेत्रों में रिसर्च प्रोजेक्ट सम्पादन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है। पुस्तकालय को अत्याधुनिक तथा सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये गये हैं। शिक्षकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा कल्याण की योजनायें क्रियान्वित की गयी हैं।

प्रो0 सत्यकाम
कुलपति

MAAH-113

प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र

Ancient Indian Numismatics

उत्तर प्रदेश राजार्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम

इकाई 1 प्राचीन भारत में सिक्कों की उत्पत्ति एवं प्राचीनता, सिक्कों के निर्माण के तरीके

इकाई 2 आहत सिक्के–तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक एवं वजन मानक

इकाई 3 तांबे की लेखरहित ढले सिक्के

इकाई 4 स्थानीय सिक्के–मथुरा, पांचाल, अयोध्या, कौशाम्बी

इकाई 5 जनजातीय सिक्के–यौधेय, कुणिन्द, औदुम्बर, अर्जुनायन

इकाई 6 हिन्द–यवन सिक्के

इकाई 7 इंडो–पार्थियन सिक्के

इकाई 8 कुषाणों के सिक्के

इकाई 9 पश्चिमी क्षत्रप के सिक्के

इकाई 10 सातवाहन सिक्के

इकाई 11 गुप्तों के सिक्के

इकाई 12 हूणों के सिक्के

इकाई 13 मौखरी और वर्धन वंश के सिक्के

इकाई 14 पल्लव सिक्के

इकाई 15 चोल सिक्के

MAAH-113N

प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र

Ancient Indian Numismatics

परामर्श समिति

आचार्य सत्यकाम	कुलपति, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
कर्नल विनय कुमार	कुलसचिव, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो.सन्तोषा कुमार	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.जे.एन.पाल	पूर्व आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.हर्ष कुमार	आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.राजकुमार गुप्ता	आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग प्रो.राजेन्द्र सिंह रज्जू भैया विश्वविद्यलय,प्रयागराज
डॉ.सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास,समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

लेखक

डॉ.सुबास चन्द पाल	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास (संविदा)समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज (1से 15 इकाई)

सम्पादक

प्रो. विजय बहादुर सिंह यादव	आचार्य, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

पाठयक्रम समन्वयक

डॉ. सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2023

जून 2024 (मुद्रित)

ISBN- 978-81-973595-9-0

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज –2023

मुद्रकः– चंद्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज

इकाई 1–प्राचीन भारत में सिक्कों की उत्पत्ति एवं प्राचीनता, सिक्कों के निर्माण के तरीके

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 मुद्रा की उत्पत्ति एवं विकास

  1.2.1 प्रथम चरण।

  1.2.2 द्वितीय चरण।

  1.2.3 तृतीय चरण।

  1.2.4 चतुर्थ चरण।

1.3 सिक्का

1.4 प्राचीन भारतीय मुद्रा की उत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न मत

  1.4.1 यूनानी उत्पत्ति का मत

  1.4.2 पारसिक उत्पत्ति का मत

  1.4.3 बेबीलोन उत्पत्ति का मत

  1.4.4 भारतीय उत्पत्ति का मत

1.5 प्राचीन भारतीय मुद्रा का विकास

1.6 सारांश

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.8 संदर्भ ग्रन्थ

1.0 प्रस्तावना

सिक्के उत्खनन में या मुद्रा भंडार के रूप में पाए जाते हैं। वे ज्यादातर भंडार में पाए जाते हैं, जिनमें से अधिकांश एक खेत की खुदाई करते समय या किसी भवन की नींव की खुदाई करते हुए, सड़क आदि बनाते हुए पाए गए हैं। सिक्कों के अध्ययन को मुद्राशास्त्र कहा जाता है। इसे भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए दूसरा सबसे महत्वपूर्ण स्रोत और शिलालेखों को पहला स्रोत माना जाता है। भारत और विदेशों के विभिन्न संग्रहालयों में कई सौ हजार सिक्के जमा किए गए हैं। व्यवस्थित खुदाई में पाए गए सिक्के संख्या में कम हैं, लेकिन बहुतमूल्यवान हैं क्योंकि उनसे कालक्रम और सांस्कृतिक संदर्भ को ठीक से तय किया जा सकता है।

सिक्का एक धातु मुद्रा है और इसका एक निश्चित आकार, और वजन मानक है। इस पर जारी करने वाले प्राधिकरण की मुहर भी मिल सकती है। उस सतह पर जहाँ संदेश लिखा जाता है उसे अग्र व विपरीत पक्ष को उल्टा (reverse) कहा जाता है। प्रारंभिक भारतीय इतिहास में दूसरा शहरीकरण (लगभग 6वीं शताब्दी बी.सी.ई.) पहला उदाहरण है, जहाँ हमें सिक्के के साहित्यिक और पुरातात्विक दोनों प्रमाण मिलते हैं। यह राज्यों के उदय, कस्बों और शहरों के विकास और कृषि और व्यापार के प्रसार का समय था। प्रारंभिक भारत में सिक्के तांबे, चांदी, सोने और सीसे से बनते थे। पकी मिट्टी के बने सिक्के के सांचे, जो कुषाण काल (पहली तीन शताब्दियों सी.ई.) से संबंधित हैं, सैकड़ों में पाए गए हैं। वे इस समय के समृद्ध वाणिज्य को दर्शाते हैं। मौर्योत्तरकालीन सिक्के सीसा, पोटिन, तांबा, कांस्य, चांदी और सोने से बने थे उन्हें बड़ी संख्या में जारी किया गया था जिसमें हमें व्यापार में हुई वृद्धि के संकेत मिलते हैं।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको प्राचीन भारत में सिक्कों की उत्पत्ति, प्राचीनता एवं निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

1.2 मुद्रा की उत्पत्ति एवं विकास

मुद्रा का इतिहास बदले मेंपाने की इच्छा से दी गयी वस्तुओं से प्रारम्भ होता है, जिसे हम वस्तु–विनिमय प्रणाली (Barter System) के नाम से जानते हैं। यह वस्तु–विनिमय प्रणाली आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में यदा–कदा देखने को मिलती है। मुद्रा प्रणाली के विकास को हम निम्नलिखित चार चरणों के माध्यम से समझ सकते हैं –

1.2.1 प्रथम चरण

प्रारम्भिक भारतीय अर्थव्यवस्था जीवन–निर्वाह अर्थव्यवस्था थी। पूर्व एवं मध्य पाषाण–काल तक मानव जीविका आखेट और अन्न संग्रह पर निर्भर थी। इसलिए उनकी आवश्यकताएं भी सीमित थीं। आखेटक मानव मांस व खाल के बदले अनाज, कन्दमूल, फल इत्यादि प्राप्त करता था। अतः सर्वप्रथम विनिमय का माध्यम खाद्य सामग्रियां बनी।

1.2.2 द्वितीय चरण

वस्तु विनिमय प्रणाली में किसी वस्तु के बदले में वस्तु की कितनीमात्रा दी जाय तथा अदला–बदली का आधार क्या हो इत्यादि अनेक कारणों से अदला–बदली की प्रक्रिया में समस्यायें उत्पन्न होने लगीं। इन समस्याओं के निराकरण के लिए मनुष्य का ध्यान सर्वप्रथम पाषण के औजारों पर गया। पाषाण केउपकरण संचय और सुरक्षा की दृष्टि से उपयुक्त थे क्योंकि इनके खराब होने का भय कम था तथा ये लम्बे समय तक रखे जा सकते थे। इस प्रकार प'"ाु–पक्षी, भेड़–बकरियों के साथ–साथ पाषण के उपकरण भी विनिमय के माध्यम के रूप में स्वीकार किए जाने लगे।

1.2.3 तृतीय चरण

मानव समुदाय के विकास के साथ–साथ कालान्तर में स्वर्ण, रजतएवं ताम्र के ज्ञान के साथ ताम्राश्मयुगीन सभ्यता का सूत्र–पात हुआ। इस चरण में व्यापार का माध्यम शंख, प्रस्तर एवं धातु निर्मित मनके बने। सिन्धु सभ्यता की समकालीन मेसोपोटामिया की सभ्यता में व्यापार–विनिमय के निमित्त चाँदी के धातुखण्ड का प्रयोग होता था जिसे **शेकेल** कहते थे। मोहनजोदड़ो से भी चाँदी के चौकोर धातुखण्ड मिले हैं। सम्भवतः इनका प्रयोग भी विनिमय के माध्यम के रूप में होता रहा होगा।

1.2.4 चतुर्थ चरण

व्यापार विनिमय में धातु के प्रयोग में उसकी शुद्धता की जाँच आवश्यक थी। चूँकि परीक्षण और तौल में अधिक समय लगता था, इसलिए विनिमय के लिए एक नया माध्यम ढूँढ निकाला गया, धातु के इस नये माध्यम को हम सिक्का (Coin)/मुद्रा के नाम से जानते हैं।

1.3 सिक्का

भारतीय साहित्यिक विवरणों में इन धातुखण्डों को 'आहत' नाम दिया गया है। आहत सिक्कों को पंचमार्क सिक्के भी कहा जाता है क्योंकि इसमें पांच प्रकार के चिन्ह पाये जाते हैं। ये सिक्के रजत एवं ताम्र निर्मित होते थे।

- स्वर्ण निर्मित धातुखण्ड (आहत मुद्रा) अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है। स्वर्ण निर्मित धातुखण्डों का उल्लेख केवल साहित्यिक विवरणों (ऋग्वेद) में प्राप्त होता है। ऋग्वेद में इन धातुखण्डों को **निष्क और सुवर्ण** कहते थे।

इन स्वर्ण, रजत एवं ताम्र निर्मित निश्चित भार के धातुखण्डो को निम्नलिखित नामों से जाना जाता है–

धातु		नाम
स्वर्ण	–	निष्क, सुवर्ण
रजत	–	कार्षापण, शतमान, शाण (शतमान का 1/8)
ताम्र	–	माष, काकणी, विंशतिक

- मनुस्मृति में इन सिक्कों को धरण (निश्चित वजन धारण करते थे) एवं पुराण (पुराना) कहा गया है।

निष्क–निष्क का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद में चार स्थानों पर इसका उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में निष्क का उल्लेख स्वर्ण के आभूषण के रूप में मिलता है जो गले में धारण किया जाता था। इसे निष्कग्रीव कहते थे। पंचविष ब्राह्मण ग्रन्थ में प्रथम बार रजत निष्क का उल्लेख मिलता है। उत्तर वैदिक साहित्य में भी निष्क का प्रयोग दान एवं आभूषण के सन्दर्भ में ही प्राप्त होता है। कहीं भी इसका उपयोग विनिमय के माध्यम के रूप में नहीं मिलता है।

किन्तु आगे चलकर पाणिनि के अष्टाध्यायी में तीन सूत्रों में निष्क का उल्लेख हुआ है। जिसमें से दो सूत्रों में निष्क का प्रयोग वस्तुओं को क्रय करने के सन्दर्भ में हुआ है। पाणिनि के काल तक आते–आते निष्क मुद्रा का सूचक बन गया। जातक कथाओं में भी निष्क का उल्लेख मुद्रा के रूप में हुआ है।

शतमान– वैदिक काल में शतमान रजत एवं स्वर्ण दोनों ही धातुओं के बने होने का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में राजसूय यज्ञ के अवसर पर शतमान को दान दिए जाने का उल्लेख मिलता है। शतमान 100 के मान का धातु पिण्ड था।

रजत शतमान का प्राचीनतम उल्लेख मैत्रायणी संहिता में प्राप्त होता है। पाणिनि के अष्टाध्यायी में शतमान का उल्लेख रजत मुद्रा के रूप में हुआ है जिसका वजनलगभग 100 रत्ती (1.75) ग्रेन के बराबर है।

शाण– पाणिनि के काल में शाण नामक सिक्के का भी प्रचलन था। यह रजत से निर्मित था। यह शतमान का 1/8 होता था।

कार्षापण– कार्षापण का सर्वप्रथम उल्लेख सामविधान ब्राह्मण में हुआ है। कार्षापण स्वर्ण रजत एवं ताम्र तीनों ही धातुओं के बने होते थे। कार्षापण दो शब्दों से मिलकर बना है– कर्ष. पण।

जहां कर्ष एक प्रकार का बीज तथा पण एक धातु पिण्ड है। कर्ष के बीज के आधार पर धातुपिण्ड का भार–मान निर्धारित होने के कारण इसको कार्षापण नाम दिया गया मनुस्मृति में इन सिक्कों को धरण और पुराण नाम से सम्बोधित किया गया है।

शलाका मुद्रा (Bent Bar)– शलाका मुद्रायें गांधार क्षेत्र से प्राप्त हुई हैं जिनकी संख्या 33 है। शलाका मुद्राओं की तौल लगभग शतमान के बराबर होती थी। इनको प्यालीनुमा मुद्रायें भी कहते हैं।

शलाका मुद्रा

1.4 प्राचीन भारतीय मुद्रा की उत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न मत

प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र के जनक जेम्स प्रिंसेप हैं। मुद्रा के अध्ययन को मुद्राशास्त्र (Numismatic) कहा जाता है। मुद्रा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत दिए गए हैं जो निम्न हैं–

1.4.1यूनानी उत्पत्ति का मत

इस मत के प्रवर्तक जेम्स प्रिंसेप हैं। उनके अनुसार भारत में मुद्राओं का प्रचलन, बाख्त्री–यवन शासकों की मुद्राओं (द्राख्म) के अनुकरण पर आरम्भ हुआ। इसी प्रकार का विचार विल्सन महोदय का भी है। इन विद्वानों के इस मत का आधार बाख्त्री यवन एवं औदुम्बर मुद्रा में समानता है। किन्तु औदुम्बर मुद्राओं के बहुत पहले ही भारत में आहत मुद्राओं का प्रचलन हो गया था। सिकन्दर के आक्रमण के बहुत पहले ही (लगभग दो शताब्दी पूर्व) भारत में मुद्रा का प्रचलन था। इस बात का प्रमाण तक्षशिला से प्राप्त दो मुद्रा निधियां हैं। जिसके साथ डायोडोटस और सिकन्दर की मुद्रा भी प्राप्त हुई है। दोनों मुद्राओं के तुलनात्मक अध्ययन् से पता चलता है भारतीय मुद्राओं की अपेक्षा यूनानियों की मुद्रायें नई हैं। अतः यह मत स्वीकार्य नहीं है।

1.4.2 पारसिक उत्पत्ति का मत

इस मत के प्रवर्तक जे० ऐ० डिकार्डिमेन्चेज थे। ये भारतीय आहत मुद्रा की उत्पत्ति हखामनी मुद्राओं से मानते हैं। उनका कहना है कि हखामनी शासकों ने अपनी मुद्रा सिग्लोई (Sigloi) के साथ–साथ उसका भारतीय प्रकार, आहत मुद्राओं के रूप में प्रचलित किया। उनका यह तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि सिग्लोई मुद्रा टेलेन्ट के तौर पर निर्मित है जिनका वजन 86 ग्रेन है जबकि आहत मुद्राओं का मानक वजन 56 ग्रेन था।

1.4.3 बेबीलोन उत्पत्ति का मत

इस मत का प्रतिपादन केनेडी महोदय द्वारा किया गया।उनके अनुसार छठी शताब्दी ई०पू० में पश्चिम एशिया के साथ व्यापार प्रारम्भ करने के बाद भारतवासियों ने बेबिलोन की मुद्रा का अनुकरण करते हुए आहत मुद्राओं का प्रचलन किया था। बेबिलोनिया की शेकेल तथा भारतीय आहत मुद्रा में आकार, बनावट, बनाने की विधि आदि में काफी समानता है। किन्तु दोनों मुद्राओं में समानता के साथ–साथ कुछ अन्तर भी है। दोनों ही मुद्राओं की तौल, चिन्ह आदि में विभिन्नता है। आहत मुद्राओं की तौल 56 ग्रेन तथा शेकेल की तौल 132 ग्रेन है। आहत मुद्रायें भारत के मध्यवर्ती भागों में प्रचलित थीं इस क्षेत्र का बेबिलोन से कोई सम्बन्ध नहीं था और न ही भारत में शेकेल की प्राप्ति हुई है। अतः इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

1.4.4 भारतीय उत्पत्ति का मत

इस मत के समर्थक ई०जे० रैप्सन, कनिंघम, डी०आर० भण्डारकर, एस०के० चक्रवर्ती, ए०एस० अल्टेकर आदि इतिहासकार भारतीय आहत मुद्रा की स्वदेशी उत्पत्ति में विश्वास करते हैं। वैदिक साहित्य में प्राप्त कुछ मुद्रावाची शब्दों के आधार पर थामस तथा भण्डारकर जैसे विद्वान भारत में मुद्रा का प्रारम्भ वैदिक काल से मानते हैं। वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर निश्चित तौल के धातुखण्डों का उल्लेख मिलता है। किन्तु ऐसे निश्चित तौल के धातुखण्डों को, जिन पर किसी निश्चित प्राधिकारी अथवा संस्था द्वारा निर्धारित चिन्ह अंकित न किए गयेहों उन्हें धन तो कहा जा सकता है किन्तु मुद्रा नहीं।

वैदिक साहित्य में उल्लेखित 'हिरण्य' ऐसा ही मूल्यवान धातुखण्ड था। ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि एक ऋषि ने दिवोदास को दस अश्व, दस कोश, दस बहुमूल्य वस्त्र और दस हिरण्यपिण्ड प्रदान किए थे। सामान्यतः हिरण्य से तात्पर्य स्वर्ण से माना जाता है किन्तु संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में हरित हिरण्य (स्वर्ण) के साथ ही रजत हिरण्य (चाँदी) एवं हिरण्यबिन्दु (मोती) का उल्लेख मिलता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में धन के निश्चित परिमाण को हिरण्य कहा गया है। अतः इस बात की प्रबल सम्भावना है कि हिरण्य शब्द का प्रयोग वैदिक काल में धनसूचक मूल्यवान धातुखण्डों के लिए किया जाता था। जिसमें स्वर्ण एवं रजत दोनों ही धातु सम्मिलित थी। ऋग्वेद में एक स्थान पर धन के रूप में गाय एवं अश्व के साथ चन्द्रवत (रजत) का उल्लेख मिलता है। एक अन्य श्लोक में भारद्वाजधन के रूप में चन्द्र की वृद्धि के लिए प्रार्थना करते हैं। रजत का चांदी नामकरण सम्भवतः चन्द्रमा के समान धवल दिखाई देने के कारण ही पड़ा होगा।

पुरातात्विक साक्ष्य इस बात की पुष्टि करते हैं भारत के साथ–साथ विश्व के अनेक देशों में मुद्रा के प्रचलन के पूर्व निश्चित तौल के धातुखण्ड विनिमय के माध्यम के रूप प्रयोग किए जाते थे। ईरान, ईराक, सीरिया, मिस्र इत्यादि देशों से ऐसी निधियां प्राप्त हुई हैं। भारत में ऐसी निधियां आन्ध्र प्रदेश के सिंगावरम, उत्तर प्रदेश में बिजनौर जिले के शामियांवाला नामक स्थान से तथा मध्य प्रदेश में बालाघाट इत्यादि स्थानों से प्राप्त हुए हैं। बालाघाट के गुंगेरिया से प्राप्त ताम्रायुध निधियों के साथ रजत–पत्र से बनी गोल एवं गोमुण्ड आकार के कुछ रजत उपकरण

प्राप्त हुए हैं। चूँकि गाय वैदिक काल में विनिमय के माध्यम के रूप में स्वीकार की जाती थी अतः उसके प्रतीक के रूप में मुण्ड के आकार के रजत के धातु–पत्र भी स्वीकार किए जाते रहे होंगे। इस प्रकार निश्चित तौल के धातुखण्डों का विनिमय के माध्यम के रूप में प्रचलन लगभग 1,000 ई०पू० तक सम्पूर्ण विश्व में दिखायी देता है। अतः भारतीय मुद्रा की उत्पत्ति के सन्दर्भ में किसी भी अन्य मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

1.5 प्राचीन भारतीय मुद्रा का विकास

प्रमुख राजवंशों से संबंधित अधिकांश सिक्कों को सूचीबद्ध और प्रकाशित किया गया है। उपमहाद्वीप में सबसे पुराने सिक्के आहत सिक्के हैं। ये ज्यादातर चांदी के और कभी–कभी तांबे के होते हैं। कुछ सोने के आहत सिक्के भी मिले हैं लेकिन वे बहुत दुर्लभ हैं और उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। आहत सिक्कों पर केवल प्रतीक मिलते हैं। प्रत्येक प्रतीक को अलग– अलग आहत किया जाता है जो कभी–कभी एक दूसरे को अतिव्याप्त करते हैं। ये सिक्के पूरे देश में तक्षशिला से मगध तक मैसूर या उससे भी आगे दक्षिण में पाए गए हैं। उन पर कोई मुद्रा लेख व उत्कीर्णन मौजूद नहीं होता। मगध साम्राज्य के विस्तार के साथ मगध के आहत सिक्कों को प्रतिस्थापित किया गया जो अन्य राज्यों द्वारा जारी किए गए थे। इसके बाद, इंडो–ग्रीक सिक्के भी चांदी और तांबे में हैं और सोने के दुर्लभ हैं। उन पर सुंदर कलात्मक आकृतियाँ चित्रित हैं। इन सिक्कों के अग्रभाग पर राजा की अर्ध प्रतिमा का वास्तविक चित्रण होता था तथा पृष्ठ भाग पर कुछ देवताओं को दर्शाया जाता था। केवल इन सिक्कों के माध्यम से हम 40 से अधिक इंडो–ग्रीक शासकों के बारे में जानते हैं जिन्होंने उत्तर–पश्चिमी भारत में शासन किया था। इन सिक्कों से हम कई ऐसे शक– पहलव राजाओं के बारे में जानते हैं जिनके बारे में हमें किसी अन्य स्रोत से कोई जानकारी नहीं मिलती।

<u>इंडो–ग्रीक सिक्के पर देवता</u>

कुषाणों ने अपने सिक्के चांदी में कम और सोने और तांबे में ज्यादा जारी किए। उनके सिक्के उत्तर भारत के अधिकांश हिस्सों में वर्तमान बिहार तक पाए जाते हैं। गुप्त सम्राटों ने ज्यादातर सोने और चांदी के सिक्के जारी किए, लेकिन सोने के सिक्के अधिक हैं। भारतीय प्रभाव उन पर शुरू से ही देखा जा सकता है। विम कडफिसेस के सिक्के पर एक बैल के साथ खड़े शिव की आकृति मिलती है। इन सिक्कों पर मुद्रालेख में राजा स्वयं को महेश्वर यानी शिव का भक्त बताता है। कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव आदि, इन सभी राजाओं के सिक्कों पर यहचित्रण मिलता है। कुषाण के सिक्कों पर भारतीय देवी–देवताओं के साथ हमें कई फारसी और ग्रीक देवताओं के चित्र भी देखने को मिलते हैं। हालाँकि सबसे पुराने सिक्कों में केवल चिन्ह थे जो बाद में राजाओं, देवताओं के साथ उनकी तिथियों और नामों का भी उल्लेख करते थे। उदाहरण के लिए, पश्चिमी क्षत्रप के सिक्कों पर शक संवत् की तिथियाँ मिलती हैं। सिक्कों के प्रचलन ने हमें कई सत्तारूढ़ राजवंशों के इतिहास का पुनर्निर्माण करने में सक्षम बनाया है। सिक्के राजनीतिक संगठन पर बहुमूल्य जानकारी प्रदान करते हैं। मिसाल के तौर पर, यौधेय और मालव के सिक्के'गण' की विरासत को आगे ले जाते हैं, जो हमें उनके गैर राजतंत्रीय स्वरूप के बारे में बताता है। दक्कन के सातवाहन सिक्कों पर एक जहाज की छवि समुद्री व्यापार के महत्व की गवाही देती है।

सिक्कों को ढालने की परंपरा में गुप्तों ने कुषाणों की परम्परा को बनाए रखा। उन्होंने पूरी तरह से अपने सिक्के का भारतीयकरण किया। उन्होंने कई सोने के सिक्के भी जारी किए। दीनार के नाम से प्रसिद्ध सिक्के अच्छी तरह बने हुए थे। राजगद्दी पर बैठे राजाओं के विभिन्न मुद्राओं को दर्शाया गया हैः राजाओं को शेर या गैंडे का

शिकार करने, धनुष या युद्ध–कुल्हाड़ी पकड़ने, संगीत वाद्य बजाने या अश्वमेध यज्ञ करने जैसी गतिविधियों के साथ दर्शाया गया है। समुद्रगुप्त और कुमारगुप्त के सिक्के पर उन्हें वीणा बजाते हुए दिखाया गया है।

रानी कुमारदेवी और राजा चंद्रगुप्त प्रथम का चित्रण एक गुप्त स्वर्ण सिक्के पर

गुप्तोत्तर काल में सोने के सिक्कों की संख्याओं और शुद्धता में गिरावट आ गई थी। आर.एस. शर्मा की सामंतवाद पर आधारित अत्यधिक विवादास्पद धारणा है। उनके अनुसार सिक्कों की अद्योगति और कौड़ियों का बढ़ता उपयोग इस काल के व्यापार और वाणिज्य की गिरावट की ओर संकेत करता है।

1.6 सारांश

मुद्राशास्त्र (Numismatics) के अंतर्गत सिक्कों का अध्ययन किया जाता है। सर्वाधिक प्राचीन भारतीय सिक्कें आहत सिक्के (Punch Marked Coins) कहलाते है, जिन्हें भारतीय साहित्य में शतमान, कार्षापण भी कहा गया है, जो चाँदी, तांबे और कुछ सोने के भी मिले है।बैंकिंग प्रणाली न होने के कारण लोग अपना धन मिटटी व कांसे में छुपाकर सुरक्षित रखते थे।

आहत सिक्कों पर कुछ प्रतीक चिन्ह ही मिलते है लेकिन बाद में सिक्कों पर देवताओं व राजाओं के नाम व तिथियाँ भी मिलते है। राज्य की अनुमति प्राप्त होने पर व्यापारियों और स्वर्णकारों की श्रेणियों ने भी अपने सिक्कें चलायें।

हिन्द–यवन राजाओं ने ही सबसे पहले लेख–युक्त सिक्कें जारी किये थे। सर्वाधिक सिक्कें मौर्योत्तर कालों के मिलते हैं। सर्वाधिक शुद्ध स्वर्ण–मुद्राएँ कुषाणों ने जारी किये थे लेकिन सबसे ज्यादा स्वर्ण–मुद्राएँ गुप्त शासकों ने चलायें। गुप्तों ने ही सिक्कों का भारतीयकरण किया था।

प्राचीन भारत के सर्वाधिक सिक्कें मौर्योत्तर कालों के प्राप्त हुए हैं। जबकि सबसे कम सिक्के गुप्तोत्तर काल के प्राप्त हुए है। आहत सिक्के चाँदी, ताँबे व सोने के मिले है। हिन्द–यूनानी शासकों ने चाँदी, ताँबे व सोने के सिक्के, कुषाण शासकों ने ज्यादातर सोने व ताँबे के सिक्के जबकि गुप्त शासकों ने अधिकतर सोने व चाँदी के सिक्के जारी किये थे।मौर्योत्तर कालीन सिक्के मुख्यरूप से चाँदी, तांबे, सीसे, पोटिन, कांसे और सोने के मिले हैं।

गुप्त राजाओं ने सर्वाधिक मात्रा में सोने के सिक्के जारी किये थे।प्राप्त सिक्कों की गुणवत्ता और संख्या के आधार पर हम कह सकते हैं कि 1/6 की वाणिज्य और व्यापार मुख्यतः मौर्योत्तर काल में व गुप्त काल के अधिक भाग में खूब फला–फूला। इसके विपरीत गुप्तोत्तर काल में वाणिज्य–व्यापार की स्थिति खराब हो गयी थी।

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्राचीन भारत में बुद्ध के समय से लेकर गुप्त काल तक के सिक्कों के ऐतिहासिक विकास पर एक टिप्पणी लिखिये।

   ....

   ....

2. प्राचीन भारतीय मुद्रा के विषय में विभिन्न विद्वानों के मतों की विवेचना कीजिये।

....

....

3. प्राचीन भारतीय सिक्को की उत्पत्ति के विषय में वर्णन कीजिये।

....

....

1.8 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्त परमे''वरी लाल : भारत के पूर्वकालिक सिक्के।

राव राजवन्त एवं राव प्रदीप कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

चक्रवर्ती एस.के. : प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र का अध्ययन।

ब्राउन, सी.जे. : द कॉइन्स ऑफ इण्डिया।

ओझा, रायबहादुर गौरी''ंकर हीराचन्द्र : प्राचीन मुद्रा।

पाण्डेय, विमले''ा कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

इकाई 2–आहत सिक्के–तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक एवं वजन मानक

इकाई की रूपरेखा

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्दे”य

2.2 आहत सिक्के

2.2.1 नाम, धातु एवं तौल

2.2.2 सिक्के की प्रारम्भिक तिथि

2.3 तकनीक

2.4 वर्गीकरण

2.5 प्रतीक

2.6 वजन मानक

2.7 सारांश

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

2.0 प्रस्तावना

प्राचीनतम् भारतीय सिक्कों को पंचमार्क या आहत सिक्कों की संज्ञा दी जाती है। पुरासाहित्य में धरण शब्द तथा कालान्तर में कार्षापण नाम से भी इनका संज्ञापन होता है। ये सिक्के चांदी की धातु से निर्मित किये जाते थे। पाणिनि की अष्टाध्यायी सूत्र के अनुसार उनके काल में सिक्के आहत करके बनाये जाते थे। 'सर्वप्रथम मुद्राशास्त्रियों में इन्हें विमर्श का विवरण तब बनाया गया, जब 1800 ई0 के आस–पास काल्डवेल को दक्षिण भारत के कोयम्बटूर जिले के एक स्तूप में तीन अत्यन्त पुराने और घृष्ट रजत सिक्कों के नमूने प्राप्त हुए। 'अर्थशास्त्र से इन सिक्कों की निर्माण प्रक्रिया पर प्रकाश पड़ता है एवं सिक्का बनाने में प्रयुक्त उपकरणों का उल्लेख है। इन उपकरणों में लौह अर्थात धातु, पात्र, क्षार, अंगार, अधिकरणी, मुष्टीक (हथौडा), भस्त्र तथा बिम्बटक आदि प्रमुख हैं। इन्हीं के आधार पर अनुमान किया गया है कि, धातु को सबसे पहले पात्र में रखकर अंगार पर जलाया जाता था, फिर क्षार से साफ किया जाता था। पुनः धातु को निहाई पर रखकर इसे पीटकर चादर बनाकर कर्तनी से छोटे–छोटे टुकड़े बनाये जाते थे। टुकड़ों को बिम्बटन आहत कर सिक्कों का रूप दिया जाता था। धातु टुकड़ों को काट–छांट कर समुचित तौल का बनाया जाता था, इसलिए इनमें एकरूपता नहीं दिखाई पड़ती।

साहित्यिक प्रसंगों के आधार पर कुछ उत्साही विद्वान कहते हैं कि वैदिक युग में सिक्कों का प्रचलन था। सोने के कंठे के रूप में निष्क की चर्चा उपहार के प्रसंगों में पाई जाती है, लेकिन इसमें बहुत संदेह है कि वैदिक युग में इसकी बिक्री और खरीद होती थी। तात्पर्य यह है कि आहत सिक्के ही भारत के प्राचीनतम सिक्के हैं।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको आहत सिक्कों की उत्पत्ति, तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक, वजन मानक एवं निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

2.2 आहत सिक्के

वैदिक काल में सोने का उपयोग मुख्यतः लोग आभूषणों के लिए करते थे। बाद में उसका प्रयोग लेन–देन और विनिमय में भी होने लगा था। सोने की यह लोकप्रियता पीछे भी बहुत दिनों तक बनी रही और वह बहुलता के साथ उपलब्ध भी था। हेरोदोत ने लिखा है कि ईसा पूर्व 518 और 350 के बीच जब हखमनी साम्राज्य के अन्तर्गत

भारत का एक भू–भाग था, यहाँ से प्रतिवर्ष कर–स्वरूप 300 टेलेंट सुवर्ण–चूर्ण जाता था। यह सब होते हुए भी वारिन्त्रयों के भारत में प्रवेश करने के पूर्व (दूसरी–पहली ई० पू० तक) का सोने का बना कोई सिक्का इस देश में उपलब्ध नहीं है। जो भी आदिम सिक्के ज्ञात हैं वे सभी चाँदी के हैं। कदाचित् इसका कारण यह है कि उन दिनों संसार के अन्य देशों की अपेक्षा भारत में सोना सस्ता था और यहाँ से निर्यात होता था और बदले में चाँदी आया करती थी।

आरम्भिक दिनों में सिक्के किस प्रकार बनाये जाते थे, इसकी कोई चर्चा साहित्य में कहीं उपलब्ध नहीं है। हाँ, चन्द्रगुप्त मौर्य के मंत्री कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में, जिसकी रचना ई०पू० चौथी शती में हुई थी, कूट–रूप–कारकों (जाली सिक्का बनानेवालों) की चर्चा की है। इस प्रसंग में उन्होंने सिक्के बनाने के उपयोग में आने वाले उपकरणों का उल्लेख किया है। उनकी इस सूची को देखकर कहा जा सकता है कि धातु पहले मूष (घरिया) में रखकर गलायी जाती थी और क्षार से उसको साफ किया जाता था। तदनन्तर धातु को अधिकर्णी (निहाई) पर रखकर मुष्टिक (हथौड़े) से पीटा जाता था। बाद में संदश (कतरनी) से उसके टुकड़े बनाये जाते थे और अन्त में इन टुकड़ों पर बिम्ब–टंक से छाप लगायी जाती थी। आज भी सिक्के बनाने के लिए टकसालों में लगभग यही प्रक्रिया की जाती है, अन्तर केवल इतना ही है कि आज ये सभी काम स्वचालित यंत्रों द्वारा किये जाते हैं। तत्कालीन सिक्कों को देखने से ज्ञात होता है कि धातु के टुकड़ों को वजन संतुलित करने के लिए काटा–छाँटा जाता था। फलस्वरूप वे सभी ज्यामितिकआकारों के–गोल, चौकोर, अण्डाकार आदि रूप में देखने में आते हैं। कभी–कदा सिक्के बनाने के लिए अपेक्षित वजन में धातु लेकर गलाते थे, फिर पिघली हुई धातु को भूमि अथवा किसी समतल वस्तु पर उड़ेल दिया जाता था और वह जमकर स्वतः अपना कोई रूप धारण कर लेता था। कभी–कदा धातु को पिघलाकर उसकी गोली बना ली जाती थी फिर उसको पीटकर चिपटा कर लेते थे। इस प्रकार तैयार किये गये धातु–फलकों पर एक ओर बिम्ब–टंकों द्वारा अपेक्षित चिह्न छाप दिये जाते थे। आरम्भकालीन इन सिक्कों पर इस प्रकार टंकित एक से पाँच चिह्न देखने में आते हैं। इसका अर्थ यह है कि सिक्के बनाने के लिए आज की तरह केवल एक ठप्पे का प्रयोग न कर एक से अधिक ठप्पों द्वारा अलग–अलग चिह्न अंकित किये जाते थे। निर्माण की इस पद्धति के आधार पर मुद्रातत्त्वविदों ने इन सिक्कों को आहत–मुद्रा (पंच मार्क्ड क्वाइन) का नाम दिया है।

आहत सिक्के मुख्यतः त्रिकोण, चतुष्कोण, पंचकोण, षटकोण, गोल तथा अण्डाकार आदि अनेक प्रकार के पाये जाते हैं। इन सिक्कों पर अलग–अलग बिम्ब टंकों से एक से पाँच तक लांछन पाये जाते हैं। निर्माण तकनीकी के कारण इन्हें आहत सिक्का कह दिया गया। इस काल केकुछ सिक्के एक अन्य पद्धति से भी निर्मित किये गये हैं। सर्वप्रथम धातु को गलाकर समतल भूमि पर फैला दिया जाता था। धातु को आकार लेने के बाद एवं जमने के पूर्व दबाकर बिंब अंकित कर दिया जाता था। इस पद्धति से बनाये गये सिक्के कुछ सीमित क्षेत्र से मिले हैं। तकनीकी दृष्टि से इन्हें आहत सिक्कों की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। कुछ साम्य के कारण इनकी चर्चा आहत मुद्राओं के साथ की जा सकती है।

'चिन्हित सिक्के कई प्रकार के मिलते हैं–लम्बा, चपटा, चतुर्भुज, चौकोर, गोलाकार, पंच या षटकोण सहित। आहत सिक्कों में पाये जाने वाले चिन्हों की संख्या बहुत अधिक है। जिनमें वृक्ष, पशु–पक्षी, कीट, मनुष्य, पुष्प, ज्यामितीय आकृतियाँ, धार्मिक चिन्ह आदि नाना प्रकार के बिम्ब मिलते हैं। बिम्बों की संख्या अधिक होने के बावजूद इन सिक्कों के टंकण में एक निश्चित संख्या व्यवस्थित है। प्रत्येक बिम्ब किसी क्षेत्र विशेष, वर्ग अथवा धातु सिक्कों से सम्बन्ध रखता है। बिम्बों को देखकर आहत सिक्कों के प्रसार क्षेत्र, राज्य और काल का सहज भाव से अनुमान लगाया जा सकता है। बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि रूप परीक्षक सिक्के किस क्षेत्र, पर्वत, नगर औरनदी से सम्बन्धित हैं।

इन बिम्बों का अभी तक समुचित विश्लेषणात्मक अध्ययन नहीं हुआ है। अनुमान यह है कि ये बिम्ब प्रचलित करने वाले व्यापारियों, निगमों एवं श्रेणियों के प्रतीक हैं। अन्य मुद्राशास्त्री इन बिम्बों को राजन्य, राज्य अथवा उसका प्रतीक टकसाल या नगर का संकेत अनुमानित करते हैं। प्रारम्भ में बिम्ब सिक्कों के चित् भाग पर अंकित किये जाते थे, पट भाग एकदम कोरा रहता था।

कालान्तर में पट भाग पर भी बिम्ब टंकित किया जाने लगा, परन्तु पट की ओर के बिम्ब आकार की दृष्टि से चित की तुलना में अत्यन्त छोटे होते थे। किसी पर एक ही प्रकार के दो बिम्ब हैं तो किसी पे दस बारह। सिक्कों पर कोई बिम्ब एकदम ताजा तथा कोई–कोई घिसे हुये मिलते हैं। यद्यपि कतिपय विद्वान इन चिन्हों का

सम्बन्ध धार्मिक पक्ष से मानते हैं, किन्तु धार्मिकता के विचार को पृथक नहीं किया जा सकता है। अनुमान किया गया है कि बिम्ब लोक व्यवहार के दौरान समय–समय पर अंकित किये गये होंगे। जो सिक्के प्रचलन में अधिक रहे, उन पर चिन्हों कीसंख्या अधिक है। बनावट एवं प्रचलन की दृष्टि से क्षेत्र विशेष में सीमित रहने वाले सिक्कों को स्थानीय आकृति मुद्रा एवं जनपदीय आहत मुद्रा नाम दिया गया है। आहत मुद्राओं के ठप्पों में लेख न होकर मात्र प्रतीक थे।

आहत सिक्कों की बहुत बड़ी संख्या ऐसे सिक्कों की है, जिनका तौल एवं बिम्ब विधान एक सा है। ये सम्पूर्ण क्षेत्र में पूर्व में ढाका से लेकर पश्चिम में अफगानिस्तान, उत्तर में कोंकण घाटी से लेकर तिरूवनपल्ली तक बिखरे पाये गये हैं। सम्भवतः इस भाँति के सिक्के किसी ऐसी सत्ता द्वारा प्रचलित किये गये थे, जिनका सम्पूर्ण देश पर अधिकार अथवा प्रभाव था। मुद्राविदों ने ऐसे सिक्कों को सार्वदेशिक एवं साम्राज्यिक आहत मुद्रा नाम दिया। तथा इन्हें मगध के सुप्रसिद्ध सिक्कों के रूप में पहचाना गया है।

2.2.1 नाम, धातु एवं तौल

भारत के राष्ट्रीय सिक्के का नाम पण माना गया है जो कर्ष (बीज) द्वारा तौलने के कारण कार्षापण कहलाया। ईसवी सन् पूर्व लेखों में (नानाघाट) कार्षापण (प्राकृत कहापन) के नाम उल्लिखित हैं। इन सिक्कों के परीक्षण से ज्ञात होता है कि गर्म धातु को पीटकर तथा अमुक आकार का तैयार कर कारीगर उस पर मुद्रा–चिह्न दिया करता था। इनकी निर्माण–शैली के कारण ही सन् 1835 ई० में प्रिंसेप ने भारत के प्राचीनतम सिक्के को पंचमार्क (पंच से निशान बनाना) का नाम दिया। उसी कारण 'आहत सिक्का' या चिह्नित सिक्का नाम से नया नामकरण किया गयाहै। भारत में अधिकांश संख्या में चाँदी के आहत सिक्के (कार्षापण) उपलब्ध हुए हैं, किन्तु स्मृति–ग्रंथ में निम्न पंक्ति मिलती है– ''कार्षापणस्तु विज्ञेयः ताम्रिकः कार्षिकः पणः'' जिससे प्रकट होता है कि कार्षापण ताँबे के भी बनते रहे हैं। भारत में प्राप्त ढेरों में ताँबे के कार्षापण का अभाव है। शायद स्मृति में वर्णित कार्षापण अप्राप्य हैं। पाटलिपुत्र खुदाई से ताँबे के आहत सिक्के मिले हैं। कालान्तर में लेखकों ने इसे पुराण (पर्ण) का भी नाम दिया, जिससे अन्य विदेशी सिक्कों से उसके नाम में अंतर (पुराण–पुराना) किया जा सके।

कार्षापण के लिए चाँदी का स्रोत क्या था, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। पश्चिमोत्तर प्रदेश में ईरान से चाँदी का आयात हुआ होगा, इसमें सदेह नहीं किया जा सकता है, परन्तु कार्षापण तो समस्त भारत से प्राप्त हुआ है। अतएव सिक्कों की चाँदी की उपलब्धि का प्रश्न सम्मुख आ जाता है। एक विचारधारा के इतिहासवेत्ता भारतीय चाँदी को ही कार्षापण का स्रोत मानते हैं। बंगाल, उत्तर प्रदेश, राजस्थान में चाँदी की खानें होंगीं, जिनका प्रयोग सिक्कों के लिए किया जाता था। बिहार के भागलपुर तथा मुंगेर के भूभाग से आरजेन्टिफेरस सीसा खान से निकलता था जिससे सिक्कों के लिए चाँदी तैयार की जाती थी। अतः इसे विदेशी स्रोत मानना उचित नहीं होगा। 16 चाँदी के कार्षापण (जिनकी तौल 56 ग्रेन थी) 144 ग्रेन तौल वाले 16 ताँबे के पण के बराबर मूल्य के समझे जाते थे। साधारणतया आहत सिक्के 52 रत्ती के होते हैं, किन्तु भीर टीले से प्राप्त सिक्कों की तौल 32 रत्ती मिलती है। सिक्कों के प्रचलन से भी तौल में कमी हो जाती है।

जहाँ तक तौल का प्रश्न है, चाँदी के आहत सिक्के 56 रत्ती तथा शतमान 100 रत्ती के बराबर तौल (180 ग्रेन) में मिले हैं, और हल्के सिक्के 20 – 40 ग्रेन में। किन्तु सामान्यतः 40–60 रत्ती तौल के बराबर कार्षापण मिले हैं। स्मृतियों में 80 रत्ती के तौल का उल्लेख है।

2.2.2 सिक्के की प्रारम्भिक तिथि

भारतवर्ष में मुद्रा–निर्माण का विषय विवादास्पद है। विदेशी लेखक लिडिया या बैक्ट्रिया के सिक्कों से कार्षापण की उत्पत्ति बताते हैं, अर्थात् ईसवी–पूर्व पाँचवीं सदी के पश्चात् भारतीय सिक्कों का प्रचलन हुआ। भारतवर्ष में पश्चिमोत्तर प्रदेश की खुदाई में आहत सिक्के सिकन्दर की मुद्रा के साथ मिले हैं। जो पूर्व–मौर्यकालीन हैं। उन्हीं को मौर्य–शासकों ने प्रचलित किया। काशिका के अनुसार नंद राजाओं ने माप–तौल की प्रणाली निकाली–''नन्दो क्रमाणि मानानि''। इससे प्रकट होता है कि नंदों ने व्यापार की सुविधा के लिए माप–तौल के साथ–साथ, सिक्के–निर्माण की प्रणाली आरम्भ की। उनके पश्चात् भारतीय शासक उसी का अनुसरण करते रहे। अतएव सिकन्दर या डियोडोटस के सिक्कों के साथ आहत सिक्कों की उपलब्धि स्वाभाविक है। उससे यह अर्थ नहीं निकलता है कि भारतवासियों ने यूनानी सिक्कों का अनुकरण किया था। यह स्पष्ट है कि भारतीय यूनानी सिक्के ठप्पे की प्रणाली द्वारा निर्मित हुए थे, किन्तु अवन्ती में मालव–जाति ठप्पे का व्यवहार उससे भी पहले से जानती थी।

अतः ईसा पूर्व छठी सदी से आहत सिक्के भारत में अवश्य प्रचलित हुए होंगे।

ब्राह्मण ग्रंथों में 100 रत्ती के शतमान का उल्लेख है। अतः भारत में कम–से–कम ईसा पूर्व 800 वर्ष में सिक्कों का प्रचलन था। यही कारण है कि भारत की चिह्नित मुद्राएँ संसार में प्राचीनतम समझी जाती हैं।

भारत में खुदाई के आधार पर भी इन सिक्कों की तिथि का निर्णय सम्भव हो पाया है। गंगा की घाटी में एक प्रकार की मिट्टी के पात्र मिले हैं, जिन्हें उत्तर भारतीय काले लेप वाले पात्र (N.B.P. ware) कहते हैं। विद्वान् इस प्रकार की मिट्टी के पात्रों की प्रारम्भिक तिथि ईसा पूर्व 600 तक मानते हैं। रूपेर, हस्तिनापुर, प्रहलादपुर, उज्जैन, महेश्वर, कुम्रहार, राजगिर तथा वैशाली से खुदाई में जो काले पात्र (N. B. P.) मिले हैं, उनके साथ आहत सिक्के (P.M.C.) भी प्राप्त हुए हैं। वैज्ञानिक ढंग से उस पात्र की आरम्भ–तिथि (C-14 dating) ईसा पूर्व 600 के आसपास आंकी गई है। अतएव आहत सिक्कों (P.M.C.) की तिथि उसी के समीप निश्चित करना उचित होगा।

यदि यूनानी तथा पंचमार्क (पण) का तुलानात्मक अध्ययन किया जाए तो पता चलता हैकि–

- पंचमार्क (आहत) सिक्कों का कोई निश्चित आकार नहीं था। उनके नाम के भी स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलते। उनका निर्माण भारतीय तौल–पद्धति पर आधारित था। आहत सिक्कों पर अधिक चिह्न दिखाई देते हैं। किसी प्रकार का सुव्यवस्थित आकार नहीं मिलता है। उन सिक्कों पर मुद्रा–लेख का अंकन अभी तक ज्ञात नहीं है। अतएव इनकी तिथि यूनानी सिक्कों से पहले की अवश्य है।

- यूनानी राजाओं ने जितने सिक्के भारत में प्रचलित किए, उनको कलात्मक ढंग से तैयार किया गया था। चाँदी की मुद्राएँ गोलाकार तथा ताँबे के वर्गाकार थे। यूनानी द्रम (drachm) के बराबर तौल में तैयार किए गए, जिन पर देवी–देवताओं तथा राजाओं की मूर्तियाँ अकित थीं। सबसे अधिक विशेषता यह थी कि उनपर यूनानी भाषा में लेख खुदे थे। कालान्तर में उनपर भारतीय प्रभाव पड़ा।

2.3 तकनीक

चिह्नित सिक्के कई प्रकार के मिलते हैं–लम्बा, चपटा, चतुर्भुज, चौकोर, गोलाकार, पच या षट्कोण सहित। सर्वप्रथम चाँदी की छड़ को काटकर सिक्के तैयार किए जाते थे। जिसे वक्र शलाखा मुद्रा (bent bar coin) कहते हैं और उनमें मोड़ रहता था। कालान्तर में छड़ों को पीटकर चपटा कर दिया जाता और उन पर चिह्न अंकित किए जाते थे। पीटने के कारण सिक्कों का आकार सुनिश्चित नहीं रहता था तथा वे भद्दे हो जाते थे। तीसरे प्रकार की शैली कुछ वैज्ञानिक थी। चाँदी या ताँबे के पत्तर को पतला बनाकर एक विशेष आकार (गोल, चौकोर) के छोटे टुकड़े काट लिए जाते थे। उनकी तौल 32 ग्रेन रखा जाता था और अधिक होने पर काट लिया जाता था, इससे आकार बदल जाता था। तत्पश्चात् उन पर चिह्न लगाया जाता था। इसलिए सिक्के सुन्दर आकार के नहीं रह जाते थे। सर्वप्रथम पतली चादर तथा बाद में मोटी चादर से काटकर सिक्के बनने लगे।

इस ढंग के कार्षापण किस स्थान पर तैयार किए जाते थे, यह कहना कठिन है। ऐसे कार्षापण अनगिनत संख्या में उपलब्ध हुए हैं। अतः यह सुझाव रखा जा सकता है कि भारत में सर्वत्र इस प्रणाली को काम में लाया जाता होगा।

इस आहत (पीटना) प्रणाली के अतिरिक्त सिक्का ढालने की क्रिया भी ज्ञात थी। साँचे में नली द्वारा गली धातु डाल दी जाती थी और उस साँचे में विभिन्न चिह्न बने रहते थे। ठंडा होने पर इच्छित आकार–प्रकार का सिक्का तैयार हो जाता था। मथुरा के क्षेत्र से ऐसे ढले सिक्के प्राप्त हुए हैं। ठप्पा में गरम धातुपिण्ड को दबाकर सिक्का तैयार किया जाता था। एरण (जि० सागर, मध्य प्रदेश) में काँसे का एक ठप्पा मिला है। इसमें गोलाकार चिह्नित सिक्के तैयार किए जाते थे। इस तरह ईसवी–पूर्व में कार्षापण तीनों प्रणालियों द्वारा – (अ) पत्तर काटकर, (ब) साँचे में ढालकर तथा, (स) ठप्पे से निशान लगाकर तैयार होते थे।

2.4 वर्गीकरण

आहत सिक्कों पर अकित चिह्नों के आधार पर भी उनका विभाजन किया जाता है। चिह्नों की जानकारी से वर्गीकरण में सहायता मिलती है।

(अ) साधारण आकृति –

1. सूर्य की आकृति,

2. षडर चक्र,

3. वृत्त, तीन बाण तथा 'म' अक्षर सहित,

4. पर्वत–कभी अर्धचन्द्रमा, मोर, कुत्ता आदि ऊपरी भाग पर स्थित,

5. वेदिका में (शाखाओं सहित पीपल का वृक्ष),

6. स्वस्तिक,

7. नन्दिपाद,

8. उज्जयिनी चिह्न,

9. स्तूप–वृक्ष या पशु सिरे भाग पर।

(ब) पशु की आकृति–

हस्ती, नन्दि, कुत्ता, खरगोश, भेड़िया, गैंडा, बिच्छू, शेर, अश्व, मछली, मेंढ़क, सूर्य।

(स) पक्षी–मोर ।

(द) आयुध–चक्र, धनषु, बाण।

(प) ज्यामिति आकृति–एक पंक्ति में कई वृत्त, वर्गाकार चिह्न त्रिभुज।

(फ) नदी

(य) मनुष्य की आकृति एक या अधिक (तीन) मनुष्यों की आकृतियों का समूह इन्हीं चिह्नों में से समूह में मिलाकर पाँच चिह्न अग्रभाग पर दिखाई देते हैं। प्रायः चिह्नों का मिलान सर्वत्र ही पाया जाता है।

1. सीमान्त प्रदेश।

2. गंगाघाटी–एटा, सकिसा, बलिया, चाइबासा, मेदिनापुर (बंगाल)

3. दक्षिण भारत–कोल्हापुर, त्रिचनापल्लि।

4. राजस्थान तथा मालवा।

5. पश्चिमी भारत–झेलरापाटन, अरावली, विन्ध्य से प्राप्त सिक्कों के परीक्षण तथा चिह्नों की समानता से यह कहा जा सकता है कि एक ही शासन में, संभवतः मौर्य युग में, उन सिक्कों का प्रचलन हुआ होगा।

(1) **पाँच चिह्न**–ऊपर लिखित चिह्नों को मिलाकार कई समूह बनाकर सिक्कों को अकित किया गया था। टाराइन चिह्न के साथ अनेक समूह दिखाई देते हैं। सूर्य, बिन्दुयुक्त वृत्त, तीन टाराइन चिह्न–समूह (तीन बाण या नन्दि मुख सहित), हस्ति तथा वेदिका में वृक्ष के चिह्न बार–बार अंकित किए गए हैं। शायद लोकप्रियता के कारण अग्रभाग पर अंकित किए गए थे। इस प्रकार पाँच चिह्नों का समूह तथा अग्रभाग में सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया था। दो सूर्य आकृति, बिन्दुयुक्त वृत्त तीन बाणों को दो भिन्न–भिन्न समूह तथा टाराइन (गोमुख ४ के साथ) को मिलाकर पाँच का समूह बन जाते हैं। पाँच चिह्नों सहित कार्षापण को सुन्दरता के साथ तैयार किया गया है। चिह्नों का अंकन भलीभाँति दिखाई देता है। इनमें जन्तुओं के वर्ग से चिह्नों का चुनाव किया गया होगा। कुछ प्रसिद्ध भारतीय चिह्न जैसे स्वास्तिक, उज्जयिनी चिह्न, नन्दिपाद का अभाव–सा है जिन्हें अन्य भारतीय मुद्राओं पर देखते हैं।

आहत सिक्कों के पृष्ठभाग पर तीन या कभी दो चिह्न दिखाई देते हैं, किन्तु इतने घिस गए हैं कि स्पष्टतया दिखाई नहीं देते हैं। कुछ चिह्नों को छोड़कर अधिकतर पृष्ठभाग पर छोटे चिह्न (एक या दो) हैं। सूर्य, पर्वत, टाराइन तथा मनुष्यों का समूह आदि चिह्न मिलते हैं।

2.5 प्रतीक

आहत मुद्राओं के ठप्पों में लेख न होकर मात्र प्रतीक थे, अर्थात् उन पर नाना आकार के पर्वत, वृक्ष, पशु,

पक्षी, संसृप, मानव, पुष्प आदि आकृतियाँ अथवा ज्यामितिक आकार, धार्मिक प्रतीक अथवा तत्प्रभृत अन्य चिह्नों का अंकन पाया जाता है। इस प्रकार इन सिक्कों पर अंकित किये जानेवाले प्रतीकों (चिह्नों) की संख्या कई सौ है। इन सिक्कों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन लांछनों का प्रयोग किसी निश्चित व्यवस्था के अनुसार किया गया था। ये प्रतीक (लांछन, चिह्न) प्रान्तविशेष अथवा भाँतविशेष के अनुसार अपनी भिन्नता व्यक्त करते हैं। इस प्रकार एक प्रदेश अथवा राज्य के सिक्के दूसरे प्रदेश अथवा राज्य के सिक्कों से अलग पहचाने जा सकते हैं और टकसाल तथा काल के अनुसार छाँटे जा सकते हैं।

पहले कहा गया है कि ये सिक्के मूलतः एक ही ओर टंकित किये जाते थे। सुविधा के लिए इसे सिक्के का चित भाग कह सकते हैं। इनका दूसरा अर्थात् पट भाग एकदम सादा बिना किसी चिह्न के होता था। काल–क्रम में पट ओर भी कुछ चिह्न अंकित किये जाने लगे। किन्तु पट ओर के ये चिह्न टकसाल के न थे। अनुमान किया जाता है कि उन्हें सर्राफ अथवा पारखी (रूप–दर्शक, रूप–तर्क) व्यवहार के बीच समय–समय पर धातु और वजन की परख के प्रमाणस्वरूप अंकित करते रहे होंगे। इस प्रकार एक ही भाँत के चित्त और समान चिह्न अथवा चिह्न–समूहवाले सिक्कों का पट सादा अथवा नन्हें चिह्नों से अंकित देखने में आता है। इन नन्हें चिह्नोंकी संख्या एक–दो हो सकती है और दस–बारह भी। यही नहीं, ये चिह्न, जिनकी छाप बहुत हलकी होती है, एक ही सिक्के पर कुछ ताजे और कुछ घिसे देखे जा सकते हैं और ये इस बात के द्योतक हैं कि जो सिक्का अधिक दिनों तक व्यवहार में रहा, उस सिक्के की अपेक्षा जो कम प्रचलन में रहा, अधिक चिह्न हैं और जिस पर कोई चिह्न नहीं है, वह या तो व्यवहार में आया ही नहीं या व्यवहार के बीच सर्राफ अथवा पारखी तक पहुँच नहीं पाया अर्थात् वह अधिक दिनों तक चलन में नहीं था। ये नन्हें चिह्न इस बात के भी प्रतीक हैं कि प्रामाणिकता की छाप होते हुए भी जनता सिक्कों के धातु और मूल्य के प्रति सशंक बनी हुई थी।

आदिकालीन ये आहत–मुद्राएँ बहुत बड़ी मात्रा में और देश में लगभग सर्वत्र बिखरी मिली हैं। इनमें प्राचीनतम सिक्के तो वे हैं जो किसी स्थान अथवा प्रदेश–विशेष तक ही सीमित रहे उन्हें उन जनपदों अथवा महाजनपदों ने प्रचलित किये होंगे जो महाभारत–युद्ध (ई०पू० ग्यारहवीं शती) के बाद बच रहे थे और जिन्हें पीछे मगध साम्राज्य ने आत्मसात् कर लिया। इस मगध साम्राज्य का उदय ई०पू० पाँचवीं शती में हुआ और ई०पू० चौथी शती आते–आते वह लगभग सारे देश पर छा गया। जिन जनपदों के सिक्के ज्ञात हो पाये हैं वे हैं–शूरसेन (मथुरा के आसपास फैली व्रजभूमि), उत्तर पंचाल (रुहेलखण्ड का क्षेत्र), दक्षिण पंचाल (गंगा से चम्बल तक विस्तृत दो–आब का भाग), वत्स (गंगा के दक्षिण अवन्ति अथवा उज्जैन की सीमा तक फैला भू–भाग), कोसल (पश्चिम में गोमती, दक्षिण सर्पिका आधुनिक सई, पूर्व में सदानीरा आधुनिक गण्डक और उत्तर में नेपाल के पर्वतों से घिरा भू–भाग), काशी (वाराणसी के चारों ओर स्थित भूभाग जिसमें जौनपुर, गाजीपुर और मिर्जापुर जिलों का भाग सम्मिलित है), मल्ल (देवरिया जिला और उससे लगा गोरखपुर जिले का भूभाग), मगध (उत्तर में गंगा, पश्चिम में सोन, दक्षिण में छोटा नागपुर के पठार तक फैला वन–प्रान्त, और पूरब में भागलपुर के क्षेत्र से घिरा भूभाग), बंग (बंगाल), कलिंग (उड़ीसा में वैतरणी से लेकर आंध्र की सीमा तक का समुद्रीय तटवर्ती प्रदेश जो पश्चिम में अमरकण्टक के पर्वतीय वन–प्रदेश तक विस्तृत था), आंध्र (कृष्णा और गोदावरी का काँठा), अश्मक (गोदावरी के दक्षिण महाराष्ट्र का भूभाग), सुराष्ट्र (काठियावाड़ प्रदेश) और गन्धार (अफगानिस्तान की सीमा से लगा पश्चिमोत्तर प्रदेश)

2.6 वजन मानक

सुराष्ट्र के सिक्के लगभग 15 ग्रेन वजन के और आकार में छोटे और पतले हैं। उन पर लांछन लगभग अपने पूरे स्वरूप में अंकित मिलता है, किन्हीं–किन्हीं सिक्कों पर किनारे का भाग कटा होता है। इन पर मुख्य रूप से छोटे–छोटे कतिपय चिह्नों से घिरे वृष का लांछन है। यों इन सिक्कों पर पाये जानेवाले लांछनों के कई रूप हैं। अन्य तीन जनपदों–शूरसेन और दोनों पांचालों के सिक्के लगभग 25 ग्रेन वजन के हैं और बनावट तथा लांछन–व्यवस्था में एक सरीखे ही हैं। वे सभी आकार में छोटे पर मोटे टुकड़े हैं और उन पर लांछनों का अंश–मात्र टंकित प्राप्त होता है। उत्तर पंचाल के सिक्कों के प्रमुख लांछन मत्स्य, वृष, हाथी (सवार सहित अथवा रहित) हैं। शूरसेन के सिक्कों पर बिल्ली अथवा सिंह की आकृति का कोई पशु है जो दो वृत्तों पर खड़ा है जो कदाचित् पर्वत के प्रतीक हैं। पशु के दायीं ओर दो–तीन छोटे चिह्न हैं। इन दोनों ही जनपदों के अधिकांश सिक्कों का पट भाग सादा है। दक्षिण पंचाल के सिक्के इनसे सर्वथा भिन्न हैं। इसके सिक्कों पर लगभगसौ प्रकार के लांछन देखने में आये हैं और वे सभी गोल आकृति के हैं और बिन्दुओं, भरे और खोखले वृत्तों, रेखाओं, चतुर्भुजों आदि अनेक छोटे चिह्नों के संयोजन द्वारा बनाये गये हैं। यह संयोजन नाना प्रकार से किया गया है, जिसके कारण प्रत्येक लांछन के

स्वरूपों का अपना निजस्व है। किन्तु सिक्कों के आकार से ठप्पे बड़े होने के कारण किसी भी सिक्के पर ये लांछन अपने पूर्ण रूप में देखने में नहीं आते, उनका बाहरी भाग सदैव कटा मिलता है। इन सिक्कों के पृष्ठ भाग पर बड़ी संख्या में नन्हें–नन्हें चिह्न देखने में आते हैं। इन नन्हें चिह्नों को इतने जोरों से टंकित किया गया था कि हथौड़े की चोट और निहाई के प्रतिरोध के बीच चित्त ओर के लांछन प्रायः पिस गये हैं और उनका स्वरूप अस्पष्ट हो गया है।

गन्धार के सिक्कों का आकार असाधारण है। वे एक से पौने दो इंच लम्बे वर्तुलाकार शलाका सरीखे हैं। ये शलाकाएँ धातु की लम्बी पट्टियों को काटकर बनायी गयी प्रतीत होती हैं। इनकी लम्बाई चौड़ाई के अनुपात में है पर मोटाई में लगभग सब एक–से ही हैं। ऐसा जान पड़ता है कि धातु की पट्टियाँ ऐसी चौड़ाई में काटी जाती थीं कि अन्य दो आयामों के साथ मिलकर अपेक्षित भार के टुकड़े तैयार हो सकें। टुकड़ों को काटने के बाद वजन संतुलित करने के निमित्त आवश्यक होने पर दोनों छोरों के कोनों को कतर दिया जाता था और अगल–बगल से छील दिया जाता था। इस प्रकार बने टुकड़ों के दोनों सिरों पर एक ही लांछन टंकित किया जाता था। सम्भवतः इन सिक्कों का टंकण लकड़ी की निहाई पर रखकर धातु के गर्म रहते किया जाता था जिससे शलाका झुककर वर्तुलाकार रूपधारण कर लेती थी। इन सिक्कों को आहत करनेवाले ठप्पे शलाका की चौड़ाई से बड़े होते थे। इस कारण लांछन की पूरी आकृति कम ही सिक्कों पर देखने में आती है। इन सिक्कों के लांछन का स्वरूप 6 वर्तुलाकार त्रिशूल तथा एक दण्ड से बना चक्र सरीखा है। कभी–कभी इन सिक्कों के चित भाग पर छोटे–छोटे चिह्न भी देखने में आते हैं जो कदाचित् परीक्षा चिह्न के रूप में बाद में अंकित किये गये होंगे। सामान्यतः अवस्था के अनुसार इन सिक्कों का वजन 150 और 180 ग्रेन के बीच पाया जाता है। ये सिक्के देश के उसी भू–भाग में मिलते हैं जो ई०पू० छठी शती के अन्त से ई०पू० चौथी शती के मध्य तक ईरानी साम्राज्य का अंग था। इस कारण कुछ विद्वानों की धारणा है कि ये सिक्के ईरानी सिगलास (Siglos) के भार–मान पर बने हैं। इन सिक्कों के खरीज स्वरूप 90, 80, 43, 20 और 7 ग्रेन के सिक्केभी देखने में आते हैं। ये छोटे सिक्के आकार में बेडौल कटोरीनुमा पाये जाते हैं और उन पर वही लांछन केवल एक बार टंकित है, जो बड़े सिक्कों पर देखा जाता है।

बंग जनपद के सिक्के पतले, चौकोर और आकार में आध इंच के और वजन में 50–52 ग्रेन के हैं। उन पर तीन लांछन हैं– (1) एक तल्ला पोत (नाव) (2) चक्र (3) दुहरे वृत्त का छः बाणों से घिरा षडर चक्र पाये जाते हैं।

आठ जनपदों के सिक्कों पर चार–चार लांछन पाये जाते हैं। वत्स, कोसल, काशी, मगध, कलिंग और आन्ध्र के सिक्के बनावट में पतले और मल्ल तथा मूलक के मोटे और बेडौल हैं। इन जनपदों के सिक्कों पर जो चार लांछन हैं उनका संयोजन तीन रूपों में देखने में आता है – (1) कुछ पर दो–दो युग्मों के दो लांछन मिलकर चार लांछनों का रूप धारण करते हैं। (2) कुछ पर एक लांछन का युग्म और दो भिन्न लांछन मिलकर चार लांछन समूह बनाते हैं। (3) कुछ सिक्कों पर चारों लांछन एक–दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। मगध और वत्स के सिक्कों पर तीनों ही प्रकार का संयोजन देखा जाता है। काशी के सिक्कों का संयोजन केवल प्रथम प्रकार का है। मूलक में दूसरा और आन्ध्र में दूसरा तथा तीसरा तथा कोसल, मल्ल और कलिंग में केवल तीसरारूप देखने में आता है।

वत्स के सिक्के गोलनुमा पतले और एक इंच के हैं। उन पर लांछन के रूप में ज्यामितिक आकार, पशु, चक्र, षडर चक्र और वृश्चिक सदृश आकृतियाँ पायी जाती हैं। इन पर वृश्चिक सदृश आकृति प्रमुख है। ये सिक्के वजन में 50 से 54 ग्रेन तक हैं। कोसल के सिक्के दो बनावटों के हैं। एक, जो पहले के हैं, चौड़े, पतले और गोल हैं। पट ओर नन्हें चिह्नों से काफी आहत किये जाने के कारण इन सिक्कों के चित ओर के लांछन चिपटे हो गये हैं। दूसरे अर्थात् बादवाले सिक्के औसतमोटाई के हैं। उन पर भी पट ओर छोटे चिह्न पाये जाते हैं किन्तु उनके कारण चित ओर के लांछनों में किसी प्रकार की विकृति नहीं देखने में आती। इन सिक्कों के अधिकांश लांछन ज्यामितिक आकृति, हाथी, बैल अथवा शशक (खरगोश) हैं। उनमें एक–दो वृक्ष के रूप भी देखने को मिलते हैं। इन सिक्कों का प्रमुख लांछन एक छोटे वृत्त के चारों ओर अंग्रेजी के एस सरीखे वक्र रेखाओं से घेरकर बना है। ये सिक्के केवल 42 ग्रेन के हैं। काशी के सिक्के अण्डाकार आकृति के हैं। इस दृष्टि से उन्हें वत्स तथा कोसल के पूर्ववर्ती सिक्कों के क्रम में रखा जा सकता है किन्तु उनके लांछनों की जो आहत प्रक्रिया है, उसके कारण वे कटोरीनुमा प्रतीतहोते हैं। इन सिक्कों पर लांछनों का एक युग्म दूसरे युग्म से आकार में छोटा है। इनके लांछन एक जटिल आकृति के चक्र से हैं। उसमें चार भुजाओं से अनेक शाखाएँ प्रस्फुटित होकर चक्र का रूप धारण करती हैं। कुछ लांछन कमल आकृति के भी प्रतीत होते हैं। इनका वजन लगभग 75 ग्रेन है।

आन्ध्र के सिक्के छोटे, पतले और बेडौल हैं किन्तु लांछन का टंकण स्पष्ट हुआ है। इन पर हाथी प्रमुख लांछन है जो दक्षिणाभिमुख अथवा वामाभिमुख दोनों रूपों में मिलता है और प्रायः सभी सिक्कों पर देखने में आता

है। इन पर प्रायः मिलनेवाला एक अन्य लांछन वृक्ष का एक रूढ़िगत स्वरूप है। अन्य लांछन वृत्त, बिन्दु, वर्तुलाकार रेखा आदि से बनी ज्यामितिक आकृतियाँ हैं। किन्हीं किन्हीं सिक्कों पर वृष भी है। इनका भार 20 ग्रेन के लगभग है। कलिंग के सिक्के भार और बनावट में आन्ध्र के सिक्कों सरीखे ही हैं और उनके लांछन भी वे ही हैं जो आन्ध्र के एक भाँत के सिक्कों पर पाये जाते हैं। इन पर आन्ध्र के सिक्कों की अपेक्षा टंकण हलका है।

मल्ल जनपद के सिक्के दो प्रकार के हैं। एक प्रकार के सिक्के मोटे टुकड़े सरीखे लगते हैं और वे वजन में 65 ग्रेन हैं। उन पर दो लांछन हैं, एक छोटा और एक बड़ा और वे केवल रेखाओं से बने हैं। दूसरे प्रकार के सिक्के दो भारमानों के हैं। एक तो बड़े 48 ग्रेन के हैं और उन पर चार लांछन हैं और दूसरे छोटे केवल 10 –12 ग्रेन के हैं और उन पर केवल दो लांछन हैं। इन लांछनों की आकृति भी सरल ज्यामितिक है।

मगध के सिक्के मुख्य रूप से दो कालों के हैं। एक तो उस समय प्रचलित रहे होंगे जब वह मात्र जनपद था। उन्हें स्थानिक सिक्के कह सकते हैं। इन सिक्कों के कई समूह हैं, जो एक–दूसरे से अनेक बातों में भिन्न हैं। इनका अभी कोई सम्यक् अध्ययन नहीं हो पाया है। दूसरे वे हैं जो उसके साम्राज्य विस्तार–काल में प्रचलित किये गये और देशभर में बिखरे मिलते हैं। ये सिक्के अजातशत्रु के समय से लेकर मौर्य–वंश के समय ई०पू० दूसरी शती तक चलते रहे। वे सिक्के एक समान भारमान के हैं। उनका भार लगभग 56 ग्रेन था। ताना दिखाई पड़नेवाले सिक्के इस भार से ऊपर नहीं जाते। सामान्य रूप से ये सिक्के 50–52 ग्रेन के मिलते हैं। वे अधिकांशतः धातु की चादरों को काटकर बनाये गये थे पर उनकी लम्बाई–चौड़ाई निश्चित नहीं है। वे 1.25'' के भी हैं और 4'' के भी। उनकी मोटाई भी .02'' से .125'' इंच तक पायी जाती है। इन सभी सिक्कों पर चित ओर समान रूप से पाँच लांछन पाये जाते हैं। इन लांछनों की संख्या कई सौ है, जो विभिन्न ढंग के ज्यामितिक, अलंकृत वृत्त, चक्र, सूर्य, मानव, वृष, हाथी, शशक, मृग, गैंडा, मछली, मकर, कछुआ, पक्षी, धनुष–बाण आदि रूपों में पाये जाते हैं। इन सिक्कों के पाँचलांछनों के समूह में प्रत्येक लांछन का अपना एक निश्चित स्थान है। लांछनों की इस क्रम–व्यवस्था के आधार पर ये सिक्के 500 से अधिक भाँतों में पहचाने गये हैं। इन भाँतों को विभिन्न वर्ग और समूहों में और फिर 6या7 श्रेणियों में समूहीकृत किया जा सकता है। बनावट के आधार पर इन श्रेणियों को काल–क्रम का भी निरूपण दिया जा सकता है। बनावट की दृष्टि से प्रथम दो श्रेणियों के सिक्के पतली चादर के, उसके बाद की दो श्रेणियों के सिक्के मध्यम चादरों के हैं। तीसरी श्रेणी के सिक्कों में कुछ पतली चादर के भी देखने में आते हैं। इसी प्रकार चौथी श्रेणी के सिक्कों में कुछ मोटे भी हैं। पाँचवीं श्रेणी के सिक्के मध्यम और मोटी चादरों के मिश्रित मिलते हैं। छठी–सातवीं श्रेणी के सिक्के पूर्णतः मोटी चादरों के हैं। प्रथम चार श्रेणी के सिक्कों के पट ओर वैसे ही नन्हें चिह्न देखे जाते हैं जिस प्रकार के चिह्न कतिपय जानपदीय सिक्कों पर मिलते हैं। पाँचवीं श्रेणी के सिक्कों की पीठ पर इन नन्हें चिह्नों के अतिरिक्त एक नये प्रकार के चिह्न भी देखने में आते हैं। इस आधार पर इन सिक्कों को पूर्ववर्ती सिक्कों से अलग किया जा सकता है। छठी श्रेणी के अधिकांश सिक्कों की पीठ पर चित ओर के लांछनों की तरह का ही एक बड़ा लांछन देखने में आता है और पट ओर के ये लांछन समूह अथवा भाँत–विशेष के सिक्कों पर सर्वदा एक–से मिलते हैं। इस प्रकार साम्राज्य की आहत–मुद्राओं का अध्ययन थोड़ा जटिल है। सम्प्रति इतना ही कहा जा सकता है कि प्रत्येक श्रेणी के सिक्के एक राज–वंश अथवा एक राजा के जान पड़ते हैं कुछ सिक्कों को विभिन्न टकसालों के बने सिक्कों के रूप में पहचाना जा सकता है। किन्तु इन लांछनों का वास्तविक अर्थ अब तक नहीं जाना जा सकता है। वे हड़प्पा–लिपि की तरह ही रहस्य बने हुए हैं।

चाँदी की इन आहत मुद्राओं का बनना ई०पू० दूसरी शती में किसी समय बन्द हो गया। किन्तु उनका प्रचार अगले चार–पाँच सौ बरसों तक बना रहा। गुप्तों के उदय तक उत्तर प्रदेश और बिहार में चाँदी के सिक्के अज्ञात हैं। वहाँ इस काल में मगध की आहत–मुद्राएँ ही चलती रहीं। वहाँ के पुरातात्विक उत्खननों के विविध स्तरों पर मिलती हैं। इस काल में सिक्कों के अभाव की पूर्ति इन सिक्कों को साँचे अथवा ठप्पे की पद्धति से बनाकर की जाती रही। इनके ढालने के मिट्टी के साँचे मथुरा, झूँसी (इलाहाबाद), शिशुपालगढ़ (उड़ीसा) और कोंडापुर (आन्ध्रप्रदेश) में मिले हैं। आहत–मुद्रा की छाप से युक्त कांस्य का एक साँचा एरण (मध्यप्रदेश) में मिला था।

अर्थशास्त्र के अनुसार मौर्य सम्राटों की टकसालों में पण, अर्ध–पण, पाद और अष्ट–भाग अथवा अर्ध–पादिक नामक चार मूल्यों के सिक्के तैयार होते थे पर अब तक समग्र मगध साम्राज्य से 50–52 ग्रेन के ही सिक्के मिले हैं जिन्हें पण याकार्षापण समझा जाता है। कतिपय निखातों (दझीनों) में कुछ कटे हुए सिक्के मिले हैं जो इस बात के द्योतक हैं कि पूरे सिक्कों को दो टुकड़ों में काटकर आधे मूल्य का सिक्का बना लिया जाता था और लोग उन्हें मान्य सिक्कों के रूप में लेते–देते थे। सिक्कों के इस प्रकार काटने की प्रथा कुछ स्थानों में परवर्ती काल में भी

देखने में आती है। 2–3 ग्रेन की कुछ नन्हीं आहत–मुद्राएँ भी मिली हैं जो गोलियों को चिपटाकर बनायी गयी हैं। उन पर जो लांछन हैं वे साम्राज्य के पणों पर मिलनेवाले लांछनों के समान ही हैं। यही एकमात्र चाँदी का अन्य सिक्का है जो उस काल में प्रचलित था और पणों के साथ कतिपय निखातों (दझीनों) में मिला है। समझा जाता है कि ये पणों के सोलहवाँ भाग हैं और वे माषक कहे जाते थे।

कौटिल्य के उल्लेख से ऐसा जान पड़ता है कि मौर्य–काल में ताँबे के सिक्कों का भी प्रचलन था किन्तु अब तक ताँबे की आहत–मुद्राएँ बहुत कम मिली हैं। जो मिली भी हैं वे अपने रूप में स्थानिक अथवा जानपदीय ही प्रतीत होती हैं। इस प्रकार के सिक्के मगध–अंग, एरण विदिशा, मथुरा और मेवाड़ (राजस्थान) के क्षेत्रों में मिले हैं। इनसे आहत–मुद्राओं की पद्धति से सर्वथा भिन्न पद्धति से बने ताँबे के गोल और चौकोर ढालित सिक्के उत्तरी भारत में सर्वत्र पाये जाते हैं और वे अनेक भाँतों के हैं। सर्वाधिक उपलब्ध सिक्के आकार में गोल हैं और उन पर एक ओर हाथी और दूसरी ओर चन्द्रांकित तीन अर्ध–वृत्तोंवाला मेरु है। कभी–कदा इस प्रकार के दो सिक्के एक पतली पट्टी से परस्पर जुड़े मिलते हैं। कहा नहीं जा सकता कि यह टकसाल की चूक के परिणाम हैं अथवा दूने मूल्य के निमित्त उन्हें इसी प्रकार बनाया ही जाता था। ढालित चौकोर सिक्कों के दोनों ओर 4–4 लांछन देखे जाते हैं। ये ढालित सिक्के ई०पू० तीसरी शती से तीसरी शती ई० तक चलते रहे। किन्तु सम्भवतः उनका भी बनना ई०पू० पहली शती में बन्द हो गया था।

2.7 सारांश

भारत के प्राचीनतम् सिक्कें आहत सिक्के है जिनका अस्तित्व छठी शताब्दी ईसा पूर्व से हमें देखने को मिलता है। ये ज्यादातर चाँदी के और कभी–कभी ताँबा धातु का उपयोग कर बनाए जाते थे। आहत मुद्राओं पर किसी भी प्रकार का लेख नहीं मिलता। इन पर केवल प्रतीकों का अंकन किया जाता था। ये सिक्के पूरे देश में तक्षशिला से मगध तक मैसूर या उससे भी आगे दक्षिण में पाए गए है।

उत्तर भारत में प्रचलित आहत सिक्कों को इनकी कुछ विशेषताओं (वजन, संख्या और प्रचलन क्षेत्र) के आधार पर चार प्रमुख श्रृंखलाओं में बाँटा जाता है–

(1) तक्षशिला गांधार (इसका प्रचलन क्षेत्र उत्तर पश्चिम भारत था)

(2) कोसल (मध्यगंगा मैदान, वजनदार, मानक, अत्यधिक आहत चिन्ह)

(3) अवंति (पश्चिम भारत, कम वजनदार, एक आहत चिन्ह)

(4) मगध (मगध क्षेत्र, कम वजनदार, मानक, बहुत आहत चिन्ह)।

कालान्तर में मगध साम्राज्य के विस्तार के साथ मगध श्रृंखला के सिक्कों ने अन्य चार श्रृंखलाओं के सिक्कों को प्रतिस्थापित कर दिया। यद्यपि, आहत सिक्के लेख रहित हैं, किन्तु संभवतः सभी सिक्के, किसी ना किसी राजसत्ता द्वारा निर्गत किए गए हैं। कालान्तर में श्रेणियों एवं निगमों द्वारा भी आहत सिक्के निर्गत किए गए।

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

4. आहत सिक्कों की उत्पत्ति के विषय में वर्णन कीजिये।

   ....

   ....

5. आहत सिक्कों की तकनीकी, प्रतीक एवं वजन मानक के विषय में टिप्पणी कीजिये।

   ....

6. आहत सिक्कों का वर्गीकरण कीजिये।

   ....

   ....

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्त परमे’’वरी लाल : भारत के पूर्वकालिक सिक्के।

राव राजवन्त एवं राव प्रदीप कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

चक्रवर्ती एस.के. : प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र का अध्ययन।

उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

ओझा, रायबहादुर गौरी’’ांकर हीराचन्द्र : प्राचीन मुद्रा।

पाण्डेय, विमले’’ा कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

इकाई 3—ताँबे की लेखरहित ढले सिक्के

इकाई की रूपरेखा

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्दे"य

3.2 निर्माण विधि की सामान्य पद्धति

3.3 विशेष पद्धति

3.4 लेखरहित ठप्पा—निर्मित मुद्राएँ

3.5 सारांश

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.7 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 प्रस्तावना

प्राचीनता, प्रयोग एवं प्रचलन की दृष्टि से भारतीय मुद्रा के इतिहास में उन सिक्कों का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है जिन्हें नामकरण की सुविधा की दृष्टि से मुद्राशास्त्रियों ने Uninscribed cast copper coins अर्थात् सांचों में ढली हुई लेख रहित ताम्र मुद्रा की संज्ञा प्रदान किया है। जैसाकि उक्त नाम से व्यक्त होता है, ये मुद्राएँ ताम्र—निर्मित होती थी, इन्हें साँचों में ढालकर बनाया जाता था, तथा इन पर किसी प्रकार का लेख नहीं होता था। तथापि अभिज्ञान की दृष्टि से इन पर प्रतीक—चिह्नों का अंकन अवश्य रहता था।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको लेखरहित ढली हुई ताम्र मुद्राओं की उत्पत्ति, तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक, वजन मानक एवं निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

3.2 निर्माण विधि की सामान्य पद्धति

सबसे पहले आवश्यकता के अनुरूप साँचों का निर्माण किया जाता था। अलग—अलग सिक्कों के लिये अलग—अलग साँचे बनाये जाते थे। ताँबे को पिघलाया जाता था। पिघलती हुई स्थिति में ढालने की क्रिया सम्पन्न की जाती थी। पिघली हुई धातु को अलग—अलग साँचे में रखा जाता था तथा ठंडा होने पर उसे अलग किया जाता था।

3.3 विशेष पद्धति

सामान्य पद्धति के अतिरिक्त एक विशेष पद्धति के प्रचलन के साक्ष्य मिलते हैं। इस पद्धति के अनुसार एक ही बार और एक ही साथ अनेक सिक्के ढाल लिये जाते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये नली की सहायता से अनेक साँचों को एक दूसरे के साथ जोड़ लिया जाता था तथा इस प्रकार प्रयास लाघव की दृष्टि से एक ही बार अनेक सिक्कों को बना लिया जाता था। एक ही बार नली की सहायता से पिघली धातु को सभी साँचों में पहुँचा दिया जाता था। साँचों के ठंडा होने पर नली को तोड़ दिया जाता था तथा सिक्कों को निकाल लिया जाता था। इस पद्धति के दोनों सिरों को अच्छी तरह काटा नहीं गया है। ऐसे युग्मसिक्के मिले हैं, जिनको मिलाने वाली नली को अभी तोड़ा नहीं गया है।

दूसरा विचारणीय बिन्दु इन सिक्कों का आकार—आयाम है। ढालते समय सिक्कों के अपेक्षित तौल पर ध्यान दिया जाता था। तथा तौल के अनुपात में सिक्कों के आकार को निर्णीत किया जाता था। पुरातन मुद्राशास्त्रियों ने केवल दो आकार वाले सिक्कों को प्रकाश में लाया था, जिनमें अधिकांशतः वर्तुल आकारवाले सिक्के थे। किन्तु कुछ एक आयताकार सिक्के भी प्रकाश में लाये गये थे। किन्तु आधुनिकतम शोधों से तीन आकार वाले सिक्के प्रकाश में आ चुके हैं, जिनमें वर्गाकार, कोणाकार और मिश्रित आकार सम्मिलित किये जा सकते हैं।

इन ताम्र सिक्कों को इनके वृहत्तर आयाम के आधार पर दो वर्ग किए जाते है–(1) स्थानीय, (2) सार्वभौमिक। प्रारम्भ में इन सिक्कों का संबंध केवल मध्य भारत से जोड़ा जाता था परन्तु एस0 सी0 रे ने इनके प्राप्ति–स्थलों के आधार पर इनका प्रचलन क्षेत्र लगभग पूरे भारतवर्ष को माना है और इसे स्थानीय सिक्का मानने से इन्कार किया है। केवल सुदूर दक्षिण को छोड़कर लगभग भारत के सभी हिस्सों से इनका मिलना सम्भव हुआ है। स्थानीय सिक्कों पर पारम्परिक प्रतीक–चिह्नों का अंकन हुआ है।

सार्वभौमिक प्रकार के सिक्के गोलाकार और वर्गाकार दोनों ही रूपों में पाए जाते हैं। सामान्यतया इनकी आकृति तथा प्रतीक चिह्नों की व्यवस्था आहत मुद्राओं के सन्निकर्ष में है।

तीसरा महत्त्वपूर्ण बिन्दु है, इन सिक्कों के प्रकारों को निर्धारित किया जाना। तौल के अधार पर इनके निम्नोक्त प्रकारों पर बल दिया गया है।

प्रथम प्रकार : इसमें वे सिक्के सम्मलित किये जाते हैं जिनकी तौल 10 ग्रेन से लेकर 20 ग्रेन तक है।

द्वितीय प्रकार : इसमें वे सिक्के सम्मिलित किये जाते हैं जिनकी तौल 20 ग्रेन से लेकर 40 ग्रेन तक है।

तृतीय प्रकार : इसमें वे सिक्के सम्मिलित किये जा सकते हैं, जिनकी तौल 40 ग्रेन से लेकर 60 ग्रेन तक है।

चतुर्थ प्रकार : इसमें वे सिक्के सम्मिलित किये जाते हैं, जिनकी तौल 60 ग्रेन से लेकर 144.5 ग्रेन तक है।

इन सिक्कों की प्रकार–समीक्षा इनके प्रचलन–क्षेत्र के आधार पर सबसे पहले कनिंघम ने किया था। इनके मत को अभी तक मान्यता दी जाती है। उक्त मुद्राशास्त्री ने निम्नोक्त 4 प्रकारों को प्रकाश में लाया था।

प्रकार Q : प्रस्तुत प्रकार के सिक्के सर्वाधिक प्रचलित माने जाते हैं। ये सिक्के उत्तर भारत के सभी भागों से प्राप्त हुए हैं। कनिंघम के इस मत में जेम्स प्रिंसेप ने सुधार लाने का प्रयास किया है तथा इस कोटि के सिक्कों का प्रचलन–क्षेत्र मध्य भारत के कुछ एक स्थानों को माना है, जिनमें बेसनगर का उल्लेख विशेषतया किया जा सकता है।

प्रकार RएवंS: प्रस्तुत प्रकार के सिक्के अधिकांशतः पंजाब से उपलब्ध हुए हैं।

प्रकार J : प्रस्तुत प्रकार के सिक्के वाराणसी तथा निकटवर्ती स्थानों सेप्राप्त हुए हैं।

आलोचित सिक्कों की प्रकार–समीक्षा इनके प्रतीक–चिह्नों के आधार पर भी की गई है। सुप्रचलित प्रतीक चिह्न निम्नोक्त हैं।

(1) गज की आकृति, (2) चैत्य वृक्ष तथा (3) सुमेरु पर्वत, जिसे अधिकांश मुद्राशास्त्रियों ने अर्द्धचन्द्र–युक्त पर्वत ''Mountain with Crescent'' की संज्ञा प्रदान किया है,। स्थानीय प्रतीक चिह्नों के आधार पर इनके निम्नोक्त 19 प्रकार प्रकाश में लाये गये हैं :–

(1) **प्रकार A** : इस प्रकार में सम्मिलित सिक्कों के पुरोभाग पर लक्ष्मी के अभिषेक का अंकन मिलता है, तथा पृष्ठ तल पर गजाकृति, चौत्य वृक्ष एवं सोपान का अंकन प्राप्त होता है।

(2) **प्रकार B** : इस प्रकार में सम्मिलित सिक्कों के पुरोभाग पर राजप्रासाद तथा वृक्षाश्रित स्त्री का अंकन हुआ है तथा पृष्ठ तल पर चैत्य वृक्ष का अंकन।

(3) **प्रकार C से K तक**: इनकी अंकन–व्यवस्था का निदर्शन निम्नोक्त है–

पुरोभाग :पताका

स्वस्तिक 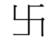

अर्द्धचन्द्र से घिरा हुआ बिन्दु

रिक्त वर्ग़

पृष्ठ तलः वृषभ मुख

अद्धचन्द्रयुक्त पर्वत

(4) **प्रकार C से S तक** : इनके प्रतीक चिह्नोंकी अंकन व्यवस्था निम्नोक्त है—

पुरोभाग : रिक्त वर्ग

अर्द्धचन्द्रयुक्त पर्वत

ब्राह्मी के ''स" के समान चिह्न

पृष्ठ तल : चैत्य वृक्ष

अर्द्धचन्द्र युक्त पर्वत के पार्श्ववर्ती वृषभमुख

इस सन्दर्भ में एलन ने M प्रकार पर विशेष बल दिया है। प्रस्तुत प्रकार का द्योतक सिक्का पश्चिम भारत से प्राप्त हुआ था, जिसकी तौल 144.5 ग्रेन है। इसके पुरोभाग पर रिक्त वर्ग तथा पृष्ठ तल पर अर्द्धचन्द्रयुक्त पर्वत का चिह्न मिलता है। एलन ने इसका तादात्म्य साहित्य—वर्णित ''कार्षापण'' से किया है,जिसका तौल 80 रत्ती अर्थात् 144. 4 ग्रेन होता था।

(5) **प्रकार Q**: इनके पुरोभाग पर गजाकृति एवं पृष्ठतल पर अर्द्धचन्द्र से युक्त पवतांकन प्राप्त होता है। इनका महत्त्व इस दृष्टि से है कि इस प्रकार में सम्मिलित कुछ एक युग्म सिक्के मिले हैं, जिससे उपर्युक्त विशेष निर्माण—पद्धति परयथेष्ठ प्रकाश पड़ता है।

आलोचित सिक्कों की समीक्षा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बिन्दु है, इनकी प्राचीनता एवम् प्रचलन अवधि का निर्धारण। एलन आदि प्राक्तन मुद्राशास्त्रियों ने इस बिन्दु के विवेचनार्थ निम्नोक्त आधारभूत निर्धारक तत्वों पर बल दिया थाः—

(1) ये सिक्के बहुधा उन्हीं स्थानों से मिले हैं जहाँ से आहत सिक्के प्राप्त हुए हैं।

(2) ये सिक्के बहुधा ससैनियन सिक्कों के साथ मिले हैं।

(3) ये सिक्के बहुधा लेखांकित ढली हुई उन मुद्राओं के साथ मिले हैं, जिनका समय तृतीय शता0 ईसापूर्व एवम् द्वितीय शता0 ईसापूर्व का अन्तर्वर्ती काल माना जाता है।

उक्त अवधारक तत्त्वों के आलोक में इनकी प्राचीनता पाँचवीं और चौथी शताब्दी ईसवी पूर्व मानी जाती है।

आधुनिक शोधों के आधार पर उक्त मत में परिवर्द्धन का प्रयास किया गया है। इस संदर्भ में कुमरहार (पटना), हस्तिनापुर एवम् कौशाम्बी का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। इन स्थानों की वैज्ञानिक पद्धति द्वारा खुदाई से जो प्रमाण उपलब्ध होते हैं, उनमें विश्वसनीयता का पुट अधिक है। कुमरहार और हस्तिनापुर के उत्खनन—क्रम से उपलब्ध इन सिक्कों का समय छठीं श0 ईसापूर्व से लेकर पाँचवीं शता0 ईसापूर्व ठहरता है। कौशाम्बी के उत्खनन क्रम से ये सिक्के SP II 5 से SP III 10 तक मिले हैं जिसका समय 1000 ईसापूर्व से लेकर 900 ईसापूर्व तक निश्चित किया गया है।

वास्तविक स्थिति यह है कि सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व ही भारतीय सिक्का निर्माण हेतु साँचे का प्रयोग कर रहे थे। यह तथ्य नियार्कस के विवरणों से भी पुष्ट हो जाता है। पुरातात्त्विक प्रमाण भी नियार्कस के कथन के पक्ष में जाते हैं। लेखरहित ढली—मुद्राएँ पुरातात्त्विक खुदाइयों में निचले स्तरों से प्राप्त हुई हैं। ये रजत—आहत मुद्राओं के साथ भी प्राप्त हुई हैं। निसार अहमद और एस0 सी0 रे0 ने इन पुरातात्त्विक प्रयासों से प्राप्त सिक्कों को सुसमीक्षित किया है जिसमें अहिच्छत्रा, हस्तिनापुर, रूपर, उज्जैन, राजघाट, कौशाम्बी, कुमरहार, राजघाट, वैशाली, चन्द्रकेतुगढ़, माहेश्वर, नासिक, नवदाटोली, नेवासा, चिराँद, इत्यादि सम्मिलित हैं। इन स्थलों से प्राप्त विभिन्न सिक्कों को छठी शताब्दी ईसापूर्व से लेकर दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य रखने का सुझाव दिया है। इन सिक्कों के छठीं शताब्दी ईसा पूर्व में अभ्युदय को C—14 तिथियों द्वारा भी समर्थन प्राप्त होता है।

परन्तु एक पृच्छा उठाई जाती है कि इन लेखरहित ढली—मुद्राओं का प्रचलन किसने किया? लाहिड़ी का ऐसा सुझाव है कि ये ताम्र सिक्के किसी प्रभावशाली व्यावसायिक श्रेणी द्वारा ढाले गए थे लेकिन इसके विशिष्ट स्वरूप के निर्धारण के संबंध में केन्द्रीय सत्ता द्वारा स्वीकृति दी जाती थी।

3.4 लेखरहित ठप्पा–निर्मित मुद्राएँ

लेखरहित ठप्पा–निर्मित मुद्राएँ–पाश्चात्य विचारकों की यह अवधारणा रही है कि भारत वर्ष में ठप्पा–विधि द्वारा निर्मित मुद्राओं का आविर्भाव यूनानी प्रभाव के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। इसलिए इन सिक्कों को उतरवर्ती चरण में रखा जाता है। लेकिन नवीनतम शोधों ने यह सुव्यक्त कर दिया है कि ठप्पा विधि द्वारा सिक्कों का प्रादुर्भाव देशज है। लाहिड़ी ने ठप्पा–निर्मित बहुसंख्य मुद्राओं की मौर्य अथवा पूर्व मौर्ययुग से संबंधित बताया है। ये सिक्के सामान्यतया ताम्र–निर्मित हैं यद्यपि कतिपय रजत–मुद्राएँ भी मिली हैं। जिन सिक्कों के केवल एक भाग पर चिह्नों को अंकित किया गया है उन्हें 'एकमात्र–ठप्पा' तया जिनके दोनों भाग पर चिह्न अंकित हैं उन्हें 'युग्म–ठप्पा' निर्मित सिक्का नाम दिया जाता है। इन पर बहुधा आहत मुद्राओं तथा साँचे में ढली मुद्राओं के ही प्रतीक चिह परिलक्षित होते हैं। प्रतीकांकनों में घेरे में वृक्ष, नदी, स्वस्तिक, त्रिभुजमीर्षा ध्वज, अर्द्धचन्द्र, त्रिगुम्बदीय वर्तत इत्यादि सुलभ हैं। इनमें 'एकमात्र ठप्पा–निर्मित सिक्के' प्राचीन स्तर के हैं तथा 'युग्म–ठप्पा वाले सिक्के' बाद के। बाद के सिक्कों पर प्रतीकांकनों का बाहुल्य है। इन चिह्नों में पशु आकृतियों का अंकन भी समाविष्ट हो गया है जैसे गज, वृषभ, सिंह इत्यादि।

इन सिक्कों से संबंधित जो उक्त दो कोटियाँ बताई गई हैं– (1) प्रारम्भिक (2) परवर्ती, उनमें प्रथम कोटि के सिक्कों का प्रमुख प्राप्ति–स्थल तक्षशिला है। एलन ने परवर्ती अथवा बाद के सिक्कों के समीक्षणोपरान्त कई वर्ग निर्धारित किए हैं। इन सिक्कों के समस्तरीय सिक्के उज्जैन से भी प्राप्त हुए हैं जिन पर पारम्परिक अंकनों का बाहुल्य है। ये सिक्के वर्गाकार तथा गोलाकार दोनों ही रूपों में उपलब्ध हैं तथा एलन ने इन्हें छः वर्गों में बाँटने का आग्रह किया है। सुप्रचलित प्रतीक चिह्नों के अतिरिक्त भी कतिपय चिह्न जैसे सूर्य, चक्र, तालाब और मछली इत्यादि सिक्कों पर स्थान पा सके हैं।

ये सिक्के विभिन्न भार–मान के हैं। तौलादर्श वैभिन्य को देखते हुए यह निष्कर्ष निकालना बहुत कठिन हो जाता है कि मुद्रा–निर्माण हेतु किस प्रकार के तौलादर्श का अनुकरण किया जा रहा था।

आलोचित सिक्कों के विवेचन का अंतिम बिन्दु है, आहत सिक्कों एवम् लेखरिहत ढली हुई मुद्राओं की तिथि–विषयक तुलनात्मक समीक्षा। इस संबंध में निम्नोक्त तीन मत प्रकाश में आए हैं–

(1) ढली हुई लेखरिहत मुद्राओं की अपेक्षा आहत मुद्राएँ अधिक प्राचीन हैं।

(2) आहत मुद्राओं की अपेक्षा ढली हुई लेख रहित मुद्राएँ अधिक प्राचीन हैं।

(3) दोनों प्रकार की मुद्राएँ समकालीन हैं।

स्थिति की समग्रता, साक्ष्यों की सर्वांगीण समीक्षा एवम् वस्तुनिष्ठता की दृष्टि से देखा जाय तो अपने–अपने ढंग से उक्त तीनों मत सारवान् है। अधिकांश उत्खनित स्थानों से उपलब्ध आहत मुद्राओं की प्राचीनता समर्थित होती है। किन्ही–किन्ही स्थानों से उपलब्ध लेख रहित ढली हुई मुद्राएँ साथ–साथ प्राप्त हुई हैं।

3.5 सारांश

लेखरहित ताम्र मुद्राओं को तैयार करने की विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित थीं, सामान्य पद्वति के अंतर्गत सबसे पहले आवश्यकता के अनुरूप साँचों का निर्माण किया जाता था। अलग–अलग सिक्कों के लिये अलग–अलग साँचे बनाये जाते थे। ताँबे को पिघलाया जाता था। पिघलती हुई स्थिति में ढालने की क्रिया सम्पन्न की जाती थी। पिघली हुई धातु को अलग–अलग साँचे में रखा जाता था तथा ठंडा होने पर उसे अलग किया जाता था। विशेष पद्धति में एक साथ अनेक सिक्के ढाल लिए जाते थे, नली के सहारे कई साँचे एक साथ जोड़ दिए जाते थे और पिघली धातु को सभी साँचों में पहुँचा दिया जाता था, धातु के ठण्डा होने पर नली को तोड़ दिया जाता था। एक अन्य विधि ठप्पा मारकर सिक्के बनाने की प्रचलित थी।

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लेखरहित ताम्र सिक्कों के विषय में वर्णन कीजिये।

   ....

....

2. लेखरहित ताम्र मुद्राओं को ढालने में प्रयुक्त होने वाली पद्धतियों के विषय में टिप्पणी कीजिये।

....

....

3. आहत मुद्रा और लेखरहित ताम्र मुद्राओं में अन्तर स्पष्ट करिये?

....

3.7 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्त परमे''वरी लाल : भारत के पूर्वकालिक सिक्के।

राव राजवन्त एवं राव प्रदीप कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

चक्रवर्ती एस.के. : प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र का अध्ययन।

उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

ओझा, रायबहादुर गौरी''ंकर हीराचन्द्र : प्राचीन मुद्रा।

पाण्डेय, विमले''ा कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

इकाई 4—स्थानीय सिक्के—मथुरा, पांचाल, अयोध्या, कौशाम्बी

इकाई की रूपरेखा

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्दे’’य

4.2 स्थानीय सिक्के

 4.2.1 सिक्कों की तौल

 4.2.2 धातु

4.3 मथुरा के सिक्के

4.4 अयोध्या के सिक्के

4.5 पांचाल के सिक्के

4.6 कौ’’ाम्बी के सिक्के

4.7 सारांश

4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.9 संदर्भ ग्रन्थ

4.0 प्रस्तावना

प्राचीनकाल में भारतवर्ष में दो प्रकार की शासन—प्रणालियाँ प्रचलित थीं। पहला राजतंत्र, जिसमें वंश—परम्परा से एक ही प्रकार का शासन होता रहा। राजा के पश्चात् उसका पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी कहलाता था और स्वतंत्र रूप से अथवा मंत्रियों की सहायता से शासन करता था। दूसरे प्रकार का शासन प्रजातंत्र के नाम से विख्यात था। उन राज्यों को गण या संघ का नाम भी दिया गया है। संघ अथवा गण राज्य का मुख्य व्यक्ति शासन का प्रधान समझा जाता था। जनता द्वारा किसी व्यक्ति का चुनाव गुण—मुख्य (प्रधान—पद) के लिए होता था। ईसा पूर्व 400 से ईसवी सदी तीन सौ वर्षों तक उत्तरी भारत में दोनों प्रकार के शासन प्रचलित रहे। पाणिनी ने ऐसे संघों का वर्णन अष्टाध्यायी में किया है। सिन्धु—गंगा के मैदानों में विशाल सेना लेकर राज्य स्थापित करना उतना ही सरल था जितना कि मरुस्थलों तथा पर्वतों के समीपवर्ती संघ—राज्यों पर विजय करना कठिन था। सिकन्दर को भारत पर आक्रमण करते समय इन दोनों प्रकार के राज्यों से सामना करना पड़ा था। पंजाब में स्थित गणराज्यों का सामना करने पर यूनानी राजा को उनकी शक्ति का ज्ञान हुआ था। पंजाब, राजपूताना, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, बुन्देलखण्ड आदि प्रदेशों में गणराज्य कार्य करते रहे। भारतवर्ष में चन्द्रगुप्त मौर्य ने साम्राज्य स्थापना की कल्पना आरम्भ की तथा वह सफल भी रहा। अतएव ऐसे बड़े सम्राट् के सम्मुख छोटे—छोटे गणराज्य ठहर न सके और मैदानों से हटकर उन्होंने पर्वतों तथा मरुस्थलों में शरण ली। राजा अशोक को साम्राज्य बढ़ाने की लिप्सा न रही। अतएव संघ—राज्यों को किसी प्रकार की विशेष हानि मौर्यों से नहीं हुई। ईसवी सन् की पहली सदी में कुषाण नरेशों ने अपना राज्य पेशावर से वाराणसी तक फैलाया और पश्चिम के क्षत्रप राजाओं ने मालवा आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया, जिसके कारण गणराज्यों की प्रभुता कुछ समय के लिए नष्ट हो गई थी। कुषाण साम्राज्य को नष्ट करने में गण शासकों का भी हाथ रहा। जिसके फलस्वरूप तीसरी सदी में संघों का पुनः विकास हुआ। उन्होंने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की और अपने नाम से सिक्के निर्मित किए। मौर्यों के समकालीन जितने गणराज्य थे, उन सभी ने सिक्के नहीं चलाए। व्यापारिक संघ संस्थाओं द्वारा सिक्के तैयार करने के अधिकार को राष्ट्रीय तथा राजनैतिक गणराज्यों ने ग्रहण नहीं किया था, परन्तु कुषाण युग के बाद परिस्थिति बदल गई। सभी स्वतन्त्र राजा सिक्के तैयार करने लगे। इसलिए गणराज्यों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित करके सिक्के भी प्रचलित किए। ईसा की चौथी सदी में संघ राज्यों पर अतिम प्रहार हुआ। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने दिग्विजय में सभी गणों को पराजित कर उनके राज्यों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार संघ सदा के लिए समाप्त हो गए। इस विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत में ईसा पूर्व 490 से ईसवी सन् की चौथी सदी तक अर्थात् आठ सौ वर्षों तक संघ

या गण–शासन था।

भारत में साम्राज्य स्थापना के साथ शासन की सुविधा के लिए राज्य को प्रदेशों में बाँटा गया था। मौर्यों के राज्य में ऐसी ही प्रणाली थी। कुषाण राजाओं ने भी स्थान–स्थान पर अपने कर्मचारी नियुक्त किए थे। दूसरे शब्दों में, किसी प्रांत (जनपद) का राजा सम्राट् का आज्ञाकारी बनकर शासन करता रहा। बुरा समय आने पर केन्द्रीय सरकार कमजोर हो जाती और वहाँ के शासक स्वतंत्र हो जाते थे। कुषाण राज्य के बाद कई प्रांत स्वतंत्र हो गए। गणों तथा जनपदों ने सामूहिक रूप से कुषाण–शासन का अंत करने में कुछ कसर नहीं रखी। उनकी राजधानियाँ उस भाग (जनपद) के प्रमुख नगर हो गए और शासकों के सिक्के उसी स्थान से निकाले गये। अयोध्या, मथुरा, पांचाल, कौ"ाम्बी आदि प्रमुख नगर थे, जहाँ पर सिक्के ढाले गए।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको स्थानीय सिक्कों की उत्पत्ति, तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक, वजन मानक एवं निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

4.2 स्थानीय सिक्के

शुंग राज्य के पश्चात् ही गणराज्यों की उन्नति होने लगी। उस समय के मुख्य मार्गों तथा स्थानों पर संघों का अधिकार था। कुषाण राज्य का अंत होने पर संघ शासन का अधिक प्रचार हुआ। उनका इतिहास सिक्कों के ही आधार पर ज्ञात होता है। सिक्कों के अतिरिक्त दूसरे साधन ऐसे प्रमुख नहीं हैं, जो संघों के विषय में जानकारी दे सकें। संघों का इतिहास दो भागों में विभक्त किया है, कुषाणों के पूर्व तथा उसके बाद के गणराज्य जिनका शासन उन्नत अवस्था में था। साधारणतः इन दोनों कालों में संघ सिक्के प्रचलित थे।

4.2.1 सिक्कों की तौल

गणराज्यों के सिक्कों की तौल के विषय में मतभेद है। यह तो सभी जानते हैं कि कुषाणकाल से पहले भारत में भारतीय यूनानी सिक्के प्रचलित थे जो ईरानी तथा यूनानी तौल पर तैयार किए जाते थे। ईरानी तौल (86.4 ग्रेन) के भी आधे से कम चाँदी के सिक्के बनते रहे तथा यूनानी तौल (67 ग्रेन) को भी काम में लाया जाता था। उस ईरानी तौल को गणराज्यों ने अपनाया जिसकी आधी तौल से कम वजन के सिक्के मिलते हैं। औदुम्बर, कुणीन्द तथा यौधेय गणों ने इसी रीति पर चाँदी के सिक्के चलाए। उन लोगों ने इस धातु के लिए प्राचीन भारतीय तौल (80 रत्ती) को छोड़ दिया। परन्तु जब आर्जुनायन, नाग, मालव आदि संघ राज्यों ने ताँबे के सिक्के तैयार करने प्रारम्भ किए तो उन्होंने प्राचीन तौल (80 रत्ती) का ही प्रयोग किया। नाग सिक्के 42 ग्रेन के मिलते हैं जो भारतीय तौल के आधे हैं। ईसवी सन् के आरम्भ से कुणीन्द तथा यौधेय गणराज्यों ने भी चाँदी के सिक्के निकालने बन्द कर दिए। कुषाण–नरेशों ने सोने को अपनाया था। गणों द्वारा सोने के सिक्के चलाना कठिन था। विदेश से चाँदी का आयात कम होने के कारण ताँबे को ही सिक्कों के लिए प्रयोग किया गया। चाँदी की कमी तथा ताँबे की अधिकता से ताँबे के सिक्के वजनी बनाए जाने लगे। कुणीन्द (सन् 100 ई०) के सिक्के 221:6 या 291 ग्रेन के मिलते हैं। यौधेय सिक्के 178 ग्रेन के पाए जाते हैं। चाँदी के द्रम 32 ग्रेन के बराबर मिले हैं। इससे चाँदी तथा ताँबे का अनुपात 1:6 के बराबर हो जाता है जो उस समय के लिए सर्वथा उचित था। ताँबे के सिक्के का क्रय मूल्य जीवन की उपयोगी वस्तुएँ खरीदने के लिए पर्याप्त था।

4.2.2 धातु

मुद्रा के लिए ताँबे का प्रयोग सबसे पहले भारत में किया गया था और उसके बाद स्वतन्त्र रूप से चाँदी का भी प्रयोग होने लगा। चाँदी बाहरी धातु थी जो सदा भारत में विदेश से आती रही, लेकिन चाँदी के सिक्कों से ताँबे के सिक्के बंद नहीं हुए। दोनों एकसाथ या पृथक–पृथक प्रदेशों में प्रचलित रहे। गणराज्यों ने अधिकतर ताँबे का ही प्रयोग किया, केवल औदुम्बर, कुणीन्द तथा यौधेय गणों ने चाँदी तथा ताँबा दोनों धातुओं के सिक्के चलाए। ताँबे के सिक्के चाँदी के सहायक नहीं समझे जाते थे। गणों के सिक्कों की धातु में मिश्रण की बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती, परन्तु औदुम्बर तथा कुणीन्द के सिक्कों में कुछ मिश्रण पाया जाता है।

4.3 मथुरा के सिक्के

प्राचीनकाल से ही मथुरा हिन्दू तथा जैनियों का एक प्रमुख तीर्थस्थान रहा है। यों तो मथुरा का नाम श्रीकृष्ण से सम्बन्धित है, परन्तु ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से मथुरा में कुछ शासकों ने सिक्के चलाए जिनके नाम के अलावा विशेष रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। उनके नामांत में दत्त जुड़ा है। मथुरा में उन राजाओं का शासन शक–क्षत्रपों से पूर्व (ईसा पूर्व प्रथम सदी) में रहा होगा। हगाम (मथुरा के क्षत्रप) के सिक्कों के साथ अन्य राजाओं के सिक्के मिले हैं जो पूर्वकाल के माने गए हैं। उन पर बलभूति, पुरुषदत्त, भवदत्त, उत्तमदत्त, रामदत्त, गोमित्र, विष्णुमित्र तथा ब्रह्ममित्र के नाम खुदे हैं। सम्भव है, सभी कुषाण सामंत के रूप में राज्य करते हों। बलभूति कौशाम्बी के बृहस्पतिमित्र का समकालीन राजा था। कुल सिक्कों को चिह्न के अनुसार कई भागों में विभक्त किया जाता है। अधिकतर सिक्के ताँबे के बने हैं। ऊपरी भाग में चिह्न के अतिरिक्त राजा का नाम मिलता है। मथुरा के सिक्कों पर–

अग्रभाग–

(सभी सिक्कों पर) एक मनुष्य (कृष्ण) की मूर्ति, ब्राह्मी लिपि में बलभूति लिखा है। एलन इस आकृति को लक्ष्मी की मूर्ति मानते हैं।

पृष्ठभाग–

बिन्दुओं का समूह अथवा घेरे में वृक्ष या हाथी की मूर्ति या घोड़े की मूर्ति मिलती है। (इन्हीं चिह्नों के अनुसार सिक्कों में भेद पाया जाताहै।)

अन्य राजाओं के सिक्कों पर नाम से पहले 'राज्ञो' शब्द खुदा मिलता है। सभी पर भगवान् कृष्ण की मूर्ति मिलती है। यह मथुरा के सिक्कों की विशेषता है। इनके पश्चात् (ईसा–पूर्व 50 वर्ष के बाद ही) शक लोगों का मथुरा पर अधिकार हो गया। ब्रिटिश संग्रहालय लंदन में मथुरा शैली के कई सिक्के सुरक्षित हैं जो एक ही साँचे में ढाले गए हैं। उनके अग्रभाग पर लक्ष्मी की आकृति तथा पाँच विभिन्न चिह्न खुदे हैं। पृष्ठभाग पर हाथी या घोड़े की मूर्ति दिखलाई पड़ती है। इसी प्रकार के जितने गोलाकार सिक्के मिले हैं, उन पर ब्रह्ममित्र, सूर्यमित्र, उत्तमदत्त या रामदत्त आदि राजाओं के नाम मिलते हैं। इसी प्रकार के अधिक सिक्के मिले हैं जिनकी बनावट एक समान नहीं है। एलन ने उन्हें भी मथुरा के सिक्के कहकर उल्लेख किया है।

तीसरी शती में शासन करने वाले नागवंशी राजाओं के अभिलेख तथा सिक्के मिले हैं। पद्मावती तथा मथुरा के समीप भूभाग से ऐसे सिक्के प्राप्त हुए हैं जिनके नाम से नाग शब्द जुड़ा है, जैसे–भवनाग, स्कन्दनाग, भीमनाग, बृहस्पतिनाग या देवनाग। इन मुद्रा–लेखों पर विचार करने से विदित होता है कि इन्हीं शासकों को समुद्रगुप्त ने परास्त किया था, जिनके नाम प्रयाग प्रशस्ति में उल्लिखित हैं।

पांचाल, कौशाम्बी (वत्स राज्य), कौसल (राजधानी अयोध्या यानी साकेत) आदि क्षेत्रों का नाम लिया जा सकता है। शुंगवंश के थोड़े सिक्के प्राप्त हुए हैं, परन्तु उसके समकालीन जनपदों के राजाओं के सिक्के बहुत संख्या में मिले हैं। उन जनपदों में गुप्तकाल से पूर्व शासक राज्य करते रहे, परन्तु समुद्रगुप्त के दिग्विजय से सबका अंत हो गया। यही कारण है कि जनपदों के सिक्के ईसा पूर्व 200 वर्ष से प्रारम्भ होकर तीसरी सदी तक समाप्त हो जाते हैं। गुप्त शासन में किसी भी अधीन राजा को सिक्का तैयार करने का अधिकार न था। मौर्य शासन के बाद तथा गुप्त सम्राटों से पहले उत्तरी भारत में जनपद राज्यों के सिक्के मिलते हैं। अयोध्या तथा अहिछत्र (पांचाल) के सिक्कों पर 'मित्र' नाम अधिक पाया जाता है। विद्वानों ने इससे अनुमान लगाया है कि किसी 'मित्र' वंश का राज्य इन स्थानों में था। परन्तु नाम के आधार पर वंश को स्वीकृत करना प्रामाणिक नहीं समझा जा सकता। अग्निमित्र नामधारी राजा के सिक्के मिले हैं जिसका शुंगवंश से सम्बन्ध स्थापित करना कठिन है। इस तरह नाम की समानता के आधार पर ऐतिहासिक तथ्य स्वीकृत करना सम्भव नहीं है। जिस जनपद में सिक्के मिले हैं, उसी स्थान के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन सिक्कों की बनावट तथा लिपि (लेखन–शैली) को देखकर तिथि का अनुमान किया जाता है, तब भी उनके शासनकाल को निश्चित करना कठिन है।

4.4 अयोध्या के सिक्के

प्राचीन कोसल (दशरथ का) राज्य इस समय अवध के नाम से जाना जाता है। सरयू नदी के किनारे वर्तमान अयोध्या, इसकी राजधानी साकेत के नाम से प्रसिद्ध थी। यद्यपि प्राचीन इतिहास अज्ञात है, किन्तु अयोध्या

क्षेत्र से प्राप्त सिक्कों से तिथि का अनुमान किया जा सकता है। लिपि के आधार पर इस जनपद के सिक्के दो वर्ग में विभक्त किए जाते हैं। (1) ईसवी–पूर्व वर्गाकार साँचे में ढाले हुए सिक्के, इसमें धनदेव का नामोल्लेख है। पुष्यमित्र के छठे पुत्र अयोध्या लेख के धनदेव से इसकी समता की जा सकती है। (2) दूसरे वर्ग में ठप्पे द्वारा निर्मित सिक्के को स्थान दिया गया है। स्वस्तिक तथा नन्दिपाद के चिह्न विशेष रूप से दिखाई देते हैं। राजा के नाम के साथ मित्र जुड़ा मिलता है।

अग्रभाग पर चन्द्र, स्वस्तिक, नन्दिपाद वृषभ, घेरे में वृक्ष आदि आकृतियाँ अयोध्या सिक्कों में विशेष स्थान रखती हैं। मित्र सहित नाम सदेह उत्पन्न करता है कि पांचाल से अयोध्या का किसी प्रकार का सम्बन्ध था या नहीं। सम्भवतः समीप के प्रदेश में प्रचलित तक्षशिला, मालवा आदि के सिक्कों से चिह्नों का अनुकरण किया गया था। अयोध्या के सिक्के सर्वथा भारतीय शैली के हैं। मित्रवंश के दस विभिन्न राजाओं के सिक्के मिले हैं। उनको 'वृषभ तथा मूर्ग' प्रकार के नाम से पुकारा जाता है।

अग्रभाग–

नन्दि या नन्दिपादब्राह्मी लिपि में राजा का नाम आयुमित्र या सत्यमित्र या देवमिन्त्र या विजयमित्रआदि लिखा मिलता है।

पृष्ठभाग–

नन्दि, वेदिका में वृक्ष, वृक्ष को देखता हुआ मुर्गा चित्रित है।

अन्य प्रकार के भी ताँबे के सिक्के मिले हैं। जिन पर एक ओर नन्दि, हाथी अथवा स्वस्तिक आदि का चिह्न मिलता है। ऊपर की ओर विशाखदेव धनदेव, कुसुदसेन, अजवर्मा आदि राजाओं का नाम ब्राह्मी लिपि में खुदा रहता है। इन सिक्कों के पृष्ठभाग पर सूर्य का चिह्न, घेरे में वृक्ष, त्रिशूल या नन्दिपाद अथवा किसी स्त्री की मूर्ति दिखलाई पड़ती है। ये सिक्के ऊपरी चिह्न से नन्दि वाला, हाथी वाला, लक्ष्मी वाला तथा स्वस्तिक वाला शैली के सिक्के कहे जाते हैं। इन सिक्कों कोकाल के अनुसार निम्न क्रम में रख सकते हैं – (1) विशाखदेव (2) धनदेव (3) मूलदेव (4) कुसुदसेन (5) अजवर्मा (6) संघमित्र (7) विजयमित्र (8) देवमित्र (9) सत्यमित्र तथा (10) आयुमित्र के सिक्के।

4.5 पांचाल के सिक्के

प्राचीनकाल में पांचाल देश रुहेलखण्ड के प्रान्त का बोधक था। पांचाल जनपद गंगा नदी के कारण उत्तरी तथा दक्षिणी भागों में बँटा था। उत्तरी भाग की राजधानी अहिछत्र थी जो आधुनिक रामनगर से साढ़े तीन मील उत्तर की ओर स्थित है। दक्षिण की राजधानी काम्पिल्य थी। पांचाल जनपद के सिक्के उत्तरी भाग से सम्बन्ध रखते हैं और बरेली के समीपवर्ती भूभाग में पाए गए हैं। यहाँ पर सभी सिक्के ठप्पा द्वारा तैयार किए जाते थे।

यद्यपि पांचाल जनपद के सिक्के अधिकतर अहिछत्र नामक स्थान से मिले हैं, परन्तु राज्य की सीमा निर्धारित करना कठिन है। स्मिथ आदि विद्वानों का अनुमान है कि पांचालवंश के नरेशों का राज्य पूर्वी कौसल (गोरखपुर, बस्ती आदि जिलों) तक फैला था। सम्भवतः वे दोनों पांचाल तथा कौसल (राजधानी अयोध्या) जनपदों के शासक थे। इन सिक्कों की लिपि तथा लेख से प्रकट होता है कि ये ईसा पूर्व 200 से ईसा की पहली सदी तक प्रचलित रहे हों। पभोसा लेख से प्रमाणित होता है कि पांचाल (अहिछत्र के राजा) तथा वत्स (कौशाम्बी के राजा) दोनों राज्यों पर एक ही वंश का राज्य था। इसकी पुष्टि वंगपाल के ताँबे के सिक्के से की जाती है। यह नाम अहिछत्र के एक सिक्के में उल्लिखित है तथा पभोसा के लेख में भी वंगपाल का नाम आता है। डॉ० अलतेकर ने सिक्के तथा लेख वाले वंगपाल को एक ही व्यक्ति माना है।

पांचाल के सिक्कों पर जो नाम मिले हैं, उनके अंत में मित्र शब्द जुड़ा हुआ है। अतएव यह कहा जाता है कि मित्रवंश के राजाओं ने अहिछत्र में राज्य करने पर सिक्के चलाए। यहाँ के सिक्कों में अग्निमित्र नामक राजा का सिक्का मिला है। रैपसन आदि का कथन है कि शुंगवंश का द्वितीय शासक (पुष्यमित्र का पुत्र) अग्निमित्र तथा अहिछत्र का राजा (सिक्कों वाला) अग्निमित्र एक ही व्यक्ति थे। पुराण तथा मालविकाग्निमित्र में उल्लिखित अग्निमित्र की समता सिक्कों के चलाने वाले राजा अग्निमित्र से करते हैं। परन्तु नाम की समानता तथा मित्र उपाधि की समानता से कोई ऐतिहासिक निर्णय नहीं किया जा सकता। यह सम्भव है कि वे (पांचाल के राजा) शुंगवंश के समकालीन राज्य करते रहे हों और अधीनता स्वीकार कर ली हो। अहिछत्र में शिवमंदिर की खुदाई में पांचालवंशी राजाओं के सिक्के मिले हैं जिनसे प्रायः बारह नरेशों के नाम ज्ञात होते हैं। शायद ऐसी लम्बी तथा एक समान

सिक्कों की श्रेणी अन्यत्र नहीं पाई जाती। सभी सिक्के ताँबे के हैं, गोलाकार हैं तथा ठप्पा से राजा का नाम और चिह्न अंकित हैं। प्रायः सभी सिक्कों पर तीन चिह्न एक से मिलते हैं और ब्राह्मी लिपि में राजा का नाम। पृष्ठ भाग पर घेरा या कुण्ड की आकृति अथवा अग्नि या इन्द्र की मूर्ति दिखाई देती है। इन सिक्कों पर तीन चिह्नों (बाई ओर घेरे में वृक्ष, मध्य में शिवलिंग जिसकी रक्षा नागदेवता कर रहे हैं तथा दाहिनी ओर सर्पों से बनाया गया वृत्ताकार चिह्न है) के नीचे किसी एक राजा–अग्निमित्र, भानुमित्र, भूमिमित्र, बृहस्पतिमित्र, ध्रुवमित्र, इन्द्रमित्र, जयमित्र, फाल्गुनिमित्र, सूर्यमित्र या विष्णुमित्र आदि–का नाम लिखा रहता है। दूसरी ओर हवनकुण्ड, ज्वालायुक्त अग्नि अथवा मनुष्य की आकृति बनी रहती है। किसी–किसी पर नन्दिपाद, शिव, इन्द्र आदि की मूर्तियाँ अंकित मिलती हैं। संक्षेप में, इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अहिछत्र के राजाओं ने दो सौ वर्षों तक राज्य किया, सिक्के चलाए तथा वत्स और पांचाल में समान रूप से शासन किया। इसके अतिरिक्त, पांचालवंशी नरेशों के विषय में कोई अन्य ऐतिहासिक बातें मालूम नहीं हैं। सिक्कों के आधार पर डॉ0 अलतेकर ने पांचाल में शासन करने वाले दूसरे राजाओं के भी नाम का पता लगाया है और सिक्कों के परीक्षण से राजाओं में परस्पर सम्बन्ध का अनुमान लगाते हैं।

4.6 कौशाम्बी के सिक्के

आधुनिक प्रयागराज नगर से तीस मील दक्षिण–पश्चिम में यमुना के समीप वत्स नामक जनपद था जिसका उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में भी मिलता है। वर्तमान कौसल (प्राचीन कौशाम्बी) उस राज्य की राजधानी थी। कौशाम्बी प्रमुख सैनिक केन्द्र ही नहीं था, बल्कि वहाँ से व्यापारिक मार्ग पश्चिम की ओर जाता था। शुंगकाल के बाद ही यहाँ के राजा अपने नाम के स्वतंत्र रूप से सिक्के चलाने लगे। कौशाम्बी के समीप पभोसा के लेख से ज्ञात होता है कि वत्स तथा पांचाल दोनों जनपद एक ही राजा के अधीन थे। उस लेख में यह वर्णित है कि कौशाम्बी के राजा बृहस्पतिमित्र का पितामह भागवत अहिछत्र के राजा का पुत्र था। इसकी पुष्टि सिक्कों से की जाती है। कौशाम्बी के राजा बृहस्पतिमित्र के सिक्के कौशाम्बी के अतिरिक्त अहिछत्र में भी मिले हैं, जो पांचाल की राजधानी थी। कौशाम्बी के शासकों के सम्बन्ध में विशेष बातें ज्ञात नहीं हैं, परन्तु सिक्कों द्वारा इस जनपद में राज्य करने वाले राजाओं के नामों का पता लगता है। बृहस्पतिमित्र के सिक्के अधिक मिले हैं। कनिंघम ने अश्वघोष, ज्येष्ठमित्र, देवमित्र आदि का नाम सिक्कों पर पढ़ा था। डॉ० अल्तेकर ने कौशाम्बी के सिक्कों का विशेष रूप से अध्ययन कर उसके इतिहास पर प्रकाश डाला है तथा अनेक नए राजाओं के नामों का पता लगाया है। कौशाम्बी के सारे सिक्कों पर नन्दि तथा घेरे में वृक्ष का चिह्न पाया जाता है। अग्रभाग में घेरे में वृक्ष दिखाई देता है तथा उसके नीचे सीधी लकीर में वंगघोष, राधामित्र, सूरमित्र, वरुणमित्र, प्रजापतिमित्र, रजनीमित्र आदि का नाम खुदा है। पृष्ठभाग की ओर नन्दि (वृषभ) की मूर्ति सभी सिक्कों में पाई जाती है। इन सिक्कों की लेखन–शैली तथा लिपि के आधार पर यह माना जाता है कि ईसा पूर्व दूसरी तथा पहली सदी में ये राजा शासन करते थे। राजमित्र तथा वरुणमित्र के सिक्के अहिछत्र (रामनगर) में भी मिले हैं, परन्तु उन पर पांचाल चिह्न विद्यमान नहीं है। वरुणमित्र के शिलाखण्ड पर एक लेख कौशाम्बी में मिला है (राज्ञो गोतीपुतस वरुणमितस....) जिसके आधार पर ये सिक्के कौशाम्बी नरेश द्वारा चलाए माने जाते हैं।

कौशाम्बी के सिक्कों से मध्यदेश (उत्तर प्रदेश) के प्राचीन इतिहास पर काफी प्रकाश पड़ा है। मौर्य शासन के बाद इस भूभाग का इतिहास अंधकारमय समझा जाता था, परन्तु नई खोज से प्राप्त सिक्कों द्वारा दो विभिन्न वंशों का पता लगता है जो ईसा पूर्व दूसरी सदी में तथा दूसरी शताब्दी ईसवी में राज्य करते रहे। सबसे पहला कौशाम्बी का शासक वंगघोष माना जाता है जिसके सिक्के पर वृषभ (वत्स) की आकृति के कारण उस राजवंश का नाम वत्स रखा गया। सम्भवतः वह ईसा पूर्व 150 में राज्य करता था। पुष्यमित्र शुंग का भी राज्य मध्यदेश तक फैला हुआ था। उसके शासन के पश्चात् मित्र नामधारी राजागण कौशाम्बी पर पहली सदी में राज्य करते रहे। इसी वंश के अनेक राजाओं जपसकम चेप नाम डॉ० अलतेकर ने सिक्कों को पढ़कर प्रकाशित किया है। मित्र उपाधि से शुगवंश से इनका कोई सम्बन्ध निश्चित नहीं किया जा सकता। मित्रवंश के पश्चात् पचास वर्षों तक कुषाणवंश का अधिकार कौशाम्बी पर था। कनिष्क के महाक्षत्रप इस प्रान्त में शासन करते रहे, परन्तु उस अवधि के बाद मग नामधारी राजाओं ने कुषाण–शासन को नष्ट कर कौशाम्बी पर राज्य स्थापित कर लिया था। उस वंश के शिवमग, भद्रमग, सतमग, विजयमग तथा पूरमग आदि राजाओं के नाम डॉ० अलतेकर द्वारा प्रकाशित किए गए हैं। उनके कथनानुसार समुद्रगुप्त ने पुशवश्री नामक अंतिम कौशाम्बी नरेश को परास्त कर उसे गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था।

कौशाम्बी के सिक्के केवल ताँबे के मिले हैं जिनकी तोल आधा तोला के बराबर मिलती है। उनका मूल्य आजकल के चार आने के बराबर माना गया है। ताँबे के सिक्के चलाने का मुख्य कारण यह था कि इसी से पर्याप्त रूप से क्रय–विक्रय का कार्य सम्पन्न होता था। सर्वसाधारण के लिए चाँदी के सिक्कों की आवश्यकता नहीं थी

(जैसे उस समय सोने की मुहर जनता में प्रयोग नहीं होती थी)। आजकल के पैसा के स्थान पर कौड़ियाँ चलती थीं। एक रुपया (एक तोला चाँदी) में एक गाय, 32 सेर अच्छा चावल अथवा 5 सेर घी खरीदा जाता था। इसलिए साधारण जनता का कार्य उन ताँबे के सिक्कों से ही सुगमता से चलता रहा।

4.7 सारांश

मौर्य साम्राज्य के विघटन के पश्चात् राजनीतिक क्षेत्र में स्थानीयता की प्रवृत्ति सहसा बलवती हो उठती है। क्षेत्रीय पहचान वाले जनपदीय राज्य तथा साजात्य को महत्व देने वाले गणराज्य एक बार पुनः उत्तर भारत के राजनीतिक मानचित्र पर उभर जाते हैं। द्वितीय शती ई. पूर्व से लेकर तीसरी शती ई. तक के विस्तृत कालखण्ड में अनेक जनपदीय राज्यों एवं गणराज्यों का अस्तित्व दिखाई देता है। ये छोटे–छोटे राज्य पश्चिमोत्तर भारत से लेकर पूर्वी उत्तर प्रदेश तक फैले हुए थे। इनके अन्तर्गत गणराज्यों में औदुम्बर, कुणिन्द, मालव, यौधेय, आर्जुनायन आदि जहाँ उल्लेखनीय हैं, वहीं पाञ्चाल, मथुरा, कौशाम्बी तथा अयोध्या के जनपदीय राज्य भी मुख्य रूप से हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि इन राज्यों के अस्तित्व का ज्ञान हमें मुख्यतः इनकी मुद्राओं से प्राप्त होता है। इनमें गणों की मुद्राओं की पहचान तो अपेक्षाकृत सरल है, क्योंकि प्रायः उन पर गणों के नामों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है तथा उनके शिष्ट प्रतीकों का भी अंकन मिलता है किन्तु जनपदीय मुद्राओं की पहचान करना प्रायः कठिन हो जाता है, क्योंकि अलग–अलग जनपदों में शासन करने वाले राजाओं के नामों में कभी–कभी समानता दिखायी देती है। इसी प्रकार अभिलेखविहीन मुद्राओं के पहचान में भी मुद्राशास्त्रियों को कठिनाई का अनुभव होता है क्योंकि उन पर अंकित प्रतीकों के आधार पर ही उनकी पहचान का प्रयत्न किया जाता है। किन्तु कुछ ऐसे प्रतीक भी हैं, जो एकाधिक स्थानीय राजवंशों की मुद्राओं पर प्राप्त होते हैं। तथापि अत्यन्त श्रम एवं सावधानीपूर्वक मुद्राओं से जो निष्कर्ष निकाले गये हैं, वे अधिकांशतः प्रमाणिक हैं। इनके अध्ययन से जहाँ स्थानीय राजवंशों के शासकों के सम्बन्ध में सूचना मिलती है वहीं क्षेत्र विशेष में प्रचलित धार्मिक मान्यताओं का भी ज्ञान प्राप्त होता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मौर्योत्तर काल में कभी–कभी नगर के व्यापारिक संगठनों द्वारा भी मुद्राओं का प्रवर्तन किया गया। यह बात 'नेगम', 'गधिकानम' जैसे लेखों से युक्त मुद्राओं से प्रमाणित होती है। मौर्योत्तरकालीन गणराज्यों एवं जनपदों की मुद्राओं से समकालीन जीवन के विभिन्न पक्ष उद्घाटित होते हैं, ऐसी स्थिति में हमने यहाँ कतिपय महत्वपूर्ण जनपदीय राज्यों की मुद्राओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है।

4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. स्थानीय सिक्कों की उत्पत्ति के विषय में वर्णन कीजिये।

   ....

   ....

2. स्थानीय सिक्कों की तकनीकि, प्रतीक एवं वजन मानक के विषय में टिप्पणी कीजिये।

   ....

   ....

3. मथुरा, पांचाल, अयोध्या तथा कौ''ाम्बी जनपद के प्राचीन सिक्कों के विषय में वर्णन कीजिये।

   ....

4.9 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्त परमे’’वरी लाल : भारत के पूर्वकालिक सिक्के।

राव राजवन्त एवं राव प्रदीप कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

चक्रवर्ती एस.के. : प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र का अध्ययन।

उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

ओझा, रायबहादुर गौरी’’ांकर हीराचन्द्र : प्राचीन मुद्रा।

पाण्डेय, विमले’’ा कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

इकाई 5—जनजातीय सिक्के—यौधेय, कुणिन्द, औदुम्बर, अर्जुनायन

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्दे”य

5.2 स्थानीय सिक्के

5.2.1 सिक्कों की तौल

5.2.2 धातु

5.3 यौधेय गण के सिक्के

5.4 कुणिन्द गण के सिक्के

5.5 औदुम्बर गण के सिक्के

5.6 आर्जुनायन गण के सिक्के

5.7 सारांश

5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.9 संदर्भ ग्रन्थ

5.0 प्रस्तावना

विन्सेन्ट स्मिथ द्वारा औदुम्बर, कुणिन्द, मालवा आदि जातियों को जनजाति का नाम दिया गया और अधिकांश विद्वान इसी नाम का अनुपालन करते रहे हैं। इन्हीं में से यौधेय तथा मालवों को गण और अग्र, अग्रात्य, राजन्य, त्रिगर्त आदि को जनपद कहा गया है। ये दोनों ही राजसत्तात्मक शासन प्रणाली का निर्वाह न करके गणतन्त्रात्मक शासन प्रणाली का निर्वहन कर रहे थे जिसमें समस्त नीति—निर्धारण और प्रशासन का उत्तरदायित्व जनप्रजाति या गणराज्य के प्रतिनिधि या मुखिया को हस्तगत रहता था। अवदानशतक दो प्रकार के राज्यों का उल्लेख करता है— राज्यतन्त्र और गणतन्त्र। समुद्रगुप्त की प्रयाग—प्रशस्ति से भी नौ गणराज्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। अधिकतर गणराज्यों के सिक्के गणों के नाम से प्रचलित किए गये थे, हालांकि कुछ पर राजा या महाराजा उपाधिधारक राजा का नाम भी प्राप्त होता है, जैसे औदुम्बर सिक्कों में शिवदास, रुद्रदास और धरघोष के सिक्के । इनमें से कुछ गणराज्यों के सिक्कों पर ब्राह्मी और खरोष्ठी दोनों लिपियों में लेख प्राप्त हुए हैं। शनैः शनैः खरोष्ठी का स्थान भी ब्राह्मी लिपि ने ले लिया। औदुम्बर, कुणिन्द आदि ने ताम्र सिक्कों के साथ ही यूनानी सिक्कों के समान और चिह्न युक्त रजत सिक्के भी प्रचलित किए। औदुम्बर, कुणिन्द, वैमकी और हिन्द—यवन सिक्कों की कांगड़ा के निकट ज्वालामुखी से प्राप्ति इस तथ्य की पुष्टि करती है।

प्राचीन साहित्यिक साक्ष्यों में औदुम्बर, कुणिन्द और कुछ अन्य जनजातियों व गणराज्यों का उल्लेख वाहीक, हूण आदि विदेशी जातियों के साथ किया गया है। कुलूत को भी विदेशी ही माना गया है। शिबोई (शिबि) यूनानियों के वंशज थे। अग्र, औदुम्बर और यौधेय को क्रमशः अग्रवाल वैश्य, गुजरात के ब्राह्मण और जोहिय राजपूतों का पूर्वज माना जाता है।

प्राचीनकाल में भारतवर्ष में दो प्रकार की शासन—प्रणालियाँ प्रचलित थीं। पहला राजतंत्र, जिसमें वंश—परम्परा से एक ही प्रकार का शासन होता रहा। राजा के पश्चात् उसका पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी कहलाता था और स्वतंत्र रूप से अथवा मंत्रियों की सहायता से शासन करता था। दूसरे प्रकार का शासन प्रजातंत्र के नाम से विख्यात था। उन राज्यों को गण या संघ का नाम भी दिया गया है। संघ अथवा गण राज्य का मुख्य व्यक्ति शासन का प्रधान समझा जाता था। जनता द्वारा किसी व्यक्ति का चुनाव गुण—मुख्य (प्रधान—पद) के लिए होता था। ईसा पूर्व 400 से ईसवी सदी तीन सौ वर्षों तक उत्तरी भारत में दोनों प्रकार के शासन प्रचलित रहे। पाणिनी ने ऐसे संघों का वर्णन अष्टाध्यायी में किया है। सिन्धु—गंगा के मैदानों में विशाल सेना लेकर राज्य स्थापित करना उतना ही सरल था जितना कि मरुस्थलों तथा पर्वतों के समीपवर्ती संघ—राज्यों पर विजय करना कठिन था। सिकन्दर को

भारत पर आक्रमण करते समय इन दोनों प्रकार के राज्यों से सामना करना पड़ा था। पंजाब में स्थित गणराज्यों का सामना करने पर यूनानी राजा को उनकी शक्ति का ज्ञान हुआ था। पंजाब, राजपूताना, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, बुन्देलखण्ड आदि प्रदेशों में गणराज्य कार्य करते रहे। भारतवर्ष में चन्द्रगुप्त मौर्य ने साम्राज्य स्थापना की कल्पना आरम्भ की तथा वह सफल भी रहा। अतएव ऐसे बड़े सम्राट् के सम्मुख छोटे–छोटे गणराज्य ठहर न सके और मैदानों से हटकर उन्होंने पर्वतों तथा मरुस्थलों में शरण ली। राजा अशोक को साम्राज्य बढ़ाने की लिप्सा न रही। अतएव संघ–राज्यों को किसी प्रकार की विशेष हानि मौर्यों से नहीं हुई। ईसवी सन् की पहली सदी में कुषाण नरेशों ने अपना राज्य पेशावर से वाराणसी तक फैलाया और पश्चिम के क्षत्रप राजाओं ने मालवा आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया, जिसके कारण गणराज्यों की प्रभुता कुछ समय के लिए नष्ट हो गई थी। कुषाण साम्राज्य को नष्ट करने में गण शासकों का भी हाथ रहा। जिसके फलस्वरूप तीसरी सदी में संघों का पुनः विकास हुआ। उन्होंने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की और अपने नाम से सिक्के निर्मित किए। मौर्यों के समकालीन जितने गणराज्य थे, उन सभी ने सिक्के नहीं चलाए। व्यापारिक संघ संस्थाओं द्वारा सिक्के तैयार करने के अधिकार को राष्ट्रीय तथा राजनैतिक गणराज्यों ने ग्रहण नहीं किया था, परन्तु कुषाण युग के बाद परिस्थिति बदल गई। सभी स्वतन्त्र राजा सिक्के तैयार करने लगे। इसलिए गणराज्यों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित करके सिक्के भी प्रचलित किए। ईसा की चौथी सदी में संघ राज्यों पर अतिम प्रहार हुआ। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने दिग्विजय में सभी गणों को पराजित कर उनके राज्यों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार संघ सदा के लिए समाप्त हो गए। इस विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत में ईसा पूर्व 490 से ईसवी सन् की चौथी सदी तक अर्थात् आठ सौ वर्षों तक संघ या गण–शासन था।

भारत में साम्राज्य स्थापना के साथ शासन की सुविधा के लिए राज्य को प्रदेशों में बाँटा गया था। मौर्यों के राज्य में ऐसी ही प्रणाली थी। कुषाण राजाओं ने भी स्थान–स्थान पर अपने कर्मचारी नियुक्त किए थे। दूसरे शब्दों में, किसी प्रांत (जनपद) का राजा सम्राट् का आज्ञाकारी बनकर शासन करता रहा। बुरा समय आने पर केन्द्रीय सरकार कमजोर हो जाती और वहाँ के शासक स्वतंत्र हो जाते थे। कुषाण राज्य के बाद कई प्रांत स्वतंत्र हो गए। गणों तथा जनपदों ने सामूहिक रूप से कुषाण–शासन का अंत करने में कुछ कसर नहीं रखी। विभिन्न गणराज्यों और उनके सिक्कों का संक्षिप्त विवरण इस इकाई में दिया जायेगा।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको जनजातीय सिक्कों की उत्पत्ति, तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक, वजन मानक एवं निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

5.2 जनजातीय सिक्के

शुंग राज्य के पश्चात् ही गणराज्यों की उन्नति होने लगी। उस समय के मुख्य मार्गों तथा स्थानों पर संघों का अधिकार था। कुषाण राज्य का अंत होने पर संघ शासन का अधिक प्रचार हुआ। उनका इतिहास सिक्कों के ही आधार पर ज्ञात होता है। सिक्कों के अतिरिक्त दूसरे साधन ऐसे प्रमुख नहीं हैं, जो संघों के विषय में जानकारी दे सकें। संघों का इतिहास दो भागों में विभक्त किया है, कुषाणों के पूर्व तथा उसके बाद के गणराज्य जिनका शासन उन्नत अवस्था में था। साधारणतः इन दोनों कालों में संघ सिक्के प्रचलित थे।

5.2.1 सिक्कों की तौल

गणराज्यों के सिक्कों की तौल के विषय में मतभेद है। यह तो सभी जानते हैं कि कुषाणकाल से पहले भारत में भारतीय यूनानी सिक्के प्रचलित थे जो ईरानी तथा यूनानी तौल पर तैयार किए जाते थे। ईरानी तौल (86.4 ग्रेन) के भी आधे से कम चाँदी के सिक्के बनते रहे तथा यूनानी तौल (67 ग्रेन) को भी काम में लाया जाता था। उस ईरानी तौल को गणराज्यों ने अपनाया जिसकी आधी तौल से कम वजन के सिक्के मिलते हैं। औदुम्बर, कुणीन्द तथा यौधेय गणों ने इसी रीति पर चाँदी के सिक्के चलाए। उन लोगों ने इस धातु के लिए प्राचीन भारतीय तौल (80 रत्ती) को छोड़ दिया। परन्तु जब आर्जुनायन, नाग, मालव आदि संघ राज्यों ने ताँबे के सिक्के तैयार करने प्रारम्भ किए तो उन्होंने प्राचीन तौल (80 रत्ती) का ही प्रयोग किया। नाग सिक्के 42 ग्रेन के मिलते हैं जो भारतीय तौल के आधे हैं। ईसवी सन् के आरम्भ से कुणीन्द तथा यौधेय गणराज्यों ने भी चाँदी के सिक्के निकालने बन्द कर दिए। कुषाण–नरेशों ने सोने को अपनाया था। गणों द्वारा सोने के सिक्के चलाना कठिन था। विदेश से चाँदी का

आयात कम होने के कारण ताँबे को ही सिक्कों के लिए प्रयोग किया गया। चाँदी की कमी तथा ताँबे की अधिकता से ताँबे के सिक्के वजनी बनाए जाने लगे। कुणीन्द (सन् 100 ई०) के सिक्के 221:6 या 291 ग्रेन के मिलते हैं। यौधेय सिक्के 178 ग्रेन के पाए जाते हैं। चाँदी के द्रम 32 ग्रेन के बराबर मिले हैं। इससे चाँदी तथा ताँबे का अनुपात 1:6 के बराबर हो जाता है जो उस समय के लिए सर्वथा उचित था। ताँबे के सिक्के का क्रय मूल्य जीवन की उपयोगी वस्तुएँ खरीदने के लिए पर्याप्त था।

5.2.2 धातु

मुद्रा के लिए ताँबे का प्रयोग सबसे पहले भारत में किया गया था और उसके बाद स्वतन्त्र रूप से चाँदी का भी प्रयोग होने लगा। चाँदी बाहरी धातु थी जो सदा भारत में विदेश से आती रही, लेकिन चाँदी के सिक्कों से ताँबे के सिक्के बंद नहीं हुए। दोनों एकसाथ या पृथक–पृथक प्रदेशों में प्रचलित रहे। गणराज्यों ने अधिकतर ताँबे का ही प्रयोग किया, केवल औदुम्बर, कुणीन्द तथा यौधेय गणों ने चाँदी तथा ताँबा दोनों धातुओं के सिक्के चलाए। ताँबे के सिक्के चाँदी के सहायक नहीं समझे जाते थे। गणों के सिक्कों की धातु में मिश्रण की बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती, परन्तु औदुम्बर तथा कुणीन्द के सिक्कों में कुछ मिश्रण पाया जाता है।

5.3 यौधेय गण के सिक्के

बहुत प्राचीन समय से यौधेय जाति व्यास नदी के पार भारत के उत्तर–पश्चिमी प्रांत में रहती थी। ईसा पूर्व 500 वर्ष में पाणिनी ने इसे आयुधजीवी संघ के रूप में उल्लिखित किया है। जिसका यह तात्पर्य था कि इस जाति का प्रधान कार्य युद्ध करना था। यौधेय लोगों का उल्लेख साहित्य तथा लेखों में मिलता है। मौर्य शासन, क्षत्रप तथा कुषाण काल में इनका अस्तित्व पूर्ववत् बना रहा। ईसवी सन् की दूसरी सदी में यौधेय जाति उन्नति के शिखर पर पहुँच गई थी। मौर्य–शासन का अन्त होने पर वे स्वतन्त्र राजा बन गए और फलस्वरूप उन्होंने अपना सिक्का तैयार करवाया। यौधेय सिक्के कुषाण युग से पहले तथा कुषाण काल के बाद अपनी विशेषता रखते हैं। उनका राज्य बहुधान्यक के नाम से प्रसिद्ध था। हरियाणा में वह प्रांत वर्तमान रोहतक है। कुषाण राज्य को नष्ट करने में आर्जुनायन तथा कुणीन्द गणों के साथ मिलकर यौधेय संघ ने एक दृढ़ संघ बनाया था। सन् 150 ई० में गिरनार (रुद्रदामन महाक्षत्रप) के लेख से ज्ञात होता है कि यौधेय की गणना प्रमुख वीर क्षत्रियों में होती थी। शायद इन लोगों ने कुषाण काल में उत्तरी–पश्चिमी प्रांत को छोड़कर राजस्थान (विजयगढ़) में शरण ली थी। बृहत्संहिता में इस जाति का नाम उल्लिखित है। प्रयाग के प्रशस्तिकार हरिषेण ने लिखा है कि यौधेय संघ अन्य गणों की तरह गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त को कर दिया करता था। विद्वानों का मत है कि वर्तमान पश्चिम पंजाब (पाकिस्तान) में बहावलपुर राज्य में यौधेय जाति के वंशज, जोदिया नाम से पुकारे जाते हैं। ये सतलज नदी के दोनों किनारों पर निवास करते थे। भरतपुर राज्य में यौधेय लोगों का एक लेख मिला है, जिसमें एक अधिपति की उपाधि महाराज महासेनापति उल्लिखित है। इस प्रकार प्रायः आठ सौ वर्षों तक यौधेयगण का शासन रहा।

इनके सिक्के पूर्वी पंजाब, सतलज और यमुना नदियों के बीच रोहतक जिले में (यौधेय लोगों का प्राचीन स्थान) मिलते हैं। यौधेयगण के सिक्के तीन भागों में कालक्रम के अनुसार विभक्त किए गए हैं। पहला ईसवी–पूर्व ३०० का, जिसे 'नन्दि तथा हाथी' वाला सिक्का कहा जाता है।

ताँबे का सिक्का

अग्रभाग	**पृष्ठभाग**
नन्दि के सम्मुख स्तम्भ, ब्राह्मी लिपि में 'यौधेयानां बहुधान्यक' या 'भूमिधनुष' लिखा है।	हाथी तथा नन्दिपद का चिह्न है।

दूसरे कालक्रम में चाँदी का सिक्का ईसा पूर्व पहली सदी में तैयार किया गया था। इसके अग्रभाग में षडानन (कार्तिकेय) की मूर्ति कमल पर खड़ी दिखलाई गई है। उसी ओर ब्राह्मी लिपिमें यौधेयों के ब्रह्मण्यदेव, ''यौधेयानां भगवतो स्वामिनो ब्रह्मणस्य'' अंकित है। ताँबे के सिक्कों पर ''भगवतो स्वामिनो ब्रह्मणस्य देवस्य कुमारस्य'' लिखा मिलता है। ब्रह्मण्यदेव के स्थान पर कार्तिकेय का नाम कुमार खुदा है। इससे प्रकट होता है कि युद्ध के प्रेमी (पाणिनि का आयुधजीवी संघ) यौधेय लोगों ने कार्तिकेय (युद्ध के देवता) का नाम सिक्कों पर अंकित करवाया था। इसके पृष्ठभाग में बोधिवृक्ष, सुमेरु पर्वत, नन्दिपाद चिह्न तथा कौमारी देवी की मूर्तियाँ हैं। सब लेखों को मिलाकर

'भगवतः स्वामिनो ब्रह्मण्यदेवस्य' बन सकता है।

दूसरे प्रकार के एकमुखी कार्तिकेय सिक्के पर नाम के साथ द्रम शब्द आता है। दोनों तरफ चिह्न वही हैं, परन्तु लेख 'ब्रह्मण्यदेवस्य द्रम' (ब्रह्मदेव का सिक्का) खुदा है। यहाँ द्रम शब्द से सिक्के का बोध होता है।

तीसरे कालक्रम के सिक्के कुषाण के अनुकरण पर तैयार किए गए थे।

अग्रभाग

शूल लिए राजा या कार्तिकेय की मूर्ति और बाई ओर मोर, ब्राह्मी लिपि में 'यौधेयगणस्य जय' अथवा 'यौधेयानां गणस्य जयः' लिखा मिलता है। (संभवतः यह सिक्का कुषाण–विजय के उपलक्ष्य में तैयार किया गया था।) इसी ओर कुछ सिक्कों पर संख्यावाचक 'द्वि' या 'तृ' लिखा है। बहुत सम्भव है कि यह संख्या यौधेय जाति के दूसरे या तीसरे गण का बोधकहै।

पृष्ठभाग

देवमूर्ति जो कुषाण सिक्कों की सूर्यमूर्ति (मिहिर) के समान है।

5.4 कुणीन्द गण के सिक्के

कुणीन्द नामक जाति सतलज नदी के प्रदेश में शिमला रियासत में निवास करती थी। इसका नाम पुराण (विष्णु और मार्कण्डेय) तथा बृहत्संहिता में मिलता है जिससे प्रकट होता है कि यह गण मद्र के समीप शासन करता रहा (मद्रे शोहन्यश्च कौणिन्दा) कांगड़ा, अम्बाला तथा सहारनपुर के जिलों में कुणीन्द के सिक्के मिले हैं। इससे प्रकट होता है कि यह गण शिवालिक पर्वत के अधोभाग से यमुना तथा सतलज के बीच राज्य करता था। औदुम्बर तथा कुणीन्द के राज्यों में दोनों लिपियों (खरोष्ठी लिपि तथा ब्राह्मी लिपि) के प्रचार के कारण सिक्कों पर दोनों लिपियों में लेख पाए जाते हैं। इस जाति के कुल दो प्रकार के सिक्के पाए जाते हैं जिसको दो अधिकारियों ने चलाया। पहले मृग वाले सिक्के पर अमोघभूति का नाम मिलता है। इसने चाँदी और ताँबे के सिक्के चलाए जिनकी तौल यूनानी तौल (चाँदी 32 रत्ती और ताँबा 144 ग्रेन) के बराबर है, परन्तु शैली भारतीय है। इससे ज्ञात होता है कि यह सिक्का ईसवी–पूर्व का है और दूसरा छतेश्वर वाला सिक्का तीसरी सदी का है। मृग वाले सिक्के को किसी राजा से सम्बन्धित न मानकर अमोघभूति शब्द से उपाधि का अर्थ निकालते हैं। इसका अर्थ हुआ जिसकी विभूति कभी कम न हो। सम्भवतः यूनानी एवं कुषाण शक्ति के ह्रास होने पर यह सत्ताधिकारी हो गया। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि कुणीन्द गण ने दो प्रकार के सिक्के चलाए जो ईसा पूर्व 150 से ईसवी 200 तक और मृगवाले सिक्के ई० पूर्व दूसरी सदी तक प्रचलित थे।

अग्रभाग

कमल सहित लक्ष्मी की मूर्ति, एक मृग, छत्र सहित चौकोर स्तूप तथा ब्राह्मी लिपि में 'अमोघ – भूतस महरजस राज्ञोकुणदस' लिखा है। कुणीन्द शासक ने भारतीय यूनानी राजाओं द्वारा प्रचलित चाँदी के सिक्कों की स्पर्धा में देशी ढंग से चाँदी का सिक्का तैयार कराया था।

पृष्ठभाग

सुमेरु पर्वत, स्वस्तिक, नन्दिपाद तथा बोधिवृक्ष बनाया गया है। खरोष्ठी लिपि में 'राज्ञो कुणीदस अमोघभूतिस महरजस' लिखा है।

अमोघभूति के इसी तरह के ताँबे के सिक्के मिले हैं। जिनके अग्रभाग पर ब्राह्मी लिपि में तथा पृष्ठभाग पर खरोष्ठी लिपि में लेख मिलते हैं। बाद के सिक्के पर राजा का वही नाम है, परन्तु सिर्फ ब्राह्मी लिपि में। अमोघ के अतिरिक्त कुणीन्द की जाति के छतेश्वर नामक राजा का ताँबे का सिक्का मिला है। उसके अग्रभाग में त्रिशूल लिए शिव की मूर्ति खड़ी है। लेख साफ तो नहीं है, पर रैपसन ने उस पर 'भगवत छत्रेश्वर' पढ़ा है। पृष्ठभाग में मृग, नन्दिपाद, बोधिवृक्ष तथा सुमेरु पर्वत आदि की आकृति पाई जाती है। यह सिक्का अमोघभूति से पीछे का है।

5.5 औदुम्बर गण के सिक्के

पाणिनी के गणपाठ में उल्लिखित अन्य राज्य समूहों में औदुम्बर का भी नामोल्लेख है। महाभारत में जितने

गणों का वर्णन मिलता है, उसमें औदुम्बर का भी नाम आया है। विष्णु पुराण में लिगर्त अथवा कुणीन्द जाति के साथ इसका नाम आता है। यह जाति कांगड़ा और अम्बाला प्रांतमें निवास करती थी। सम्भवतः इनकी एक शाखा पश्चिम भारत में चली गई। उन्हीं के वंशज आजकल गुजरात में औदुम्बर ब्राह्मण (गुजराती) के नाम से विख्यात हैं। औदुम्बर का नाम केवल सिक्कों से मिलता है। पंजाब के गुरुदासपुर तथा कांगड़ा में औदुम्बर सिक्कों का ढेर मिला है। पहले चौकोर ताँबे के सिक्के जो सबसे पहले इस गण ने तैयार कराए थे। ये सर्वथा भारतीय ढंग के हैं। औदुम्बर के सिक्कों पर खरोष्ठी लिपि में भी मुद्रा–लेख है जो क्षत्रप के प्रभाव का संकेत देते हैं। इस गण के सिक्के यूनानी राजा अपलदत्त के अर्द्धद्रम के समान हैं। इनके सिक्के तीन श्रेणियों में विभक्त हैं–

(1) विश्वामित्र शैली (2) हस्ती तथा मन्दिर प्रकार तथा (3) हस्ती एवं नन्दि।

प्रायः सिक्कों पर अग्रभाग में विश्वामित्र या हस्ती की आकृति के साथ खरोष्ठी लिपि में लेख 'महादेवस राज्ञोधरघोषस औदुम्बरिस' पृष्ठभाग पर मंदिर की आकृति (नन्दि भी) एवं ब्राह्मी लिपि में लेख –'महादेवस राज्ञो धरघोषस औदुम्बरिस' अंकित है। कनिंघम ने रुद्रवर्मन, अजमित्र, महीमित्र, भानुमित्र आदि शासकों के सिक्कों को औदुम्बर से सम्बद्ध किया है।

दूसरे चाँदी के सिक्के हैं, जो कम मिलते हैं। इसके चिह्न तथा धरघोष के नाम से पता चलता है कि यह औदुम्बर गण का सिक्का है। ये भारतीय यूनानी सिक्कों अर्द्धद्रम के अनुकरण पर तैयार किए गए थे। इन सिक्कों पर एक ओर मनुष्य की आकृति है। सम्भवतः कंधे पर बाघ का चमड़ा रखे शिव की मूर्ति है और खरोष्ठी लिपि में 'औदुम्बरिस' लिखा है। राजा के नाम के अतिरिक्त निचले भाग में घेरे में वृक्ष तथा त्रिशूल बना है। धरघोष महादेव का उपासक था या महोदव औदुम्बर जाति के उपास्य देव थे। एक दूसरे प्रकार का चाँदी का सिक्का मिला है जो महादेव सिक्के के ढंग का है। हाथी तथा त्रिशूल भी दिखाई देता है। इसी कारण इसे औदुम्बर गण का सिक्का मानते हैं।

तीसरे प्रकार के गोल ताँबे के सिक्के मिले हैं जो चिह्नों के आधार पर इस गण के माने जाते हैं। उन पर घेरे में वृक्ष, हाथी, त्रिशूल आदि दिखाई देते हैं जो औदुम्बर सिक्के से मिलते–जुलते हैं। इन पर दो मंजिल का मंदिर दिखलाई पड़ता है। उन पर खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपियों में राजाओं के नाम मिले हैं। औदुम्बर सिक्के से भारतीय वास्तुकला पर प्रकाश पड़ता है। उन पर मंदिर की आकृति मिलती है जिसके ऊपरी भाग में छत्र भी है। समीप में ही परशु के साथ त्रिशूल बना रहता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि औदुम्बर शैव मतानुयायी थे।

5.6 आर्जुनायन गण के सिक्के

आर्जुनायन गण के सम्बन्ध में कोई विशेष बात मालूम नहीं है, परन्तु यह कहा जाता है कि इन्होंने यौधेय के साथ मिलकर कुषाण तथा पद्मावती के नाग राजाओं को परास्त किया था और स्वतंत्रता की घोषणा की थी। साहित्यिक प्रमाणों से तो ज्ञात होता है कि आर्जुनायन नामक गण ईसा–पूर्व चौथी सदी में था। पाणिनी के गणपाठ (4, 1, 112) में यौधेय लोगों के साथ आर्जुनायन का नाम भी आता है। उस समय से लेकर ईसा की चौथी सदी तक आर्जुनायन गण की स्थिति का पता लेखों से मिलता है। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग की प्रशस्ति में सीमा जातियों में आर्जुनायन का भी नाम उल्लिखित है। प्रायः आठ सौ वर्षों तक इनके राज्य का पता चलता है। उसी भाग में आर्जुनायन गण के सिक्के भी मिले हैं। यद्यपि उनकी स्वतंत्रता बहुत समय तक बनी रही, परन्तु कुषाण काल के बाद इनके सिक्कों का पता नहीं लगता। शायद इन्होंने सिक्के का कार्य समाप्त कर दिया था। ईसा पूर्व के यौधेय सिक्कों की तरह इस गण ने भी सिक्के तैयार करवाए। परन्तु जो सिक्के मिलते हैं, वे भी विदेशी अनुकरण हैं। आगरा, मथुरा, भरतपुर तथा अलवर राज्य में आर्जुनायन जाति के (गण) सिक्के मिले हैं। इस गण ने कुल दो प्रकार के ताँबे के सिक्के प्रचलित किए। उन पर भारतीय चिह्न तथा ब्राह्मी लिपि में अक्षर पाए जाते हैं। इनके सिक्के पर

अग्रभाग	**पृष्ठभाग**
नन्दि की आकृति	खड़े मनुष्य का चित्र, मुद्रा–लेख ब्राह्मी लिपि में आर्जुनायन।

दूसरे प्रकार के सिक्के में अग्रभाग पर वेण्टनी या घेरा में वृक्ष तथा हाथी की आकृति है तथा पृष्ठभाग परं ब्राह्मी लिपि में 'आर्जुनायनानां जयः' लिखा है। सम्भवतः यह सिक्का किसी विजय का सूचक है।

5.7 सारांश

मौर्य साम्राज्य के विघटन के पश्चात् राजनीतिक क्षेत्र में स्थानीयता की प्रवृत्ति सहसा बलवती हो उठती है। क्षेत्रीय पहचान वाले जनपदीय राज्य तथा साजात्य को महत्व देने वाले गणराज्य एक बार पुनः उत्तर भारत के राजनीतिक मानचित्र पर उभर जाते हैं। द्वितीय शती ई. पूर्व से लेकर तीसरी शती ई. तक के विस्तृत कालखण्ड में अनेक जनपदीय राज्यों एवं गणराज्यों का अस्तित्व दिखाई देता है। ये छोटे–छोटे राज्य पश्चिमोत्तर भारत से लेकर पूर्वी उत्तर प्रदेश तक फैले हुए थे। इनके अन्तर्गत गणराज्यों में औदुम्बर, कुणिन्द, मालव, यौधेय, आर्जुनायन आदि उल्लेखनीय हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि इन राज्यों के अस्तित्व का ज्ञान हमें मुख्यतः इनकी मुद्राओं से प्राप्त होता है। इनमें गणों की मुद्राओं की पहचान अपेक्षाकृत सरल है, क्योंकि प्रायः उन पर गणों के नामों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है तथा उनके शिष्ट प्रतीकों का भी अंकन मिलता है। इनके अध्ययन से जहाँ स्थानीय राजवंशों के शासकों के सम्बन्ध में सूचना मिलती है वहीं क्षेत्र विशेष में प्रचलित धार्मिक मान्यताओं का भी ज्ञान प्राप्त होता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मौर्योत्तर काल में कभी–कभी नगर के व्यापारिक संगठनों द्वारा भी मुद्राओं का प्रवर्तन किया गया। यह बात 'नेगम', 'गधिकानम' जैसे लेखों से युक्त मुद्राओं से प्रमाणित होती है। मौर्योत्तरकालीन गणराज्यों एवं जनपदों की मुद्राओं से समकालीन जीवन के विभिन्न पक्ष उद्घाटित होते हैं।

5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जनजातीय सिक्कों की उत्पत्ति के विषय में वर्णन कीजिये।

   ....

   ....

2. जनजातीय सिक्कों की तकनीकि, प्रतीक एवं वजन मानक के विषय में टिप्पणी कीजिये।

   ....

   ....

3. यौधेय, कुणिन्द, औदुम्बर तथा अर्जुनायन के प्राचीन सिक्कों के विषय में वर्णन कीजिये।

   ....

5.9 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्त परमे''वरी लाल : भारत के पूर्वकालिक सिक्के।

राव राजवन्त एवं राव प्रदीप कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

चक्रवर्ती एस.के. : प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र का अध्ययन।

उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

ओझा, रायबहादुर गौरी''ांकर हीराचन्द्र : प्राचीन मुद्रा।

पाण्डेय, विमले''ा कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

इकाई 6–हिन्द–यवन सिक्के

इकाई की रूपरेखा

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्‌दे’’य

6.2 हिन्द–यवन सिक्के

6.2.1 हिन्द–यवन मुद्रा की विशेषता

6.2.2 सिक्कों की तौल, धातु एवं नामकरण

6.2.3 भाषा एवं लिपि

6.3 हिन्द–यवन शासकों के सिक्के

6.3.1 डियोडोटस का सिक्का

6.3.2यूथिडिमस के सिक्के

6.3.3 डेमेट्रियस (दिमित) के सिक्के

6.3.4 यूक्रिटाइड के सिक्के

6.3.5 हेलियोक्लिज के सिक्के

6.3.6 अपलदतस के सिक्के

6.3.7 मिलिन्द के सिक्के

6.3.8 स्ट्रेटो के सिक्के

6.3.9 हरमेयस की मुद्रायें

6.4 सारांश

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.6 संदर्भ ग्रन्थ

6.0 प्रस्तावना

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में यूनान के महान् विजेता सिकन्दर ने एशिया के पश्चिमी भूभाग पर विजय प्राप्त करने के बाद भारत पर आक्रमण किया था। सिकन्दर के लौटने के बाद उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके विशाल साम्राज्य के पूर्वी भागों का राजा सेनापति सेल्यूकस बन गया। इस प्रांत की राजधानी बल्ख (बैक्ट्रिया) थी, जहाँ से सेल्यूकस के प्रतिनिधि राज्य करने लगे। उस समय भारत में चन्द्रगुप्त मौर्य का उदय हो गया था। सेल्यूकस के साथ मौर्य सम्राट् के युद्ध का वर्णन यूनानी लेखकों ने किया है। राजदूत के रूप में मेगस्थनीज पाटलिपुत्र आया। उसने मौर्यशासन के विषय में पर्याप्त उल्लेख किया है। विद्वानों का मत है कि यूनानी आक्रमण के फलस्वरूप व्यापार का पश्चिमी मार्ग सुगम हुआ। फिर भी जहाँ तक सिक्कों का प्रश्न है, यूनानी मुद्राओं का प्रभाव भारतीय सिक्कों पर अत्यधिक दिखाई देता है। सिक्कों की सहायता से भारतीय यूनानी नरेशों का इतिहास ज्ञात होता है। अत्यन्त प्राचीनकाल से भारत में आहत सिक्कों का प्रचलन था, जो साहित्य में कार्षापण के नाम से विख्यात थे। उन सिक्कों पर पशु, पक्षी, मनुष्य, वृक्ष अथवा धार्मिक चिह्न–नदी, पर्वत, हाथी, मोर आदि दिखाई देते हैं। परन्तु यूनानी सिक्कों के प्रचलन से मुद्रा–नीति में भारी परिवर्तन हुआ। कार्षापण में जिन विषयों का अभाव था, वे भारतीय यूनानी सिक्कों में नहीं दिखाई देते हैं। यूनानी सिक्के गोलाकार होते थे तथा उन पर शासक एवं देवताओं के चित्र भी खुदे दिखाई देते हैं। सबसे विचित्र बात तो यह है कि उन पर मुद्रा–लेख अंकित किए गए जो कार्षापण में नहीं थे। यूनानी सिक्कों को साँचे में ढालकर तैयार करते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतवर्ष में यूनानियों के कारण

मुद्रा निर्माण कार्य में नवीनता आई, जो प्राचीन भारतीय सिक्कों में नहीं दिखलाई देती है। इसलिए यूनानी मुद्राओं का अनुकरण भारत में होने लगा।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको हिन्द–यवन सिक्कों की उत्पत्ति, तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक, वजन मानक एवं निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

6.2 हिन्द–यवन सिक्के

बैक्ट्रिया में यूनानी शासक कई वर्षों तक शासन करते रहे, जो सिकन्दर के सपने को पूरा करना चाहते थे। यूनान का महान् सम्राट् झेलम नदी से पूर्वी भूभाग में प्रवेश न कर सका। किन्तु अशोक के बाद मौर्य साम्राज्य की अवनति होने पर बैक्ट्रिया के यूनानी राजा भारत की ओर बढ़े और क्रमशः उत्तर–पश्चिम भारत तथा पश्चिमी पंजाब पर शासन करने लगे। बल्ख में रहकर डियोडोटस तथा यूथिडिमस ने सिक्के प्रचलित किए जो कलात्मक दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर माने जाते हैं। अग्रभाग में शासक की आकृति है तथा पृष्ठभाग पर देवी–देवता के चित्र एवं यूनानी अक्षरों में उपाधि–सहित शासक का नाम है।

यूनानी लेखक जस्टिन ने लिखा है कि बल्ख के शासक सेल्यूकस की छत्रछाया में रहना नहीं चाहते थे। डियोडोटस के सिक्के इसके प्रमाण हैं कि वह स्वतंत्रता की घोषणा कर चुका था। ईसा पूर्व 250 में सारे बल्ख के यूनानी लोगों ने एन्टीयोकस के विरुद्ध बगावत की, किन्तु यह विरोध अधिक दिन नहीं रह सका। द्वितीय एन्टीयोकस की मृत्यु के पश्चात् (ई० पू० 247) उसके उत्तराधिकारियों को कठिनाई का सामना करना पड़ा। द्वितीय सेल्यूकस ने अपनी बहन की शादी कर डियोडोटस से सन्धि कर ली। ऐसा कहा जाता है कि शासक के पुत्र डियोडोटस द्वितीय ने भी शासन का भार लिया, परन्तु यूथिडिमस ने उसे मार डाला और बादशाह बन बैठा। यूनानी इतिहासकार यह बतलाते हैं कि यूथिडिमस ने एन्टीयोकस द्वितीय को सूचित किया था कि उसने विरोधी (डियोडोटस) के पुत्र को मार डाला है, विद्रोह नहीं किया। इस प्रकार बल्ख एक पूर्ण स्वतंत्र प्रदेश हो गया जिसके शासक ने यूनानी शासन से अपना नाता तोड़ दिया और स्वतंत्र शासक होने की घोषणा की।यूथिडिमस तथा उसका पुत्र डेमेट्रियस (भारत का दिमित) बल्ख में शासन करते रहे। उनकी प्रचलित मुद्राएँ यह बतलाती है कि डियोडोटस तथा यूथिडिमस के सिक्के मूलतः यूनानी प्रकार के हैं और बल्ख में तैयार किए गए थे। उनकी कलात्मक तथा साहित्यिक विशेषता भी है। बल्ख के सिक्कों पर शासक की आकृति की बनावट तथा सूक्ष्मता उल्लेखनीय है।

इन विशेषताओं सहित बल्ख से दो राजाओं के यूनानी सिक्के प्रचलित हुए–

(1) वेसिलियस डियोडोटस (लेख सहित)

(2) वेसिलियस यूथिडिमाय (लेख–सहित)

6.2.1 हिन्द–यवन मुद्रा की विशेषता

इनके अतिरिक्त अन्य सिक्के भारतीय सीमा में प्रचलित हुए, जिस समय यूनानी राजा ने भारत के उत्तर–पश्चिमी भाग पर शासन आरम्भ किया था। उसकी पुष्टि भारतीय यूनानी सिक्कों के परीक्षण से हो जाती है। बल्ख के दूसरे शासक यूथिडिमस के उत्तराधिकारी ने भारत पर आक्रमण कर गान्धार में अपना राज्य स्थिर कर लिया। इस भूभाग से जो मुद्राएँ प्रचलित की गईं, उनमें कुछ भारतीयता की छाप है। कुछ भारतीय विषयों का अनुकरण भी है। यह कहना कठिन है कि यूनानी नरेशों ने भारतीय सीमा में सिक्के क्यों प्रचलित किए। यों तो बल्ख की मुद्रा व्यापार की अभिवृद्धि के लिए प्रचलित की गई थीय किन्तु भारतीय प्रचलन का रहस्य अज्ञात है। जैसा कि कहा गया है, निम्न बातों को देखने से प्रतीत होता है कि बल्ख के सिक्कों से भारतीय अनुकरण भिन्न है–

1. भारतीय सीमा में यूनानी सिक्कों की बनावट में परिवर्तन आ गया।
2. भारतीय यूनानी सिक्के कलात्मक नहीं हैं।
3. तौल तथा माप में बल्ख के सिक्कों से भिन्न है।
4. सिक्के के आकार में अन्तर आ गया। बल्ख की मुद्रा सदा गोलाकार तैयार की जाती रही, किन्तु भारत

के यूनानी शासक आकार में चौकार सिक्के भी तैयार करने लगे। उनका रूप बदल दिया गया।

5. इन सिक्कों को ठप्पा (die) प्रणाली द्वारा तैयार किया जाता था।
6. सिक्कों पर शासक तथा भारतीय देवी–देवता की आकृति का समावेश किया गया।
7. भारतीय सीमा में यूनानी सिक्कों पर यूनानी अक्षरों के अतिरिक्त खरोष्ठी लिपि में भी लेख खोदे गए। राजा का नाम अग्रभाग में यूनानी भाषा एवं लिपि में आ गया। पृष्ठभाग पर खरोष्ठी लिपि में यूनानी मुद्रा–लेख का अनुवाद अंकित किया गया।

उपर्युक्त विषयों के समावेश से भारत में प्रचलित यूनानी सिक्के पूर्वजों के सिक्कों (बल्ख की मुद्रा) से भिन्न दिखाई देते हैं। सम्भवतः भारतीय सीमा में शासन करने से बल्ख से उनका सम्बन्ध नहीं रहा, अतएव उनकी विशेषताओं की ओर से भारतीय यूनानी शासक उदासीन हो गए। इन सभी बातों के अध्ययन से भारतीय यूनानी सिक्के के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। ऐतिहासिक लेखकों द्वारा सिक्कों का अतिरिक्त अनुशीलन करने पर शासकों की यथार्थ स्थिति ज्ञात होती है।

6.2.2 सिक्कों की तौल, धातु एवं नामकरण

भारत में यूनानी शासकों ने सोने, चाँदी तथा ताँबे के सिक्के प्रचलित किए थे। बल्ख से सोने तथा चाँदी दो धातुओं की मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। सोने के सिक्के स्टेटर (stater) तथा चाँदी के ड्राम(drachm) कहे जाते थे। तक्षशिला के खरोष्ठी लिपि के लेख एवं चीनी तुर्किस्तान के अभिलेख में दोनों नाम मिलते हैं। यूनानी राजाओं ने दो तथा चार गुना तौल का ड्राम भी तैयार किया था। भारतीय व्यापारियों ने ये नाम लोकप्रिय बनाए। भारत में चाँदी के नाम को ही अपनाया गया जिसे 'द्रम' के नाम से पुकारने लगे। अभिलेखों तथा साहित्य में भी द्रम या अर्द्धद्रम (half drachm) के नाम मिलते हैं। यही नाम विकृत होकर दाम हो गया जिसे साधारण बोलचाल में पैसा समझा जाता है। रोम की स्वर्ण मुद्रा डेनेरियस (denarius) कही जाती थी। भारतीय जनता ने यूनानी स्टेटर न अपनाकर डेनेरियस का नाम अंगीकार किया जिसे गुप्त लेखों में दीनार कहा गया है। विदेशी शासकों ने भारतीय सीमा के बाहर सिक्कों के लिए ताँबे का प्रयोग नहीं किया था। इसलिए ताँबा धातु के सिक्के का प्राचीन भारतीय नाम कार्षापण ही प्रयुक्त होता रहा। ईसवी–पूर्व सदी के नानाघाट–प्रशस्ति में कार्षापण के नाम का उल्लेख है। दूसरी सदी के नासिक–लेख में कार्षापण का उल्लेख करते हुए सोना तथा ताँबे के अनुपात का वर्णन है। सम्भव है, नासिक–लेख में वर्णित कार्षापण चाँदी का सिक्का हो। गुप्त–युग में चाँदी के लिए रूपक शब्द का प्रयोग हुआ है। अतएव यह कहना उचित होगा कि भारत में यूनानी सिक्कों का नाम पर्याप्त समय तक प्रचलित रहा।

भारतीय यूनानी सिक्कों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि डियोडोटस, यूथिडिमस, यूक्रेतिद तथा मिनेन्डर (मिलिन्द) ने सोने के सिक्के (स्टेटर) तैयार किए थे, परन्तु बाद के शासकों ने चाँदी के ड्राम को ही प्रचलित किया। सोने के सिक्के तौल में 132 या 130 ग्रेन के बराबर थे, किन्तु चाँदी का द्रम (ड्राम) तौल में 66 ग्रेन के बराबर प्रचलित हुआ। अर्द्धद्रम 33 ग्रेन के बराबर हो जाता है। सोने–चाँदी में 1:10 का अनुपात था। पेन्टिलियन तथा अगोथुकल ने सीसा के भी सिक्के प्रचलित किए थे। भारतीय परिवेश में यूनानी शासकों को भारतीय चिह्न अपनाना पड़ा। किन्तु वे अधिकतर यूनानी देवता को स्थान देते रहे। अपलदत ने 33 ग्रेन तौल के बराबर से अधिक तौल का सिक्का तैयार किया जिसका कालान्तर में शक–पल्लव ने अनुकरण किया। कनिंघम को कुछ सिक्के 37 ग्रेन की तौल में प्राप्त हुए थे। व्यापारिक या आर्थिक दृष्टिकोण से 33 ग्रेन के बराबर सिक्के (अर्द्धद्रम) अधिक संख्या में तैयार किए गए जिसका अनुकरण गुप्त–नरेशों ने भी किया था। तात्पर्य यह है कि भारतीय यूनानी सिक्कों में अर्द्धद्रम (33 ग्रेन) लोकप्रिय हो गया। भारत में यूनानियों से पहले चाँदी के कार्षापण (आहत सिक्कों) का प्रचलन था जिसका तौल ड्राम से कम था। अतएव व्यवसाय की दृष्टि से अर्द्धद्रम सिक्कों (33 ग्रेन) का प्रचलन समाज के लिए लाभकर सिद्ध हुआ।

6.2.3 भाषा एवं लिपि

भारत में यूनानी शासन प्रारम्भ होने से पहले सेल्यूकस के उत्तराधिकारी स्वतंत्र होकर सिक्के तैयार करने लगे। अतः यूनानी भाषा तथा लिपि में मुद्रा–लेख खुदवाना बल्ख नरेशों के लिए स्वाभाविक घटना थी। दिमित द्वारा भारत पर आक्रमण करने के बाद उत्तर–पश्चिमी भूभाग में उनका शासन स्थापित हो गया और गान्धार के प्रदेश में राज्य करने लगे। इस भूभाग में अशोक के समय से ही प्राकृत भाषा तथा खरोष्ठी लिपि प्रचलित थी। अशोक के दो

धर्मलेख (शाहवाजगढ़ी तथा मानसेरा) भी खरोष्ठी लिपि में अंकित किए गए थे (अन्य सभी ब्राह्मी लिपि में खुदे थे)। वह लिपि गान्धार, पश्चिमी पंजाब तथा काबुल में कई सदियों तक प्रचलित रही। इसी कारण यूनानी शासकों ने भारत में आकर द्विभाषी—यूनानी तथा खरोष्ठी लिपियों सहित प्राकृत भाषा में लेख खुदवाए। दिमित के ताँबे के चौकोर सिक्के, तथा मिलिन्द की प्रायः सभी मुद्राएँ यूनानी (अग्रभाग) तथा खरोष्ठी लिपि (पृष्ठभाग) में खुदी मिलती हैं। यूनानी भाषा के मुद्रा—लेख के पृष्ठभाग में प्राकृत भाषा में अनुवाद मिलता है।

यूनानी राज्य की वृद्धि होने पर अनेक शासकों ने सिक्के प्रचलित किए। उनमें अगोथोक्लिया तथा पतलेव ने ब्राह्मी लिपि का भी प्रयोग किया था। यद्यपि अनुवाद शत—प्रतिशत शुद्ध नहीं है परन्तु इसी के सहारे विद्वानों ने मुद्रा—लेख पढ़े और अभिलेखों के समझने में इनसे पर्याप्त सहायता मिली। समय कें प्रभाव से अक्षरों का अंकन भी भद्दा होने लगा। उस दृष्टि से काबुल के भूभाग में अत्यन्त सुन्दर रीति से खुदे मुद्रा—लेख मिलते हैं। तक्षशिला, पुष्कलावती तथा कपिसा के समीप साधारण कोटि की मुद्राएँ तैयार हुई तथा पंजाब अर्थात् सियालकोट के करीब भद्दे ढंग से अपलदतस तथा स्ट्रेटो के सिक्के तैयार किए गए थे। स्थान तथा काल का प्रभाव भारतीय यूनानी सिक्कों पर स्पष्ट दिखाई देता है।

6.3 हिन्द—यवन शासकों के सिक्के

जैसा कहा गया है कि दिमित के पूर्ववर्ती यूनानी शासकों का सीधा सम्बन्ध बल्ख से था, परन्तु हिन्दुकुश पार कर यूनानियों को ऐसी नई संस्कृति तथा नई संस्थाओं से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ा जो परम्परा से सीमित थे। इसलिए हिन्दुकुश के दक्षिण में प्रचलित सिक्कों में जीवन का अभाव दिखाई देता है। बल्ख तथा दक्षिण में कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सका। बल्ख के सिक्के यूनानी कला से सम्बद्ध भाषा लिपि सहित तथा तौल भी यूनानी हैं। हिन्दुकुश के दक्षिण में भारतीय चिह्नों का अनुकरण हुआ। दो भाषी सिक्के (यूनानी एवं प्राकृत) तथा मुद्रा—लेख दो लिपियों (यूनानी तथा खरोष्ठी लिपि) में खोदे गए थे।

6.3.1 डियोडोटस का सिक्का

बल्ख का राजा, स्टेटर तथा ड्राम का प्रचलन। सोना चाँदी का प्रयोग। ठप्पा सुन्दर रीति से तैयार। सिक्का अन्तियोकस द्वितीय के सदृश। गार्डनर का मत है कि सिक्के पर चेहरा डियोडोटस का है तथा मुद्रा—लेख में अंतियोकस। कालान्तर में लेख में भी डियोडोटस अंकित किया गया, जिससे पूर्व स्वतंत्रता का अनुमान किया जाता है।

अग्रभाग—सिर पर पट्टी बाँधे, राजा की आकृति।

पृष्ठभाग—ज्यूस (भारतीय इन्द्र), वज्र फेंकता हुआ। गिद्ध पक्षी, पैर के समीप। मुद्रा—लेख—यूनानी भाषा—वैसिलियस डियोडोटाय।

डियोडोटस के समय ही बल्ख में स्वतंत्रता की घोषणा हुई। किन्तु इसकी मृत्यु के पश्चात् स्वतंत्रता समाप्त नहीं हुई। कहते हैं कि उसी नाम (डियोडोटस) से दूसरा शासक हुआ जिसे डियोडोटस द्वितीय कहते हैं। कुछ सिक्कों पर अत्यन्त कोमल चेहरा है। अतएव ऐसे सिक्के डियोडोटस द्वितीय ने प्रचलित किए होंगे। इसने राजा की उपाधि धारण की, किन्तु पिता की नहीं। डियोडोटस द्वितीय के वंशजों ने कब तक राज्य किया, यह पता नहीं है। एक यूनानी सिक्के पर सोटेरस (त्रतरस) की उपाधि अंकित है (जो पिछले शासकों ने धारण की थी)। अतएव यह सिक्का उसी वंश के किसी पिछले राजा का होगा। दस वर्ष के बच्चे के चेहरे के समान चेहरा भी अत्यन्त कोमल है।

6.3.2 यूथिडिमस के सिक्के

बैक्ट्रिया के दूसरे शासक यूथिडिमस ने अंतियोकस तृतीय की प्रबल शक्ति के सामने बल्ख पर अधिकार कर लिया। डियोडोटस के पश्चात् यूथिडिमस के सिक्के प्राप्त हुए हैं, जो यूनानी शैली के हैं। इसके आधार पर यूथिडिमस की स्वतंत्र स्थिति का पता चलता है। यूनानी इतिहासकार पलिवियस ने लिखा है कि अंतियोकस ने बल्ख को घेर लिया यानी यूथिडिमस का विरोध किया। उस झगड़े में यूथिडिमस के पुत्र डेमिट्रियस (भारतीय दिमित) ने संधि का प्रस्ताव प्रस्तुत किया और दोनों शासकों के मध्य संधि तथा शान्ति हो गई। कहा जाता है कि अतियोकस ने अपनी प्रमुखता समझकर भारतीय सीमा पर आक्रमण किया, उस समय आम्भी नामक राजा ने उसे

भेंट दी तथा उसे पश्चिम यानी यूनान वापस जाना पड़ा।

भारत के समीप तथा बल्ख में यूथिडिमस के जितने सिक्के प्राप्त हुए हैं, उन्हें दो भागों में विभक्त किया गया है–

1. यूथिडिमस प्रथम के सिक्के।
2. यूथिडिमस द्वितीय के सिक्के।

1. यूथिडिमस का सिक्का गोलाकार, चाँदी वाला।

   अग्रभाग –पट्टी बाँधे राजा की आकृति।पृष्ठभाग–चट्टान पर बैठे हेरैक्लिज की नग्न मूर्ति, दाहिने हाथ में मुद्‌गल, यूनानी भाषा में मुद्रा–लेख वैसिलियस यूथिडिमाय।
2. दूसरे प्रकार में राजा का प्रौढ़ चेहरा दिखाई देता है तथा पृष्ठभाग पर हेरैक्लिज जाँघ पर मुद्‌गल रखकर बैठा है।
3. ताँबे का सिक्का अग्रभाग–हेरैक्लिज खड़ा, सिर नंगा।

पृष्ठभाग–दौड़ते हुए घोड़े की आकृति, ऊपरी भाग में यूनानी अक्षरों में वैसिलियस तथा निचले भाग में राजा का नाम यूथिडिमाय अकित है।यद्यपि इनमें ऐसी भिन्नता नहीं दिखाई देती है, किन्तु छोटी बातों को ध्यान से देखने पर उस अंतर को स्वीकार करना पड़ता है।

6.3.3 डेमेट्रियस (दिमित) के सिक्के

यूथिडिमस के पुत्र डेमेट्रियस का नाम भारतीय यूनानी शासकों में सर्वप्रथम माना जाता है। भारतीय साहित्य (पतंजलि महाभाष्य) में यवन आक्रमण का वर्णन मिलता है। विद्वानों में इस विषय में मतभेद है कि किसने भारत पर आक्रमण किया था। उस सम्बन्ध में डिमेट्रियस के सिक्कों का अध्ययन भी आवश्यक है। डिमेट्रियस के जितने भी सिक्के मिले हैं, वे दो प्रकार के हैं। चाँदी के गोल सिक्के, जिन पर यूनानी भाषा में लेख अंकित हैं। दूसरे प्रकार के ताँबे के चौकोर सिक्के, जिन पर अग्रभाग में यूनानी मुद्रा–लेख (वैसिलियस एनीकेटाय डिमेट्राय) तथा पृष्ठभाग पर खरोष्ठी लिपि में मुद्रा–लेख अंकित है। इस प्रकार के सिक्के भारत के पश्चिमोत्तर प्रान्त में मिले हैं। डिमेट्रियस के भारत आने पर सिक्कों पर कुछ भारतीय चिह्न भी अपनाए गए। कला की दृष्टि से डिमेट्रियस के सिक्केहीन श्रेणी के हैं। अतएव कुछ विद्वानों का मत है कि इनका निर्माण भारतीय सीमा में हुआ है। डिमेट्रियस के सिक्कों के परीक्षण से ज्ञात होता है कि अग्रभाग पर शासक की आकृतियाँ एक समान नहीं हैं। उनमें कुछ पर चेहरा कोमल तथा बालक के सदृश है तथा कुछ आकृतियाँ प्रौढ़ व्यक्ति की–सी लगती हैं। अतएव यह मत व्यक्त किया गया है कि प्रौढ़ आकृति तथा यूनानी मुद्रा–लेख वाले सिक्के भारतीय परिवेष्टन में नहीं तैयार हुए थे। द्विभाषी मुद्रा–लेख तथा हस्ति के शिरस्त्राण युक्त मुद्राएँ उसी नाम के अन्य शासक (दिमित द्वितीय) द्वारा प्रचलित किए गए होंगे। अतएव प्रथम डिमेट्रियस तथा द्वितीय डिमेट्रियस नामक राजाओं की स्थिति मानी गई है। डिमेट्रियस प्रथम के सिक्कों के अनुशीलन से निम्न बातों का पता लगता है।

1. चाँदी के गोलाकार सिक्कों पर अग्रभाग में हस्ति के शिरस्त्राण सहित शासक की आकृति। पृष्ठभाग पर हेरैक्लिज की नग्न खड़ी मूर्ति यूनानी भाषा एवं लिपि में मुद्रा–लेख–वैसिलियस डेमिट्राय।
2. ताँबे के गोल सिक्के, अग्रभाग–हाथी के सदृश सिरोभाग तथा पृष्ठभाग पर

   कैडुकस (अंकुश) की आकृति खुदी है, मुद्रा–लेख यूनानी भाषा में।
3. तीसरे प्रकार का सिक्का द्विभाषी, ताँबा, वर्गाकार। अग्रभाग–राजा के सिर पर हस्ती का मस्तक तथा यूनानी भाषा एवं लिपि में लेख–'वैसिलियस एनिकेटाय डेमिट्राय'। पृष्ठभाग–जस–मुद्रा–लेख–खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा में 'महरजस अपरजितस दिम'।
4. ताँबे का सिक्का अग्रभाग पर हेरैक्लिज का चित्र, दाहिने कंधे पर मुद्‌गल पृष्ठभाग पर यूनानी देवी आर्टमिस की आकृति, दाहिने हाथ से तरकस से बाण निकाल रही है।
5. चाँदी के सिक्कों पर अग्रभाग में पट्टी बाँधे राजा का अर्द्धचित्र। पृष्ठभाग–यूनानी देवी पैलास,

मुद्रा–लेख–वैसिलियस डेमिट्राय।

6. चाँदी का सिक्का अग्रभाग जारजन के सिर की आकृति। मुद्रा–लेख–यूनानी भाषा। पृष्ठभाग–त्रिशूल।
7. अग्रभाग पर राजा का अर्द्धचित्र यूनानी मुद्रा–लेख वही। पृष्ठभाग–बैठी पैलस की मूर्ति।

6.3.4 यूक्रिटाइड के सिक्के

यूथिडिमस का परिवार भारत की ओर आया, किन्तु यूक्रितिद (यूक्रिटाइड) का अधिकार बल्ख पर बना रहा। हाइटहेड का कथन है कि उसने बल्ख से भारत के पश्चिमोत्तर प्रांत तक अधिकार कर लिया था। इस राजा के तीनों धातुओं (सोना, चाँदी, ताँबा) के सिक्के उपलब्ध हुए हैं। सम्भवतः यूक्रितिद के पश्चात् किसी भारतीय यूनानी शासक ने स्वर्ण मुद्रा प्रचलित नहीं की। अतः स्टेटर तैयार करने वाला वह अतिम नरेश था। इसके चाँदी के सिक्के यूनानी शैली के हैं। देवी–देवता के चित्र के अतिरिक्त यूनानी लिपि में मुद्रा–लेख मिलते हैं, किन्तु ताँबे के अनगिनत सिक्कों पर द्विभाषी (यूनानी तथा प्राकृत–खरोष्ठी लिपि में) मुद्रा–लेख अंकित है। यूक्रिटाइड के उत्तराधिकारियों ने चाँदी तथा ताँबे के द्विभाषी सिक्कों का ही प्रचलन किया था।

चाँदी के गोलाकार सिक्के

अग्रभाग–पट्टीदार राजा का सिर अथवा लोहे की टोपी पहने राजा का अर्द्धचित्र।पृष्ठभाग पर– (क) अपोलो की आकृति धनुष–बाण सहित (ख) घोड़े पर सवार डियोस्कुरी या (ग) ताड़ के सीधे पत्ते। इसी ओर यूनानी भाषा में उपाधि सहित राजा का नाम, वैसिलियस यूक्रेटिडाय दूसरे मुद्राओं पर 'वैसलियस मेगालाय यूक्रेटिडाय' अकित है।

ताँबे के सिक्के–चौकोर तथा द्विभाषी।अग्रभाग–लोहे की टोपी पहने राजा का अर्द्धचित्र तथा यूनानी भाषा में मुद्रा–लेख–'वैसिलियस मेगालाय यूक्रिटिडाय'।पृष्ठभाग–घोड़े पर सवार यूनानी देवता डियोस्कुरी, खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा में लेख– 'महरजस यूक्रटिटस'।

ताँबे के सिक्के–वर्गाकार। अग्रभाग–राजा का अर्द्धचित्र तथा तीनों ओर यूनानी भाषा में मुद्रा–लेख। पृष्ठभाग–कई प्रकार के यूनानी देवता नाईके या सिंहासन पर बैठे ज्यूस अथवा डियोस्कुरी का ताड़पत्र।खरोष्ठी लिपि में मुद्रा–लेख –'महरजस यूक्रटितस', ज्यूसवाले सिक्के पर खरोष्ठी लिपि में मुद्रा–लेख–कविसये नगर (देवता)।

6.3.5 हेलियोक्लिज के सिक्के

यूक्रिटाइड के पश्चात् उसका पुत्र बल्व तथा पश्चिमोत्तर भारत पर शासन करता रहा। उसने भी यूनानी प्रकार तथा भारतीय ढंग से प्रभावित सिक्के प्रचलित किए।

(क) यूनानी ढंग के सिक्के, रोमन तौल, चाँदी धातु तथा गोलाकार रूप में तैयार किए गए थे। उनमें–

अग्रभाग–पट्टीदार राजा का अर्द्धचित्र, पृष्ठभाग पर ज्यूस, वज्रसहित खड़ा है, दाएँ हाथ में लम्बा दण्ड धारण किए हैं। पृष्ठभाग पर–यूनानी भाषा में मुद्रा–लेख–'वैसिलियस डिकेआयहेलिओल्कियास' खुदा हुआ है। ब्रिटिश संग्रहालय में चार ड्राम या अर्द्धड्राम के बराबर तौल में लोहे की टोपी पहने राजा की आकृति वाले सिक्के संगृहीत हैं, परन्तु भारतीय सीमा या समीप के सिक्कों पर द्विभाषी लेख मिलते हैं। चाँदी तथा ताँबे दोनों धातुओं का प्रयोग किया गया है। चाँदी के गोलाकार तथा ताँबे के चौकोर सिक्के तैयार किए गए थे।

(ख) भारतीय सीमा में चाँदी के सिक्के और भारतीय तौल।

1. अग्रभाग–पट्टीदार राजा का अर्द्धचित्र, यूनानी लेख–'वैसिलियस डिके आय हेलिओल्किआस'। पृष्ठभाग– ज्यूस वज्रसहित खड़ा है। दाहिने हाथ में दण्ड है। खरोष्ठी लिपि में मुद्रा–लेख –'महरजस धमिकस हेलियोअस'।
2. ताँबे के वर्गाकार सिक्के – अग्रभाग – उपर्युक्त ढंग का लेख पूर्ववत्। पृष्ठभाग –हस्ती खड़ा है। खरोष्ठी लिपि मुद्रा–लेख पूर्ववत्।
3. ताँबा, वर्गाकार सिक्के। अग्रभाग–हाथी, चलता हुआ। यूनानी लेख पूर्ववत्। पृष्ठभाग–नदी, खरोष्ठी लिपि मुद्रा–लेख पूर्ववत्।

6.3.6 अपलदतस के सिक्के

यूथिडिमस के उत्तराधिकारियों में अपोलोडोटस (अपलदतस) का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। इसने उत्तर–पश्चिमी भारत में शासन किया, अतएव इसके सिक्कों पर अधिक भारतीय प्रभाव दिखाई देता है। चाँदी तथा ताँबे के हर प्रकार के सिक्के तैयार किए गए। चाँदी के गोलाकार सिक्के (अर्द्धद्रम 31–38) के तौल में बराबर हैं। ताँबे के सिक्के गोलाकार यां वर्गाकार हैं तथा तौल में 111–140 ग्रेन (ड्राम के दुगुना) या 215–260 ग्रेन के बराबर हैं। सम्भव है उस समय चाँदी का आयात कम हो गया हो। इस कारण से कम तौल के चाँदी के सिक्के प्रचलित किए गए। ताँबे की बहुलता से उनकी तौल चौगुनी कर दी गई थी। अपोलोडोटस के सिक्के (1) सोटेरास (2) फिलोपटस या (3) मेगालाय उपाधि सहित प्रचलित किए गए थे। इस शासक के अधिक सिक्के प्रकाश में आए हैं, जिससे प्रकट होता है कि इसने अधिक समय तक राज्य किया। सिक्के अधि क प्रचलन के कारण घिसी दशा में भी उपलब्ध हुए हैं। इसके सभी सिक्के द्विभाषी हैं।

1. चाँदी के सिक्के गोलाकार, 36 ग्रेन तौल (अर्दधद्रम के समान)। अग्रभाग–हाथी की आकृति अथवा पट्टी बाँधे राजा का अर्दधचित्र, यूनानी भाषा में मुद्रा–लेख –'वैसिलियस सोटोरास अपोलोडोटाय'। पृष्ठभाग–बैल की आकृति अथवा यूनानी देवी पैलास वज्र फेंकते हुए। खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा में लेख – महरजस त्रतरस अपलदतस'।

2. **अग्रभाग**–पट्टी बाँधे राजा का सिर, यूनानी लेख–'वैसिलियस सोटेरास काय पेटारास अपोलोडोटाय'। पृष्ठभाग–उपर्युक्त रूप में।

3. ताँबे के सिक्के वर्गाकार, द्विभाषी, तौल में भारी।

   अग्रभाग– अपोलो खड़ा है, पृथ्वी को स्पर्श करता हुआ, दाहिने हाथ में बाण तथा बाएँ में धनुष। यूनानी भाषा में मुद्रा–लेख – वैसिलियस अपोलोडोटाय सोटेरास।

   पृष्ठभाग–तिरपाई खरोष्ठी लिपि में मुद्रा–लेख – 'महरजस अपलदतस त्रतरस'।

ताँबे के वर्गाकार तथा भारी तौल के सिक्के गान्धार से मिले हैं। अन्य बातें सभी समान हैं। ब्रिटिश संग्रहालय लंदन में कुछ ताँबे के सिक्के सुरक्षित हैं। उसमें अग्रभाग पर मेगालाय उपाधि सहित राजा का नाम मिलता है।

6.3.7 मिलिन्द के सिक्के

मिनेन्डर ने भारत पर आक्रमण किया था। भारतीय साहित्य के आधार पर उसकी पुष्टि भी होती है। उस शासक ने पंजाब के भूभाग पर राज्य किया तथा सियालकोट उसकी राजधानी थी। इसका प्रभाव उत्तर–पश्चिम भारत पर अधिक रहा। अतएव उसके प्रचलित सिक्के उसी भाग में मिलते हैं। उसने चाँदी तथा ताँबे के सिक्के जारी किए। चाँदी की अधिक मुद्रा तौल में अर्द्धद्रम के बराबर मिली है, जो गोलाकार है। दो द्रम (125–140) ग्रेन के सिक्के भी चलाए, जो कम संख्या में उपलब्ध हुए हैं। ताँबे के सिक्के भी तौल में चाँदी के सदृश –अर्द्धद्रम या दूना ड्राम है, किन्तु वर्गाकार आकृति के हैं। भारतीय प्रदेश में रहने के कारण भारतीयता के प्रभाव से उसके सिक्के अछूते नहीं रह सके। प्रायः सभी सिक्के द्विभाषी हैं।

चाँदी के गोलाकार सिक्के

1. अग्रभाग–पट्टी बाँधे राजा की आधी आकृति, यूनानी भाषा में लेख सोटेरस उपाधि सहित– 'वैसिलियस सोटेरास मिनन्ड्राय'। कुछ सिक्कों पर राजा लोहे की टोपी पहने हैं, किसी पर भाला फेंकते चित्रित हैं।

   पृष्ठभाग–यूनानी देवता पैलास, वज्र फेंकता हुआ, खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा में मुद्रा–लेख –'महरजस त्रतरस मेनद्रस'।

2. दूसरे प्रकार में राजा की उपाधि डिकेआय का प्रयोग किया गया। अग्रभाग–वही, पट्टी बाँधे राजा की आकृति, मुद्रालेख – वैसलियस डिकेआय मिनड्राय'। पृष्ठभाग– पंखयुक्त देवता, खरोष्ठी लिपि में लेख –'महरजस धमिकस मिनन्द्रस'।

   ताँबे के सिक्के–वर्गाकार, भारी तौल (240 ग्रेन)।अग्रभाग–पैलास, लेख यूनानी भाषा में – 'वैसिलियस

सोटेरास मिनन्ड्राय'। पृष्ठभाग– पंख सहित नाइके देवी मालाधारी, खरोष्ठी लेख–'महरजस त्रतरस मेननद्रस'।

3. भारतीय चिह्न सहित, ताँबा, वर्गाकार भारी तौल में दो द्रम के बराबर। अग्रभाग–वृषभ का सिर, लेख 'वैसिलियस सोटेरास मिनन्ड्राय', कभी पट्टी बाँधे राजा की अर्द्ध आकृति, कुछ पर लोहे की टोपी पहने राजा, किसी पर हाथी का सिर, गले में घंटी, मुद्रा–लेख–वही। पृष्ठभाग तिरपाई, पैलास, वज्र फेंकता हुआ ऐजिस (शेर की खाल सहित), किसी पर हेरैक्लिज का मुद्गल। खरोष्ठी लिपि में लेख–वही।

4. ताँबे के वर्गाकार सिक्के डिकेआय की उपाधि। अग्रभाग–युद्ध वेषधारी राजा की आकृति, लेख – 'वैसिलियस डिकेआय मिनन्ड्राय'।

   पृष्ठभाग–चीता की आकृति, खरोष्ठी लिपि में लेख –'महरजस धमिकस मेनन्द्रस'।

पंजाब संग्रहालय के अतिरिक्त ब्रिटिश संग्रहालय लंदन में मिनेन्डर के अनेक सिक्के संग्रहीत हैं जिनके अग्रभाग पर भारतीय पशुओं–उल्लू, चक्र, हाथी, ऊँट की आकृतियाँ खुदी हैं, किन्तु मुद्रा–लेख में भिन्नता नहीं है। अग्रभाग पर लोहे की टोपी पहने राजा का अर्द्धचित्र खुदा है। कुछ सिक्कों के पृष्ठभाग पर पैलास, नाइके, घुड़सवार, कूदता हुआ घोड़ा आदि विभिन्न आकृतियाँ दिखाई देती हैं। इस प्रकार प्रतीत होता है कि मिनेन्डर के सिक्के अधिक प्रचलित थे तथा विविध आकृतियों के साथ बने थे। मिनेन्डर के कुछ चाँदी के सिक्कों पर पर्याप्त प्रौढ़ व्यक्ति की आकृति–सी उसका चेहरा दिखाई देती है, जिससे उसकी लम्बी शासन अवधि का अनुमान लगाया जा सकता है। यदि उनका परीक्षण किया जाए तो प्रतीत होता है कि चाँदी के सिक्कों पर सोटर की उपाधि के अतिरिक्त डिकेआय का भी प्रयोग हुआ है। इसलिए यह मत व्यक्त किया जा सकता है कि मिनेन्डर सोटर (त्रतरस) की उपाधि को त्याग कर डिकेआय (धमिकस) को पसन्द किया। सम्भवतः वह बौद्ध धर्मानुयायी हो गया था। इस कारण धर्मात्मा की उपाधि धमिकस, नितांत उपयुक्त थी। वह उसके अंतिम समय का लेख कहा जा सकता है।

मिनेन्डर के समकालीन इपैन्डर, जोइलास, अर्टिमीडोरस अन्टीमेकास फिलाजिनास, हिपस्ट्रेटास अमिन्टस आदि शासकों ने सिक्के जारी किए। उनमें कोई विशेषता नहीं दिखाई देती है। चाँदी तथा ताँबे के सिक्के अर्द्धद्रम या दुगुना ड्राम तौल के बराबर जारी किए गए थे। द्विभाषी सिक्कों में अग्रभाग पर यूनानी लेख हैं तथा पृष्ठभाग पर खरोष्ठी लिपि में लेख अंकित हैं। शासकों की वैसिलियस के अतिरिक्त सोटेरास (प्राकृत त्रतर डसिके) –आय (प्राकृत धमिकस) तथा निकेफोरस (प्राकृत जयधरस) उपाधियाँ उल्लिखित हैं। यूनानी देवता के अतिरिक्त भारतीय चिह्न भी दिखाई देते हैं। इन कारणों से उसका विस्तृत विवरण उपस्थित नहीं किया गया।

6.3.8 स्ट्रेटो के सिक्के

उत्तर–पश्चिम में शासन करने वाले भारतीय यूनानी नरेशों में स्ट्रेटो ऐसा व्यक्ति है, जिसके सिक्कों पर एकसाथ कई उपाधियाँ अंकित हैं। सोटेरास (त्रतरस) डिकेआय (धमिकस) के अतिरिक्त इपिफमास की उपाधि (प्राकृत प्रचद्दस) उल्लिखित है। इस विस्तृत रूप में उपाधि धारण का क्या महत्त्व था? यह कहना कठिन है। अधिकतर सिक्के यूनानी देवी–देवताओं की आकृतियों सहित प्रचलित किए गए थे।

चाँदी के सिक्के अग्रभाग–पट्टी बाँधे राजा का अर्द्धचित्र, यूनानी लेख 'वैसिलियस सोटेरास डिके आय स्ट्रेटोनास'।पृष्ठभाग–पैलास वज सहित, खरोष्ठी लिपि में लेख–'महरजस त्रतरस धमिक स्ट्रतस'।

किसी सिक्के पर अग्रभाग में डिकेआय के स्थान पर इपिफेनास की उपाधि खुदी है। जिस कारण पृष्ठभाग के प्राकृत्त मुद्रा–लेख में 'धमिकस' को हटाकर 'प्रचद्दस' अंकित है।

ताँबे के सिक्के वर्गाकार, दुगुना ड्राम के बराबर।अग्रभाग अपोलो, धनुष–बाण सहित अथवा हेरैक्लिज, यूनानी मुद्रा–लेख – 'वैसिलियस सोटेरास इपिफेनास स्ट्रेटोरास'।पृष्ठभाग–तिरपाई की आकृति अथवा पंख सहित नाइके, खरोष्ठी लिपि में लेख–'महरजस त्रतरस पचद्दस स्ट्रतस'।

6.3.9 हरमेयस की मुद्रायें

भारत में शासन करने वाले यूनानी नरेशों में यूक्रेतिद का वंशज हरमेयस का अंतिम स्थान माना जाता है। यह काबुल के भूभाग पर ईसा पूर्व पहली शती में राज्य करता था। भारत में राज्य करने वाले भारतीय यूनानी नरेशों से क्या सम्बन्ध था, यह कहना कठिन है, किन्तु उसके सिक्कों के परीक्षण से यह ज्ञात होता है कि हरमेयस के

स्थान पर कुषाण राजा शासन करने लगे। अतः यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि हरमेयस को हटाने का श्रेय कुषाण शासक को है।हरमेयस के तीन श्रेणी के सिक्के प्राप्त हैं:–

1. व्यक्तिगत हरमेयस का सिक्का जिसमें उसकी आकृति है तथा यूनानी तथा प्राकृत भाषाओं में नाम अंकित है।
2. द्वितीय श्रेणी में हरमेयस तथा उसकी पत्नी केलिओप की युगल आकृतियों के साथ सिक्के तैयार हैं। उसमें अग्रभाग में राजा–रानी का नाम यूनानी भाषा में तथा पृष्ठभाग पर खरोष्ठी लिपि में दोनों के नाम खुदे हैं।
3. तीसरे प्रकार के सिक्कों पर हरमेयस का अकेला चित्र खुदा है तथा यूनानी भाषा में 'वैसिलियस सोटेरास एरमेयस' नाम अंकित है। किन्तु पृष्ठभाग पर 'कुजुलकसस कुसन यवुगस धमिठिदस' खरोष्ठी लिपि में अंकित है।

इस विश्लेषण से विदित होता है कि हरमेयस के इस सिक्के को राजनैतिक कारणों से कुषाण शासक ने तैयार करवाया था। जनता के सम्मुख प्रदर्शन के लिए राजा हरमेयस का चित्र तथा यूनानी भाषा में उसका नाम खुदा था ताकि उसे देखकर जनता को यह भ्रम हो जाए कि यह सिक्का हरमेयस ने तैयार कराया था। परन्तु उसका रहस्य यह था कि कुषाण राजा ने काबुल के भूभाग में प्रचलित सिक्के को सर्वप्रथम अपनाया जिस पर हरमेयस का चित्र तथा नाम विद्यमान था, किन्तु खरोष्ठी लिपि में अपना नाम अंकित करवाया था। उसका क्रमशः प्रयत्न था कि कुषाण शक्ति कीजानकारी जनता को शनैः –शनैः मिले। हरमेयस को यकायक हटाने से जनता में विद्रोह का भय था। काबुल के भूभाग में कुजुल ने भी सिक्का तैयार करवाया, किन्तु अपने (व्यक्तिगत) सिक्के पर हरमेयस को स्थान देना श्रेयस्कर समझा। यह राजनीति थी कि कुषाण सिक्कों पर हरमेयस की आकृति आरम्भ में बनी रहे और कालान्तर में उसे हटा दिया जाए। कुजुल कदफिस (कुषाणवंशी प्रथम शासक) के सिक्कों के अतिरिक्त उसका नाम पटिक (शक गवर्नर) के तक्षशिला ताम्रपत्र में भी उल्लिखित है। अतएव कुजुल ने हरमेयस को हटाकर काबुल से तक्षशिला तक समस्त भूभाग पर अधिकार कर लिया।

6.4 सारांश

भारत में विदेशी सिक्कों के आगमन के बहुत पूर्व यहाँ बहुमूल्य धातुओं की अपनी देशी मुद्रा थी। यह मुद्रायें प्रतीक चिह्नों, भारमान, धात्विक अनुपात व मौद्रिक विनिमय जैसे विभिन्न क्षेत्रों में अपनी विशिष्ट मौलिकता से सम्पन्न थीं । यद्यपि मुद्रा निर्माण के विकास को हिन्द–यवन, शक, पहलव, कुषाण तथा रोमन जैसी विदेशी मुद्रा परम्पराओं ने यहाँ की देशी मुद्रा पर अविस्मरणीय छाप छोड़ी। विदेशी परम्परा के अन्तर्गत मुद्रा जारी करना शासक का विशेषाधिकार था, उस पर उसका नाम, उसकी उपाधि तथा अधिकांशतः उसका चित्र भी अंकित होना अनिवार्य था। वस्तुतः हिन्द–यवन मुद्रा आदर्श का अनुकरण शक, पह्लव और कुषाणों ने भी किया।

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

7. हिन्द–यवन सिक्कों की उत्पत्ति के विषय में वर्णन कीजिये।

   ....

   ....

8. हिन्द–यवन सिक्कों की तकनीकि, प्रतीक एवं वजन मानक के विषय में टिप्पणी कीजिये।

   ....

   ....

9. हिन्द–यवन शासक हरमेयस की मुद्राओं के विषय में वर्णन कीजिये।

   ....

   ....

6.6 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्त परमे''वरी लाल : भारत के पूर्वकालिक सिक्के।

राव राजवन्त एवं राव प्रदीप कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।
चक्रवर्ती एस.के. : प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र का अध्ययन।
उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।
ओझा, रायबहादुर गौरी’’ांकर हीराचन्द्र : प्राचीन मुद्रा।
पाण्डेय, विमले’’ा कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

इकाई 7–इंडो–पार्थियन सिक्के

इकाई की रूपरेखा

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्‌दे”य

7.2 हिन्द–पह्लव

7.3 सिक्कों की विशेषताएँ

7.4 शासकों के सिक्क

7.5 सारांश

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.7 संदर्भ ग्रन्थ

7.0 प्रस्तावना

पह्लव पार्थिया के रहने वाले थे। ये भी अपने आवासित स्थान से निकल कर भारत की ओर चले थे। इनकी पहली सत्ता आर्कोसिया और सेइस्ता पर स्थापित हुई जो आजका कांधार और मकरान का क्षेत्र है। शक भी इसी मार्ग से होकर भारत भूमि में प्रवेश किए। उनके साथ ये इतने घुलमिल गए थे कि दोनो के बीच विभाजक रेखा खीचना बड़ा ही कठिन है। कुछ शकों के नाम कभी उस क्षेत्र से सम्बन्धित होने के कारण पार्थियनों की तरह प्रतीत होते हैं जैसे वानोनीज। इसे प्रायः इतिहासकार पह्लव मानते हैं। पर डॉ0 रायचौधरी ने सही सुझाया है कि नाम कोई आधार नहीं है जिस पर वंश का निर्धारण किया जाय। अतः यह शक मूल का लगता है। इसी से मौएज को शक–पह्लव संयुक्त उद्‌भव का माना गया है। प्लिनी के अनुसार पार्थियन शासकों की पूर्वी राज्य सीमा हेरात, फरह, कांधार, आदि थी। पीछे पह्लवों ने गांधार के शकों के राज्य पर भी अधिकार कर लिया। इसी प्रकार बढ़ते हुए तक्षशिला तक इनके अधिकार की सूचना अपोलोनियस त्याना देता है। इससे स्पष्ट है कि सिन्धु प्रदेश के शकों के ऊपर पार्थियन आधिपत्य स्थापित हो गया था।

7.1 उद्‌देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्‌देश्य आपको हिन्द–पल्लव शासकों के सिक्कों की उत्पत्ति, तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक, वजन मानक एवं निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

7.2 हिन्द–पह्लव

ईसाई विवरणों के अनुसार गुण्डफर या गुडनफर नामक भारतीय शासक सेंट थामस द्वारा ईसाई बनाया गया था। इसकी पुष्टि तख्तेबहाई अभिलेख से होती है कि पेशावर में गुदद्धर रहता था। अतः सिंधु प्रदेश की निचली घाटी से चलकर पुष्कलावती के पश्चिमी तट के समीप तक पार्थियन अधिकार रहा होगा। वहाँ का शासक गण्डोफरनीज था। काबुल घाटी कुछ ही समय के लिए इसके अधिकार में थी क्योंकि पहले वहाँ यवनों का अधिकार था। उन्हें हटाकर पार्थियन आधिपत्य स्थापित हुआ जो शीघ्र ही कुषाणों द्वारा अधिकृत कर लिया गया। गांधार इसके अधिकार में था क्योंकि अप्सवर्मन के सिक्के इस क्षेत्र में गण्डोफरनीज के अधिकार के द्योतक हैं। अप्सवर्मन के सिक्कों से ज्ञात होता है कि वह पहले एजेज द्वितीय का सेनापति था फिर पीछे गण्डोफरनीज की अधीनता स्वीकार कर लिया था। इससे स्पष्ट है कि गांधार का भाग भी इसके अधीन था। इसके केवल रजत और ताँबे के सिक्के प्राप्त हुए हैं। पर इसके पहले इसने पार्थियन शासक आर्थेगनीज की अधीनता में सहशासक के रूप में शासन किया था क्योंकि आर्थेगनीज की सिक्कों पर गुद अथवा गुदन का उल्लेख इसका बोधक है। पीछे इसने जब पूर्वी ईरान से भारत में शकों की पतनोन्मुख स्थिति का अनुमान कर इधर प्रस्थान कर यहां अपना अधिकार स्थापित कर लिया तो अपनी स्वतंत्र सिक्के प्रवर्तित कराया। पर ये पंजाब से पूरब प्राप्त नहीं हुई हैं। अतः यह उसी क्षेत्र तक शासन किया होगा। इसकी पुष्टि उसके शक शासकों से प्रभावित सिक्कों से होती है।

इसने सहशासकों के साथ भी शासन किया था। इसकी सिक्कों से ज्ञात होता है कि 'अप्सवर्मन' इसका सहशासक था। लगता है कि यह गण्डोफरनीज द्वारा अधिकृत पश्चिमी सीमा प्रदेश पर शासक नियुक्त था। दूसरी सिक्कों के पृष्ठ पर 'सस' का उल्लेख है। यह भी उसका एक सहशासक था ऐसा सिरकप से प्राप्त एक सिक्कालेख से ज्ञात होता है।

पर सस की कुछ स्वतंत्र सिक्के थी तक्षशिला के उत्खनन से प्राप्त हुई हैं। इससे लगता है कि गण्डोफरनीज के बाद यह कुछ दिनों तक यहाँ उसका उत्तराधिकारी बना रहा। इसी प्रकारदो और शासकों के सिक्के तक्षशिला से प्राप्त हुए हैं— सपेदन और सतवसत्र। इन्हों ने भी यहाँ स्वतंत्र शासन किया था। सम्भवतः ये सस के बाद या उसके ठीक पहले शासन किए थे। इनके सिक्के भी बनावट में उसी प्रकार के हैं जैसे सस के।

गण्डोफरनीज के बाद अवदगास उत्तराधिकारी हुआ। यह भी उसका भतीजा था। इसके श्री स्वतंत्र सिक्के मिले हैं। पर रैप्सन का विचार है कि यह भी अन्य शासकों की तरह गण्डोफरनीज का एक सहशासक रहा होगा। पर यह बात बैठती नहीं क्योंकि इसकी सिक्कों पर स्वतंत्र शासकों की सिक्कों की तरह अग्रभाग पर ग्रीक उपाधि बैसिलियास वैसिलियान अंकित है जो हिन्द—यवन तथा शक वंश के स्वतंत्र शासकों के सिक्कों पर खुदा है।

डॉ0 गुप्त ने अवदगास के बाद पार्थियन वंश के अन्य शासकों के विषय में संकेत दिया है, जिनकी सिक्के प्राप्त हुई हैं, कि इन्होंने क्रमशः गण्डोफरनीज के राज्य पर शासन किया। ये है— आर्थेगैनिस, पैसोरेस, गण्डोफरनीज (द्वितीय), आरसेसेस और सनवरेस। इन सभी शासकों के सिक्के गण्डोफरनीज शैली में बने है। पर अब इनका साम्राज्य पहले की तरह विस्तृत नहीं रहा बल्कि केवल कांधार और सेयिस्तान ही इनके अधीन था। यहां भी इनका शेष अधिकार धीरे—धीरे समाप्त हो गया। इसकी समाप्ति के पीछे कारण था कुषाणों का भारतीय आक्रमण। इसने शक एवं पार्थियन सत्ता को भारत से समाप्त कर दिया। एक शासक सोटर मेगास के सिक्के पेशावर से मथुरा तक प्राप्त हुए हैं। इसका वास्तविक नाम क्या था? अज्ञात है। पर इसके सिक्के बड़ी संख्या में विस्तृत क्षेत्र से पह्नव शैली के प्राप्त हुए है जो केवल धातु के हैं। इसके पह्नव होने के सम्बन्ध में सन्देह है। इस प्रकार पह्नव वंश के निम्न शासक थे :

गण्डोफरनीज (प्रथम)

अबदगास

आर्थेगैनिस

पैसोरेस

गण्डोफरनीज (द्वितीय)

आरसेसेस

सनबेरस

7.3 सिक्कों की विशेषताएँ

1. इनकी सिक्के कान्धार, काबुल से लेकर तक्षशिला और पश्चिमी पंजाब तक फैली थीं।
2. इनकी सिक्के मिश्रित धातु तथा ताँबे की बनी है। मिश्रित धातु के गोलाकार हैं जबकि ताँबे के चौकोर हैं।
3. ये द्विभाषी है अग्रभाग पर ग्रीक लिपि में लेख अंकित हैं
4. इसकी ताँबे की सिक्के पूर्ववर्ती शक शासक एजेव द्वितीय की सिक्कों से प्रभावित है।
5. किसी एक प्रकार की सिक्का के स्थान स्थानीय सिक्कों के अनुकरण पर कई प्रकार की सिक्के उसके राज्य में प्रचलित थीं।
6. यूनानी शैली की सिक्कों का प्रभाव इन पर अधिक पढ़ा है जैसे—

    (क) यूनानी लिपि में सिक्कालेख का होना

(ख) यूनानी देवताओं का अंकन जैसे नीके, जूस, पैल्लास आदि

7. कुछ प्रारम्भिक सिक्कों पर पार्थियन प्रभाव पड़ा था क्योंकि ये शासक पार्थिया से ही विस्थापित होकर यहाँ आए थे।
8. सिक्का के अग्रभाग पर प्रतीक चिन्हों का प्रयोग जिसे 'गोण्डोफरनीज सिम्बल' का नाम दिया गया है।
9. भारतीय प्रभाव का निदर्शन भी कहीं–कहीं हुआ है जैसे पुरुष की आकृति जो त्रिशूल और ताड़पत्र धारण किए हुए।
10. प्रायः सिक्कों पर सरपट दौड़ते घोड़े के पीठ पर बैठे राजा का अंकन शक प्रभाव का द्योतक है।
11. कुछ नई उपाधियों का योग सिक्कालेख में किया गया है जैसे 'देवव्रत' उपाधि।

7.4 शासकों के सिक्के

1. गण्डोफरनीज

सात प्रकार के मिश्रित धातु (अशुद्ध चाँदी) के तथा तीन प्रकार के ताँबे के सिक्केमिले हैं।

प्रकार–1

अशुद्ध चाँदी

अग्रभाग– सरपट दौड़ते घोड़े पर बैठा राजा, ग्रीक लेख **बैसिलियास बैसिलियान मेगालाय यनडोफोराय**

पृष्ठभाग– खड़ा जूपिटर, खरोष्टी लेख–**महरजस रजरजस महत ध्रमिअ देवव्रत गुदफरन**

प्रकार–2

अग्रभाग – पूर्ववत्

पृष्ठभाग– पैल्लास की खड़ी आकृति, लेख– पूर्ववत्

प्रकार–3

अग्रभाग– वही, लेख–पूर्ववत्

पृष्ठभाग– खड़ा जूपिटर, खरोष्टी में लेख–**जयतस एत्रतरस इंन्द्रवर्म पुत्रस स्त्रतेगस**

2. अस्पवर्मन की सिक्के

प्रकार–1

अग्रभाग– पूर्ववत्

पृष्ठभाग–पूर्ववत्, लेख प्रकार–1 के लेख की तरह गदफर के बाद 'सस' का उल्लेख

प्रकार–2

अग्रभाग– पूर्ववत्

पृष्ठभाग– खड़ी जूपिटर की मूर्ति, हाथ में विजया देवी लिए, लेख प्रकार–1 की तरह

प्रकार–3

अग्रभाग– पूर्ववत्

पृष्ठभाग– दाहिने हाथ में त्रिशूलधारी खड़ा व्यक्ति, लेख – पूर्ववत्

प्रकार–4

प्रकार 3 की तरह, केवल दाएँ हाथ की जगह बाएँ हाथ में त्रिशूल अग्रभाग पर जो ग्रीक लेख अन्तर से

तीन प्रकार का है :

(1) **बैसिलियास बैसिलियान मेगालाड वोण्डेफेराड**

(2) **बैसिलियास सोटेरास वोण्डेफेराऊ**

(3) **बैसिलियास बैसिलियान वोण्डेफेराऊ**

ताम्र

तीन प्रकार की

प्रकार–1

अग्रभाग – राजा का सिर, लेख–पूर्ववत्

पृष्ठभाग– पैल्लास, लेख – पूर्ववत्

प्रकार–2

अग्रभाग– राजा का सिर, लेख–पूर्ववत्

पृष्ठभाग– विजया देवीय लेख–पूर्ववत्

प्रकार–3

अग्रभाग – घोड़े पर सवार राजा, लेख–पूर्ववत्

पृष्ठभाग– गण्डोफर्नीज का प्रतीक चिन्ह, लेख–पूर्ववत्

इसका सिक्का प्रकार–3 सहशासक अस्पवर्म के साथ अंकित है। ऐसे सहशासकों के साथभी इसकी सिक्के मिली हैं।

3. अवदगास

मिश्रित रजत (धातु), दो प्रकार के सिक्के– तांबा और रजत

रजत

प्रकार–1

अग्रभाग– सरपट दौड़ते घोड़े पर बैठा राजा, ग्रीक में लेख–**वैसिलियान्यस बैसिलियान अग्दगस**

पृष्ठभाग– जूस की आकृति, गण्डोफेरियन सिम्बल, खरोष्टी में लेख–**महरजस रजतिरजस गुदफर भ्रतपुत्रस अबदगश**

प्रकार–2

अग्रभाग – पूर्ववत्

पृष्ठभाग– विजया देवी की मूर्ति हाथ में लिए खड़ा जुपिटर, लेख–पूर्ववत्

ताम

अग्रभाग– राजा का मस्तकय लेख– पूर्ववत्

पृष्ठभाग – विजया देवी की मूर्ति, खरोष्टी में लेख–**महरजस रजतिरजस अवगदश**

इसके बाद के शासको की सिक्कों में किसी विशेष शैली का प्रयोग नहीं है। केवल ये उन शासकों की जानकारी के स्रोत मात्र हैं।

7.5 सारांश

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात हो जाता है कि शक जाति ने उत्तर–पश्चिम सीमान्त प्रदेश तथा पश्चिमी पंजाब से यूनानी शासन का अंत कर दिया था। यही कारण है कि उनके सिक्के यूनानी अनुकरण पर तैयार किए गए। काबुल में केवल हरमेयस शासन करता रहा। अन्य जगहों पर यूनानी जाति का निवास मात्र शेष था। शक लोगों का अन्त कैसे हुआ, यह कहना कठिन है। अयस द्वितीय के सिक्के हीनावस्था के प्रकट होते हैं। शायद उस समय पल्लव लोगों ने सिन्ध की निचली घाटी से भारत में प्रवेश किया और तक्षशिला को जीत लिया। पल्लव नरेश गुदफर के सिक्के के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अयस द्वितीय के पश्चात् गुदफर (गोंडाफरनिस) उत्तर–पश्चिम भारत का स्वामी बन गया था।

अयस का एक ताँबे का वर्गाकार सिक्का मिला है जिसके मुद्रा–लेख निम्न प्रकार हैं। अग्रभाग – 'वैसिलियस वैसिलियान मेगालाय अजाय'। राजा घोड़े पर सवार है।

पृष्ठभाग खरोष्ठी लिपि में 'इन्द्रवर्म पुत्रस अस्पवर्मस स्त्रतगस जयतस' खुदा है। पैलेस की आकृति है।

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

10. इण्डो–पार्थियन शासकों के प्राप्त सिक्कों के विषय में वर्णन कीजिये।

....

....

11. पार्थियन वंश का संस्थापक कौन था ? उसके सिक्कों के विषय में भी प्रका''ा डालिये।

....

12. पह्लव कहाँ से भारत आये थे?

....

7.7 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्त परमे''वरी लाल : भारत के पूर्वकालिक सिक्के।

राव राजवन्त एवं राव प्रदीप कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

चक्रवर्ती एस.के. : प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र का अध्ययन।

उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

ओझा, रायबहादुर गौरी''ांकर हीराचन्द्र : प्राचीन मुद्रा।

पाण्डेय, विमले''ा कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

इकाई 8–कुषाणों के सिक्के

इकाई की रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्दे''य

8.2 कुषाण नरेशों के सिक्के

8.3 कुजुल प्रथम की मुद्रायें

8.4 विम कदफिस के सिक्के

8.5 कनिष्क की मुद्रायें

 8.5.1 कनिष्क की स्वर्ण मुद्रा

 8.5.2 ताँबे के गोलाकार सिक्के

8.6 हुविष्क के सिक्के

8.7 वासुदेव की मुद्राएँ

8.8 देवी–देवताओं के सिक्के

8.9 स्वर्ण मुद्राओं में मिश्रण

8.10 सारांश

8.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.12 संदर्भ ग्रन्थ

8.0 प्रस्तावना

भारत में आने वाली जातियों में कुषाणवंश का इतिहास गौरवमय था। भारतीय संस्कृति में इनका योगदान रहा है। प्रशस्तियों तथा मुद्रा–लेख में शासक के नाम सहित कुषाण शब्द का उल्लेख मिलता है जिससे उस वंश का नाम प्रसिद्ध हुआ। इसी वंश के राजा कनिष्क ने शक सम्वत् का शुभारम्भ किया, जिसे आज हम भारत के राष्ट्रीय पंचांग के लिए मानने लगे हैं। भारत के प्राचीन साहित्य तथा ज्योतिष–ग्रंथों में शक काल का विवरण पाया जाता है। कुषाण जाति यूईची की एक शारवा थी जो मध्य एशिया से आकर बल्ख के भूभाग में ईसवी पूर्व द्वितीय सदी में बस गई थी। चीनी इतिहास में उल्लेख है कि कुषाण नरेश कडफासेस (कदफिस) ने पार्थिया पर चढ़ाई की तथा उसी सिलसिले में काबुल की घाटी पर अधिकार कर लिया। किपिन (कश्मीर) पर भी उसकी विजय की चर्चा की गई है। ई० पू० 128 में चीनी दूत चाँगकिन उस भूभाग (पार्थिया, काबुल आदि) में आया था और कुषाण जाति को वहाँ प्रतिष्ठित देखा। वैग्राम की खुदाई से प्राप्त पुरातत्व विषयों के प्रमाण पर यह कहना सर्वथा उचित होगा कि उत्तर–पश्चिम भारत एवं काबुल की घाटी में कुषाणों का अधिकार था। पंजतर शिलालेख (तिथि 122 = ई0 स0 65) से स्पष्ट पता चलता है कि कुषाण राजा पेशावर क्षेत्र में शासन करता था (का० इ० इ० भा० 2, पृ० 70) ''महरयस गुषणस (कुषणस) राजमि''। इस प्रकार यह विदित होता है कि बल्ख से पार्थिया एवं काबुल पर अधिकार कर कुषाण भारत में आए। चीन के इतिहास से (पिछले हानवंश का इतिहास) कुषाण जाति की गतिविधि की जानकारी हो जाती है।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको कुषाण शासकों के सिक्कों की उत्पत्ति, तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक, वजन मानक एवं निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

8.2 कुषाण नरेशों के सिक्के

उत्तर भारत स्वर्ण सिक्कों का इतिहास प्रथम शती ई० में कुषाणों के आगमन के पश्चात् प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम कुषाणों ने ही नियमित रूप से उत्तर भारत में स्वर्ण सिक्कों का प्रचलन किया। कुषाणों के समय में भारत का रोम तथा अन्य पाश्चात्य देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों में तीव्र प्रगति हुई थी अतः व्यापारिक क्रियाकलापों के बढ़ जाने से निश्चित मानक के सिक्कों की आवश्यकता भी बढ़ गयी। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए कुषाण शासकों ने विभिन्न प्रकार के स्वर्ण और ताम्र के सिक्के प्रचलित किए। रजत सिक्कों का भी इन्होंने प्रचलन किया किन्तु ये संख्या में बहुत कम हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये केवल प्रयोग के तौर पर इन्होंने रजत–सिक्कों का निर्माण कराया था, शक शासक एजेज द्वितीय के काल में रजत मुद्राओं में मिलावट के कारण अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में रजत मुद्राओं की साख घट गयी थी।

8.3 कुजुल प्रथम की मुद्रायें

जहाँ तक सिक्कों का अनुशीलन किया गया है, उससे विदित होता है कि कुषाणवंश का सर्वप्रथम राजा कुजुल कदफिस था। ईसा पूर्व पहली सदी में काबुल पर यूनानी अधिकार था और यूनानी नरेश हरमेयस के चाँदी के सिक्के उसके प्रमाणस्वरूप हैं। हरमेयस के निम्न प्रकार के सिक्के प्राप्त हुए हैं–

1. अग्रभाग–पट्टीदार राजा का अर्द्धचित्र, लेख – 'वैसिलियस वैसिलियान हरमेआय'।

   पृष्ठभाग–सिंहासन पर बैठा ज्यूस, लेख –'महरजस त्रतरस हरमेयस'।

2. दूसरा सिक्का ताँबे का है।

   अग्रभाग–राजा की वैसी ही आकृति, यूनानी लेख वही।

   पृष्ठभाग–हरैक्लिज का चित्र, खरोष्ठी लिपि में मुद्रा–लेख– 'कुजुल कसस कुषण युवगस'।

दोनों सिक्कों के विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि यूनानी शासन में कुषाण जाति का भी प्रवेश हो गया था। कालान्तर में कुजुल कैदफाइसिस (कुजुल कदफिस) स्वतंत्र राजा बन बैठा।उसके निजी सिक्के भी मिले हैं। उनके अग्रभाग पर यूनानी अक्षरों में कुजुल केंडफिस का उपाधि सहित 'कोसानो कोजोलो कैडफिजाय' नाम अकित है तथा पृष्ठभाग पर खरोष्ठी लिपि में 'कुजुल कसस कुसण ययुगस धमिठिदस' खुदा है। सम्भवतः इसी ने भारतीय पल्लव राजा गुदफर से सन्धि कर ली, जिसकी मृत्यु के पश्चात् काबुल क्षेत्र में कुषाण जाति का अधिकार स्थापित हो गया। मार्शल को तक्षशिला (सिरकप) की खुदाई से कुजुल के अत्यधिक सिक्के मिले हैं। इस आधार पर यह मत सर्वथा उचित है कि गान्धार तथा तक्षशिला को कुजुल कदफिस ने जीत लिया था और इसतरह उत्तर–पश्चिम भारत में कुषाण राज्य पूर्णरूपेण स्थापित हो गया था। चूँकि उस भूभाग में अधिकतर यूनानी निवास करते थे, इसलिए उस प्रांत में प्रचलित सिक्कों की शैली का अनुकरण कर कुजुल ने अपनी मुद्रा–नीति निर्धारित की। हरमेयस के साथ तथा कालान्तर में अपने नाम का सिक्का चलाना इस नीति की पुष्टि करता है। यूनानी शासन का अन्त होने पर विदेशी प्रजा में अशान्ति न हो, इसलिए उसने राजनीति से काम लिया, यह सिक्कों से प्रमाणित होता है। कुजुल को कदफिस प्रथम भी कहते हैं। उसके ताँबे के सिक्के 30 ग्रेन के तौल में तथा यूनानी शैली के हैं। कुजुल भारतीय प्रभाव से वंचित न रह सका। उत्तर–पश्चिम भारत में शैवधर्म के कारण शिव की आकृति को सिक्कों पर स्थान दिया गया। उसमें यह भी सम्भव है कि कुजुल के पुत्र वीम कदफिस ने भारतीय भूभाग को विजित किया है। उस समय कुजुल की वृद्धावस्था रही होगी। चीनी इतिहास से इसकी पुष्टि हो जाती है कि वीम कदफिस ने भारत को जीता। कुजुल के शासनकाल का वास्तविक ज्ञान नहीं हो पाया है। सम्भवतः वीम कदफिस ई० स० 78 से पहले तक्षशिला का स्वामी था। इसकी उपाधि तक्षशिला चाँदी चीरक (scroll) लेख में–'महरजस रजतिरजस देवपुत्रस खुषणस (कुषणस)' उल्लिखित है। किन्तु देवपुत्र की उपाधि कनिष्क समूह के शासकों के लिए प्रयुक्त है। इस स्थान पर कनिष्क तथा कदफिस समूह के शासकों के पूर्ववर्ती शासन के सम्बन्धित प्रश्न पर विचार करना अप्रासंगिक होगा।

किन्तु यह कहना उचित होगा कि वीम कदफिस के पश्चात् कनिष्क गान्धार का स्वामी हो गया। खरोष्ठी लिपि में उसके लेख तथा सिक्के इसकी पुष्टि करते हैं।

भारतीय मुद्रा के इतिहास में सबसे प्रमुख घटना वीम कदफिस के शासन से सम्बन्धित है और वह है स्वर्ण मुद्रा के लिए प्रयोग। भारत में स्वर्ण मुद्रा प्रचलित करने का श्रेय वीम को ही दिया जाता है। ईसवी सन् के आरम्भ

तक भारत से जितने सिक्के प्राप्त हुए हैं, वे सभी चाँदी तथा ताँबे के थे। सर्वप्रथम वीम कदफिस ने सोने का सिक्का तैयार करवाया जो भारतीय मुद्राशास्त्र की महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। इसका कारण यह था कि कुषाण जाति का सम्पर्क मध्य एशिया से था। उसी के समीप साइबेरिया से सुवर्ण पिण्ड की उपलब्धि होती थी और भारत में उसका ही प्रयोग किया गया। कुजुल के शासन में ताँबे का प्रयोग किया गया, क्योंकि हरमेयस के साथ उसने सिक्का प्रचलित किया और बाद में भी उसी क्रम को अपनाया। उसके उत्तराधिकारी वीम कदफिस का प्रभाव शायद मध्य एशिया तक फैला था, अतएव उसी ने सर्वप्रथम सोने का सिक्का चलाया।

इस प्रसंग में यह कहना उचित होगा कि अल्टाई पर्वत से प्राप्त स्वर्ण को शक लोगों ने चीन, भारत तथा ईरान पहुँचाया था। ईसवी सन् में भारत–रोम व्यापार के कारण भी स्वर्ण का आयात इस देश में होने लगा। रोम के सिक्के भी भारत में आते रहे। यही कारण था कि कदफिस द्वितीय ने उसी ढंग को अपनाया। तौल में सिक्के 124 ग्रेन (रोमन तौल–माप) के बराबर थे। कुषाण राज्य से पहले कालान्तर में भी ताँबे के सिक्के निर्मित होते रहे जिससे क्रय–विक्रय का कार्य सम्पन्न किया जाता था। साधारण जीवन के लिए सोने के सिक्कों की आवश्यकता न थी। उस समय केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की सुगमता के लिए स्वर्ण मुद्राएँ प्रचलित हुई। कुषाण नरेश ने शैवमत स्वीकार कर लिया। अतः त्रिशूल, शिव तथा नदि की आकृतियाँ सिक्कों पर दीख पड़ती हैं। पल्लवों के स्थान पर कुषाण राज्य स्थापित होने के कारण लम्बी उपाधियों को भी उन्होंने स्थान दिया।

8.4 विम कदफिस के सिक्के

यद्यपि विम ने तीनों धातुओं (सोना, चाँदी व ताँबा) को मुद्रा के लिए प्रयोग किया था, परन्तु सोने के सिक्के प्रमुख रूप में प्राप्त हुए हैं। उत्तर–पश्चिम भारत का शासक होने के कारण उसनेवहां प्रचलित यूनानी तथा खरोष्ठी लिपियों का प्रयोग किया परन्तु इसके सिक्कों पर यूनानी प्रभाव अज्ञात है। सम्भवतः शैवमत के अनुयायी होने के कारण विम के सिक्कों के पृष्ठभाग पर शिव एवं नंदि की आकृ–तियाँ खुदी हैं। उसने अपने को शिव का पुजारी बतलाकर महेश्वर की उपाधि धारण की।

1. स्वर्ण मुद्रा–२४२ रोन।

   अग्रभाग–टोप सहित राजा की बैठी आकृति, कन्धे से अग्नि ज्वाला, दाहिने हाथ में वज, यूनानी लेख 'वैसिलियस ओमो कैडफिसेस'।

   पृष्ठभाग–त्रिशूल धारण किए नदि के सम्मुख शिव की आकृति, खरोष्ठी लिपि में मुद्रा–लेख 'महरजस रजदिरजस सर्व लोग इश्वरस महिश्वरस विम कथ्भिशस त्रतरस'।

2. चौखट में आकृति–20 ग्रेन। इस छोटी तौल की स्वर्ण मुद्रा में चौखट में राजा का सिर है। यूनानी लेख अग्रभाग पर अकित है। पृष्ठभाग पर खरोष्ठी लिपि में ''महाराज राजाधिराज वीम कदफिस'' खुदा है। इस ओर त्रिशूल की आकृति दिखाई देती है।

   ताँबे के सिक्कों पर विम ने बड़ी लम्बी उपाधि को स्थान दिया था। शायद साधारण जनता में प्रचलित मुद्रा द्वारा वह अपनी शक्ति तथा प्रभुता को व्यक्त करना चाहता था। सोने के सिक्के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र के लिए निर्मित किए गए, किन्तु ताँबे के सिक्के तो समाज के दैनिक जीवन के लिए थे। सम्भव है, इसी को ध्यान में रखकर वीम ने महान् उपाधि ''महाराजाधिराज त्रातारस'' को ताँबे की मुद्राओं पर स्थान दिया जिसे कनिष्क ने भी अपनाया।

विम कदफिस के सिक्के

3. ताँबे का सिक्का – 270 ग्रेन।

   अग्रभाग पर राजा की खड़ी मूर्ति, वेदि पर हवि डाल रहा है। त्रिशूल बाईं ओर दिखाई देता है। यूनानी लेख –'वैसिलियस वैसिलियान सोटर मेगास वोमो कैडफिसेस'' खुदा है।

   पृष्ठभाग–शिव की मूर्ति, लम्बा त्रिशूल दाहिने हाथ में, बाईं ओर नंदि पर हाथ रखे हुए हैं।खरोष्ठी लिपि में लेख पहले प्रकार की स्वर्ण मुद्रा सदृश है।

4. ताँबे का सिक्का जिस पर वीम का अर्द्धचित्र है, अन्य बातें वैसी ही हैं।

5. चाँदी का सिक्का (ब्रि० म्यू० कै० फलक 25, संख्या 11)।

8.5 कनिष्क की मुद्रायें

विम कदफिस के पश्चात् कनिष्क कुषाण राज्य का स्वामी हुआ किन्तु दोनों के सम्बन्ध अज्ञात हैं। कनिष्क भारत में कुषाणवंश का सर्वप्रसिद्ध तथा शक्तिशाली शासक था जिसका साम्राज्य मध्य एशिया से वाराणसी तक फैला था। पाटलिपुत्र की खुदाई से कनिष्क तथा हुविष्क के सैकड़ों ताँबे के सिक्के मिले हैं। विद्वानों का मत है कि कनिष्क ने पाटलिपुत्र को जीत लिया था। अन्य प्रमाणों के अभाव में मगध पर कुषाणों का अधिकार था, यह कहना कठिन है। आक्रमण करते हुए कनिष्क के सैनिक मगध तक आए हों, और वहाँ मुद्राएँ छोड़ गए हों, यह विचारणीय है। सारनाथ के पास बुद्ध प्रतिमा लेख की तिथि शक काल में 3 = 81 ई० दी गई है। यद्यपि कनिष्क की तिथि विवादास्पद है किन्तु कनिष्क को शक सम्वत् (ई० स० 78) का संस्थापक मानते है। अतः उस वंश के समस्त अभिलेखों की तिथि श० का० से सम्बन्धित की जाती है। कनिष्क बौद्ध धर्मावलम्बी था और चौथी बौद्ध संगति को उसने बुलाया था। किन्तु कनिष्क तथा उसके वंशज के सिक्कों पर सभी मतों के देवी–देवता को स्थान दिया गया था। यह कुषाणों के सहिष्णुता का द्योतक है।सम्भवतः कनिष्क के विस्तृत राज्य में विभिन्न जातियाँ निवास करती थीं, इसी कारण उसने सभी वर्गों के लोगों के पूज्य देवता को अपने सिक्कों पर स्थान दिया।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए स्वर्ण मुद्रा का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक था, क्योंकि सोना ही विश्व में विनिमय का मानदण्ड (standard of change) माना जाता है। कनिष्क की मुद्राएँ इस बात की पुष्टि करती हैं। उत्तर–पश्चिम भारत में खरोष्ठी लिपि तथा भारत के अन्य भागों में ब्राह्मी लिपि का प्रचलन था परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को ध्यान में रखकर यूनानी लिपि एवं भाषा को सिक्कों पर स्थान दिया गया। सम्भवतः वह उस समय विदेशों में प्रचलित भाषा एवं लिपि रही हो। यद्यपि कुषाणवंशी अधिकांश लेख प्राकृत भाषा तथा खरोष्ठी लिपि में अंकित रहे किन्तु सिक्कों के मुद्रा–लेख यूनानी भाषा में खोदे गए थे। जो पश्चिमी एशिया, बल्ख तथा यूरोप में सर्वमान्य भाषा एवं लिपि थी। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण के कारण ही सोने के अतिरिक्त रोमन तौल (121 ग्रेन) के बराबर भारतीय कुषाण सिक्के तैयार किए गए।

कुषाण सिक्के तौल में 121 ग्रेन, उसके दुगुने या आधे तौल में तैयार होते रहे। कनिष्क तथा उसके वंशजों ने भी इस तौल–माप तथा यूनानी लिपि को अपनाया। कनिष्क समूह के शासकों की यही विशेषता है। कनिष्क की आकृति ईरानी वेष में खोदी गई है जिसमें लम्बा कोट, पायजामा तथा लम्बी टोपी दीख पड़ती है। राजा अग्निकुण्ड पर हविष डालते दिखाया गया है। सोने के सिक्कों पर ईरानी उपाधि के साथ राजा का नाम है किन्तु ताँबे की मुद्रा पर यूनानी उपाधि अंकित है। इस विभेद का रहस्य अज्ञात है। सम्भवतः ईरानी सम्पर्क के कारण वेशभूषा तथा उपाधि का प्रयोग कनिष्क करने लगा। उत्तर–पश्चिम भारत में ताँबे के सिक्के स्थानीय कार्य के लिए प्रचलित किए गए थे। कालक्रम के अनुसार कनिष्क के पश्चात् हुविष्क तथा वासुदेव के सिक्के उपलब्ध हुए हैं। किन्तु कनिष्क तथा हुविष्क के मध्यवर्ती शासक वाशिष्ठ के सिक्के दुर्लभ हैं।

आकृति तथा शैली में कनिष्क के सिक्के वीम कदफिस से भिन्न हैं। इसलिए ये कदफिस समूह से पृथक् किए जा सकते हैं। कनिष्क समूह के सिक्के उत्तर–पश्चिम भारत में अत्यधिक संख्या में उपलब्ध हुए हैं जिससे कुषाण नरेश कनिष्क के वैभव तथा शक्ति का परिचय मिलता है। कौशाम्बी, सारनाथ (उत्तर प्रदेश) तथा जेदा एवं स्यूविहार (पश्चिमोत्तर प्रदेश) के लेख उसके राज्य विस्तार के द्योतक हैं। ताँबे के सिक्के पश्चिमी पंजाब, कश्मीर तथा काबुल के क्षेत्र में कई सरियों तक प्रचलित रहे हैं। मगध के क्षेत्र से भी कुछ सिक्के प्राप्त हुए हैं। कनिष्क के तीसरे वंशज वासुदेव के पश्चात् कुषाणवंश का ह्रास हो गया जिसका प्रभाव सिक्कों पर भी पड़ा। पिछले कुषाण नरेश का सीमित शासन तथा भद्दे सिक्के इस अवनति के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

8.5.1 कनिष्क की स्वर्ण मुद्रा

स्वर्ण–मुद्रा के लिए सोना मध्य एशिया के क्षेत्र से उपलब्ध होता था। कनिष्क की मुद्राएँ रोमन तौल के बराबर मिलती हैं। राजा ईरानी वेशभूषा में दिखाया गया है। प्रत्येक सिक्के पर पृथक–पृथक देवी–देवता खुदे हैं।

अग्रभाग–राजा की खड़ी आकृति, लम्बा कोट, पायजामा, नुकीली टोपी लम्बी, बाएँ हाथ में माला, दाहिने हाथ से हवनकुण्ड पर हविष डाल रहा है। ईरानी उपाधि सहित नाम (यूनानी अक्षरों में) 'शाओ नानो शाओ कनिष्की कोशानो' खुदा है।

पृष्ठभाग–इस ओर विभिन्न देवी–देवताओं की आकृतियां दिखाई देती हैं। प्रत्येक सिक्के पर एक ही आकृति तथा उसका नाम यूनानी भाषा में खुदा है। मिइरो (सूर्य), मेओ (चन्द्र), आरलेग्नो, नाना, आरदोक्षो (देवी) फैरो मैनाओवैगो खुदे हैं।

कुछ सिक्कों पर अग्रभाग पर वही है। पृष्ठभाग–चतुर्भुजी शिवजी की प्रतिमा, नाम यूनानी भाषा में ओईशो (शिव), शिव के हाथों में त्रिशूल, बकरा, डमरू तथा अंकुश दिखाई देते हैं अथवा प्रभामण्डलयुक्त खड़ी बुद्ध–प्रतिमा यूनानी भाषा में 'वोडो' अंकित है।

8.5.2 ताँबे के गोलाकार सिक्के

इस धातु का अधिक प्रयोग किया गया था। उत्तर–पश्चिम भारत, पंजाब, उत्तर प्रदेश एवं बिहार में कनिष्क के ताँबे की मुद्राएँ मिली हैं। इनका प्रयोग जीवन के साधारण कार्य में किया जाता था। विदेश में इनका प्रचलन नहीं था। तौल में भी रोमन तौल–माप के बराबर सिक्के मिले हैं।

ताँबे के सिक्कों में एक विशेषता यह थी कि उन पर लम्बी यूनानी उपाधि सहित कनिष्क का नाम खुदा है।

अग्रभाग–ताँबे के सिक्के पर कनिष्क की वैसी ही आकृति दिखाई देती है। उपाधि सहित मुद्रा–लेख 'वैसिलियस वैसिलयान कनिष्काय' है।

पृष्ठभाग– यूनानी, ईरानी या भारतीय देवताओं की आकृतियाँ, यूनानी भाषा में उनका नाम– मिओरो (सूर्य), माओ (चन्द्र), अएडो (वायु), नानाशाओ (यूनानी देवी), नाना (देवी), दण्डधारी ओयशो (चतुर्भुजी या द्विभुजी शिव) अंकित हैं।

कनिष्क के सिक्के

8.6 हुविष्क के सिक्के

इस शासक ने भी सिक्कों के लिए स्वर्ण तथा ताँबे का प्रयोग किया था। हुविष्क के सोने के तथा ताँबे के सिक्के अधिक संख्या में मिले हैं। इसके दोनों धातुओं के सिक्कों पर ईरानी उपाधि सहित राजा का नाम खुदा है।

पृष्ठभाग पर विभिन्न देवी–देवताओं की आकृति खुदी है तथा यूनानी भाषा में नाम भी अकित हैं। देवताओं की वही सूची है जो कनिष्क के सिक्कों पर मिलती है। भेद इतना ही है कि हुविष्क के सोने तथा ताँबे के सिक्कों पर 'शाओ नाना शाओ' यानी एक ही प्रकार का लेख है।

अग्रभाग–राजा के अर्द्ध शरीर की आकृति पट्टीयुक्त, गोलाकार टोप, अलंकृत कोट, दाहिने हाथ में दण्ड, बाएँ में अंकुश, मुद्रा–लेख –'शाओ नानो शाओ ओइशकी कोशानो' अकित हैं।

पृष्ठभाग –अनेक देवी–देवताओं की आकृतियां, यूनानी भाषा में नाम मीरो, मओ, अर्थशो, फैरो, नाना, आरडोक्षो तथा ओइशो (दो हाथ वाले शिव, त्रिशूल एवं अंकुश) अंकित हैं।

अन्य सिक्कों के अग्रभाग पर राजा की भिन्न आकृति दिखाई देती है। एक में नुकीला–लम्बा टोप तथा कवच (उंपस बवंज) दिखाई देता है।

गोलाकार ताँबे के सिक्कों पर भिन्न आकृतियाँ हैं– अग्रभाग पर पट्टीयुक्त राजा प्रभामण्डल सहित हस्ती पर सवार अंकुश तथा भाला लिए है, मुद्रा–लेख वही है अथवा पलंग पर झुका हुआ राजा हुविष्क, अथवा गद्दे पर, वज्रासन बनाए बैठा राजा, बाएँ हाथ में दण्ड है अथवा दोनों हाथ उठाए हुविष्क की आकृति है, मुद्रा–लेख समान है।

पृष्ठभाग–स्वर्ण मुद्रा के सदृश देवी–देवताओं की आकृतियाँ तथा नाम यूनानी भाषा में है।

8.7 वासुदेव की मुद्राएँ

कुषाण–नरेश वासुदेव के शासनकाल में शैवमत का अधिक प्रचार प्रतीत होता है। इसलिएयूनानी तथा ईरानी देवी–देवताओं की आकृति कम दिखाई पड़ती है। कनिष्क के बाद बौद्धमत का ह्रास हो गया था। लेकिन वासुदेव के समय शैवमत ने प्रमुख स्थान ग्रहण कर लिया था। उसी के फलस्वरूप वासुदेव के सोने तथा ताँबे के सिक्कों पर शिव को मुख्य स्थान दिया गया है। सिक्कों की तौल रोमन तौल–माप के बराबर है। सभी सिक्के गोलाकार हैं। सोने तथा ताँबे के सिक्कों पर एक ही समान मुद्रा–लेख है।

अग्रभाग–प्रभासहित राजा की खड़ी आकृति, ईरानी पहनावा, लम्बा पायजामा, लम्बा टोप, दाहिने हाथ से अग्निकुण्ड पर हविष डालते, बाएँ हाथ में त्रिशूल लिए दिखाया गया है। मुद्रा–लेख– 'शाओनानो शाओ बोजैड़ो, वासुदेव कोशानो' है।

पृष्ठभाग–दो भुजा वाले शिव, त्रिशूल तथा पाशसहित, पीछे नन्दि, ओएशो (शिव) यूनानी भाषा में है। कुछ सिक्कों पर नन्दि नहीं दिखाई देता है।

वासुदेव के एक अलभ्य सिक्के का पता चला है जिसके पृष्ठभाग पर शिव तथा हाथी (नन्दि के स्थान पर) की आकृतियाँ खुदी हैं। (ज० न्यू० सो० इ० भा० 13, पृ० 126)

8.8 देवी–देवताओं के सिक्के

इस प्रकार कुषाण सिक्कों के परीक्षण से प्रकट होता है कि शासकों ने सिक्कों के पृष्ठभाग पर ही विभिन्न देवी–देवताओं की आकृतियों को स्थान दिया था। अग्रभाग पर ईरानी वेशभूषा में शासक की आकृति तथा लम्बी उपाधि सहित नाम है, यूनानी भाषा का सर्वदा प्रयोग मिलता है। इससे शासक की धार्मिक प्रवृत्ति का पता लगता है। देवी–देवता निम्नलिखित चार श्रेणियों में विभक्त हैं।

1. **ईरानी देवता–**

   मिओरो–सूर्य देवता

   मेओ–चन्द्र देवता

   आएडो–वायु देवता

   अथसो–अग्नि देवता

   आरलैग्नो–युद्ध देवता

ओअनिन्डो–विजय देवता

2. **ब्राह्मण देवता**–

ओएशोशिव

स्कन्दो–स्कन्द

कुमारो–कुमार

विजैगो विशाख

महासेनो महासेन

3. **बौद्ध देवता**–

बोडो–बुद्ध

4. **यूनानी देवता**–

आरडोक्षो वैभव देवी (अन्न की बालियों सहित)

नानादेवी

फैरो–देवता (ज्वाला सहित)

हेरैक्लिज – (भारतीय भीम)

मैना ओवैगो – (इन्द्र देवता)

हेलियास–सूर्य।

8.9 स्वर्ण मुद्राओं में मिश्रण

कुषाणवंशी स्वर्ण–मुद्राओं के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इस वंश की अवनति के साथ सिक्कों की शुद्धता घटती गई। सोने में चाँदी का सम्मिश्रण होने लगा। इनका वैज्ञानिक विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि शुद्ध सोने का प्रयोग सदा सम्भव न था। सोने का विशिष्ट घनत्व 19.32 मानते हैं। अतएव इस दृष्टि से विचार करने पर विम कदफिस से वासुदेव तक की स्वर्ण–मुद्राएँ न्यून घनत्व की हैं। कदफिस (18.9), कनिष्क (19.2) हुविष्क (18.7) तथा वासुदेव (18.9) की सोने की मुद्राएँ क्रमशः 97, 98, 96 या 95 प्रतिशत शुद्धता की हैं। इसी आधार पर कदफिस समूह के शासक कनिष्क समूह के पूर्ववर्ती माने जाते हैं।

8.10 सारांश

उत्तर भारतीय और मध्य एशियाई कुषाण साम्राज्य (लगभग 30–375 सीई) के सिक्के में जारी किए गए मुख्य सिक्के सोने थे, जिनका वजन 7.9 ग्राम था, और 12 ग्राम और 1.5 ग्राम के बीच विभिन्न वजन के आधार धातु के मुद्दे थे। थोड़ा चांदी का सिक्का जारी किया गया था, लेकिन बाद के समय में इस्तेमाल किए गए सोने को चांदी से हटा दिया गया था।

सिक्का डिजाइन आमतौर पर पूर्ववर्ती ग्रीको–बैक्ट्रियन शासकों की शैली का अनुसरण करते हैं , जिसमें छवि की हेलेनिस्टिक शैलियों का उपयोग किया जाता है, जिसमें एक तरफ देवता और दूसरी तरफ राजा होता है। राजाओं को एक प्रोफाइल प्रमुख के रूप में दिखाया जा सकता है, एक स्थायी व्यक्ति, जो आमतौर पर पारसी में एक अग्नि वेदी पर कार्य करता हैशैली, या घोड़े पर चढ़ा हुआ। मरने की कलात्मकता आमतौर पर ग्रीको–बैक्ट्रियन शासकों के सर्वोत्तम सिक्कों के असाधारण उच्च मानकों से कम है। रोमन सिक्कों से निरंतर प्रभाव पहली और दूसरी शताब्दी सीई के अंत के डिजाइनों में देखा जा सकता है, और सिक्कों पर प्रमाणित टकसाल प्रथाओं में भी, साथ ही आधार धातु के सिक्कों में धातु के मूल्य में क्रमिक कमी, ताकि वे बन जाएं आभासी टोकन। ईरानी प्रभाव, विशेष रूप से शाही आंकड़ों और इस्तेमाल किए गए देवताओं के देवताओं में, और भी मजबूत है।

8.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

13. कुषाणों के सिक्कों के विषय में वर्णन कीजिये।

....

....

14. कुषाणों के सिक्कों की तकनीकि, प्रतीक एवं वजन मानक के विषय में टिप्पणी कीजिये।

....

....

15. कुषाण शासक कनिष्क की मुद्राओं के विषय में वर्णन कीजिये।

....

....

8.12 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्त परमे''वरी लाल : भारत के पूर्वकालिक सिक्के।

राव राजवन्त एवं राव प्रदीप कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

चक्रवर्ती एस.के. : प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र का अध्ययन।

उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

ओझा, रायबहादुर गौरी''ांकर हीराचन्द्र : प्राचीन मुद्रा।

पाण्डेय, विमले''ा कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

इकाई–9–पश्चिमी क्षत्रप के सिक्के

इकाई की रूपरेखा

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्दे"य

9.2 पि"चमी क्षत्रपों के सिक्के

9.2.1 भाषा तथा लिपि

9.3 क्षहरात वंश के सिक्के

9.4 कारदमक वंश के सिक्के

9.4.1 ताँबे के सिक्के

9.5 रूद्रदामन के सिक्के

9.5.1 सिंहासन के निमित्त संघष

9.6 रूद्रदामन के सिक्के

9.7 सत्यदामन के सिक्के

9.8 स्वर्ण मुद्राओं में मिश्रण

9.9 सारांश

9.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.11 संदर्भ ग्रन्थ

9.0 प्रस्तावना

ईसवी सन् के आरम्भ से कुषाण साम्राज्य कई भागों में बँटा हुआ था। प्रांतीय शासकों की उपाधि क्षत्रप थी, किन्तु शासक शकवंशी नरेश थे जो बाहर से आकर भारत में शासन करने लगे। ईसा पूर्व गान्धार तथा काबुल में यूनानी लोगों का शासन था। उन्हें अपदस्थ करके शकों ने अपना राज्य स्थापित किया। ईरानी भूभाग पार्थिया में रहने के कारण इन्हें पार्थियन शक भी कहते थे। यूईची यानी कुषाण इनके परवर्ती शासकों के नाम सर्वविदित हैं। राजा कनिष्क उस वंश का सबसे प्रतापी नरेश हुआ जिसने भारतीय संस्कृति को अपनाया। कुषाण साम्राज्य के अधीनस्थ सामंतों ने उत्तरी एवं पश्चिमी भारत में शासन का भार सम्भाला। इनके राजवंश का नाम क्षत्रप रखा गया। ईरान की प्रसिद्ध उपाधि 'क्षत्रपावन' (पृथ्वी के रक्षक) का ही क्षत्रप संस्कृत रूप है तथा प्राकृत लेखों में इसे खतप शब्द से उल्लेख किया गया है। इसी कारण सामंतों द्वारा प्रचलित सिक्के 'क्षत्रप–मुद्रा' के नाम से प्रसिद्ध हुए। क्षत्रप सिक्के भारतीय मुद्रा के इतिहास में विशेषता रखते हैं। यों तो प्रायः अभिलेख तथा मुद्रा की सहायता से किसी वंश का इतिहास तैयार किया जाता है, परन्तु क्षत्रप इतिहास अस्सी प्रतिशत सिक्कों पर निर्भर करता है, अर्थात् क्षत्रप युग का अधिकांश इतिहास सिक्कों के आधार पर निर्मित किया गया है।

कुषाणकाल में विकेन्द्रित शासन था। अनेक सामंत (क्षत्रप) उत्तर तथा पश्चिम भारत में राज्य करते रहे। अभिलेखों तथा मुद्राओं के आधार पर उसकी निम्नलिखित शाखाओं का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है–

1. तक्षशिला–पटिक नामक शासक
2. मथुरा–रंजबुल एवं सोडास
3. वाराणसी–खरपल्लाना
4. मालवा क्षहरातवंशी नहपान
5. सौराष्ट्र – चष्टन तथा उसके वंशज

चौथे तथा पांचवें भूभाग में कई सदियों तक शक–नरेशों का शासन रहा। उन्होंने अनगिनत चाँदी के सिक्के प्रचलित किए जिनका अध्ययन 'क्षत्रप सिक्कों' के नाम से किया जाएगा।

9.1 उद्‌देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्‌देश्य आपको पश्चिमी क्षत्रप शासकों के सिक्कों की उत्पत्ति, तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक, वजन मानक एवं निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

9.2 पश्चिमी क्षत्रपों के सिक्के

पश्चिमी भारत पर शासन करने वाले शक सामंतों ने, जिन्हें क्षत्रप कहते हैं, अपने प्रचलित सिक्कों पर दो प्रकार की उपाधियों का उपयोग किया है। पहले क्षत्रप शब्द का प्रयोग अधिकतर पाया जाता है। जैसा कहा गया है, यह ईरानी उपाधि क्षत्रपावन (भूमि का स्वामी) का संस्कृत रूप है। प्राकृत में खतप मिलता है। सिक्कों के अध्ययन से पता चलता है कि क्षत्रप साधारण उपाधि थी जो किसी राजा की अधीनता की बोधक थी। इससे ऊँची उपाधि महाक्षत्रप की समझी जाती है और मुद्रा–लेखों में शासक के लिए महाक्षत्रप तथा उसके सहयोगी के लिए क्षत्रप का उल्लेख पाया जाता है। सम्भव है कि शासक का पिता क्षत्रप हो तथा उसके पुत्र ने महाक्षत्रप की उपाधि धारण की हो। सौराष्ट्र के शक राजा रुद्रदामन के मुद्रा–लेख तथा उसकी जूनागढ़ प्रशस्ति में दोनों उपाधियाँ प्रयुक्त हैं–

'राज्ञः क्षत्रपस्य स्वामी जयदाम्नः पुत्रस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य (रुद्रदामन)'। यदि समस्त लेखों का अनुशीलन किया जाए तो ज्ञात होता है कि–

1. क्षत्रप उपाधि अधीनता का द्योतक है।
2. महाक्षत्रप स्वाधीन होने की दशा में राजा इस उपाधि का उल्लेख करता था।
3. किसी अवस्था में शासक शक्तिशाली होकर महाक्षत्रप होने की घोषणा करता था।
4. कालान्तर में महाक्षत्रप शब्द का प्रयोग समाप्त हो गया।
5. मुद्रा–लेख में प्रधान शासक महाक्षत्रप तथा उसके सहायक को क्षत्रप कहा गया है।
6. राजनीतिक कारणों से शक इतिहास में कुछ समय तक शासक महाक्षत्रप की उपाधि धारण न कर सका।
7. अधीनस्थ सामंत को भी महाक्षत्रप कहा गया था।

इसके स्पष्टीकरण के लिए सिक्कों तथा अभिलेखों का विवेचन आवश्यक होगा। इस बात उल्लेख असंगत न होगा कि समस्त लेखों के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि किसी प्रका नियम, क्रम अथवा परम्परा का अनुसरण नहीं किया गया। नहपान के लेख बतलाते हैं कि मालवा एवं महाराष्ट्र पर शासन कर रहा था। उसके सिक्के गुजरात, मालवा, महाराष्ट्र में मिले सिक्कों पर प्राकृत में "राजओ क्षहरातस नहपानस'' (राजा क्षहरातवंशी नहपान का सिक्का) अि है। इसमें क्षत्रप शब्द का प्रयोग नहीं है। लेखों में क्षत्रप तथा महाक्षत्रप दोनों उपाधियाँ उल्लिखित हैं– राजो क्षहरातस क्षत्रपस नहपानस' (नासिक गुहा–लेख) 'रञो खहरातस खतपस नहपान (कार्ले गुहा–लेख) 'राजो महरवतपस सामि नहपानस' (जूनार गुहा लेख)। सम्भव है क्षत्रप अवस्था में नहपान कुषाणों के अधीन हो। कालान्तर में स्वतंत्र होकर महाक्षत्रप की उपाधि धारण की। मुद्रा–लेख में भारतीय शैली में राजा (प्राकृत रञो) की उपाधि धारण की। किन्तु यह परम् आगे नहीं दिखाई देती। इस वंश के पश्चात् कारदमकवंश के समस्त शासकों ने क्षत्रप अथवा महाक्षत्रप उपाधियों के साथ सिक्के अंकित कराए। शकवंश के प्रसिद्ध नरेश रुद्रदामन के पिता उपाधि क्षत्रप थी और वह स्वयं महाक्षत्रप बन जाने या उपाधि धारण करने की घोषणा करता है 'स्वयंमधिगत महाक्षत्रप नाम्ना नरेन्द्र कन्या स्वयंवरानेक माल्य प्राप्त दाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम् (गिरनार का लेख)। इसका अर्थ यह है कि सम्भवतः उसके वंश में किसी ने अपने को महाक्षत्रप घोषित नहीं किया था या स्वतंत्र नहीं हुए थे। किन्तु रुद्रदामन ने अपनी स्वतंत्रता घोषित की। दो उपाधियों का राजनीतिक मूल्य एक–सा नहीं था। दूसरी सदी में जीवदामन तथा रुद्रसिंह में गद्दी लिए युद्ध होता रहा। जीवदामन महाक्षत्रप था। रुद्रसिंह ने उसे सिंहासन से हटा दिया। वह स्वयं महाक्षत्रप हो गया। इस कारण से जीवदामन क्षत्रप हो गया। दूसरी बार रुद्रसिंह हार गया। अतः जीवदामन महाक्षत्रप तथा रुद्रसिंह क्षत्रप की उपाधियों सहित लेखों में उल्लिखित है। इसी तरह तीसरी शताब्दी में क्षत्रप राजाओं को परास्त कर ईश्वरदत्त दो वर्ष के लिए महाक्षत्रप हो गया जिसने सिक्कों पर 'वर्ष प्रथम' तथा 'वर्ष द्वितीय' पढ़ा गया है।

ईश्वरदत्त शकवंश का नहीं था, किन शासक हो जाने पर उसने परम्परागत 'महाक्षत्रप' की उपाधि से अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की थी।

यों तो पश्चिमी भारत के सिक्कों तथा अभिलेखों में ये उपाधियां मिलती हैं, किन्तु कुषाण नरेश कनिष्क के लेखों में भी इसका उल्लेख है। कनिष्क के सारनाथ प्रतिमा लेख (तिथि 3 = 81) ई० के अध्ययन से प्रकट होता है कि महाक्षत्रप स्वतंत्र शासक के लिए प्रयुक्त नहीं है। प्रधान अधीनस् शासक को महाक्षत्रप तथा उसके सहायक को क्षत्रप कहा गया है।

'भिक्षु बलस्य त्रेपिटकस्य बोधिसत्वो प्रतिष्ठापितो। महाक्षत्रपेन खरपल्लापनेन सहाक्षत्रपेन वनष्परेन'। जिस समय (81 ई०) भिक्षु बल ने बोधिसत्व–प्रतिमा स्थापित की, उस समय (कनिष्क के अधीन) महाक्षत्रप खरपल्लान तथा उसके साथ, क्षत्रप वनष्पर शासन करते थे। अतएव रुद्रदामन ने जिस रूप में महाक्षत्रप की उपाधि धारण की एवं स्वतंत्र हुआ, उससे भिन्न सारनाथ प्रतिमा लेखक में 'महाक्षत्रप' शब्द प्रयुक्त है। अतएव, किसी निश्चित सिद्धान्त का प्रतिपादन करना उचित नहीं होगा।

9.2.1 भाषा तथा लिपि

मौर्य सम्राट अशोक के लेख पश्चिम तथा दक्षिण भारत में प्राकृत भाषा में लिखे गए थे, जिनकी लिपि ब्राह्मी थी। उसके उत्तराधिकारी सातवाहन नरेशों ने प्राकृत का ही प्रयोग किया। मुद्रा–लेख तथा गुहा–लेख सभी प्राकृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण हैं। ईसवी पूर्व शताब्दी में दक्षिण भारत में प्राकृत का ही प्रचार था। ईसवी सन् के बाद दक्षिण तथा पश्चिम भारत में शकवंश (क्षत्रप) राजा शासन करने लगे जिनको सातवाहन सम्राटों से युद्ध करना पड़ा। उत्तर–पश्चिम भारत से आने के कारण शक लोगों ने मुद्रा–लेख में खरोष्ठी लिपि का प्रयोग किया था, किन्तु वह स्थिति बदल गई। नहपान के मुद्रा–लेख में ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपियों में राजा के नाम अंकित हैं। भाषा प्राकृ त ही है। दूसरी शताब्दी ई० से शक नरेश भारतीय संस्कृति को अपनाने लगे। अतएव संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि का प्रयोग आवश्यक हो गया। यह कहना उचित न होगा कि उन लोगों ने पूर्णरूपेण भारतीय भाषा तथा लिपि को अपनाया। मुद्रा–लेख में प्राकृत भाषा का तथा अभिलेख में संस्कृत भाषा का प्रयोग अर्थात् दोनों भाषाओं का प्रयोग मिलता है। महाक्षत्रप रुद्रदामन की मुद्रा पर प्राकृत में लेख है तो गिरनार पर्वत के समीप जूनागढ़ का लेख काव्यमय संस्कृत में है। उनके पुत्र तथा पौत्र के मुद्रा–लेख मिश्रित भाषा में हैं। 'महाक्षत्रपस रुद्रदाम्न पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसिंहस'।

9.3 क्षहरात वंश के सिक्के

1. भूमक क्षहरातवंश का प्रथम शासक था जिसने ईसवी सन् के आरम्भ में मालवा में शासन किया था। उसके ताँबे के सिक्के गुजरात, मालवा तथा काठियावाड़ में मिले हैं। अग्रभाग–बाण तथा वज्र, खरोष्ठी लिपि में मुद्रा–लेख, 'क्षहरदस (क्षत्रप)'। पृष्ठभाग–धर्म।
2. भूमक का उत्तराधिकारी नहपान था। इसके लेख नासिक, कार्ले तथा जूनार गुहा में खुदे हैं। लेखों में (शक–सम्वत्) तिथि 42, 46 का उल्लेख है। अतएव यह द्वितीय शताब्दी के पूर्वार्द्ध (46+78 = 124 ई०) में शासन करता था। मालवा से महाराष्ट्र तक इसका राज्य फैला था। नासिक के समीप योगलथम्बी नामक स्थान से चाँदी के हजारों सिक्कों का एक ढेर मिला है।उसमें दो प्रकार के सिक्के विद्यमान हैं। पहले प्रकार के सिक्कों को नहपान ने स्वयं प्रचलित किया था। नासिक गुहा लेख से ज्ञात होता है कि सिक्कों को काहापण (संस्कृत कार्षापण) के नाम से पुकारते थे। उसके जामाता, ऋषभदत्त ने हिन्दू संस्कृति को अपनाया। अतः सहस्रों कार्षापण दान में दिए। नासिक गुहा लेख में श्रेणी नामक संस्था के बैंक में 3000 काहापण सुरक्षित रखने का वर्णन है, जिसके सूद से ऋषभदत्त ने संघ में व्यय का प्रबंध किया था। नहपान ने अनगिनत सिक्के प्रचलित किए थे। कुछ सिक्कों के अग्रभाग पर वृद्ध व्यक्ति की आकृति दिखाई देती है। इससे प्रकट होता है कि नहपान ने अधिक समय तक राज्य किया था। अंतिम समय में वह सातवाहन नरेश गौतमीपुत्र सातकर्णि से पराजित हुआ। सातकर्णि ने नहपान के सिक्कों पर विजयोपरान्त अपना नाम अंकित कराया। योगलथम्बी ढेर में ऐसे कई हजार कार्षापण हैं, जिनसे सातवाहन नरेश द्वारा सिक्कों के पुनः मुद्रण का पता चलता है।

प्रथम प्रकार = नहपान के सिक्के पर क्षत्रप उपाधि का अभाव। अग्रभाग–राजा के अर्द्ध शरीर की आकृति, सिर

पर टोपी, मूंछ सहित।

पृष्ठभाग–बाण तथा वज्र, ब्राह्मी लिपि में बारह बजे लेख – 'राजो क्षहरातस नहपानस'। उसके विपरीत ग्यारह बजे से खरोष्ठी लिपि में मुद्रा–लेख दाहिने से बाएं 'राजो चहरतस नहपनस'।

सातवाहन गौतमीपुत्र सातकर्णि द्वारा दूसरे प्रकार के पुनः मुद्रित सिक्के।

अग्रभाग–चौत्य तथा लेख, 'गोतमीपुतस सिरि सातकणिस' (इसमें नहपान का सिर दिखलाई पड़ रहा है) यानी सिर पर लेख अंकित।

पृष्ठभाग–वज्र की आकृति पर उज्जैनी चिह्न अंकित। नहपान के नाम के कुछ अक्षर पढ़े जा सकते हैं (ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपियों में)।

9.4 कारदमक वंश के सिक्के

कारदमकवंश के शक लोगों ने उज्जैन में शासन आरम्भ किया। ये भी कुषाणों के सामंत के रूप में पश्चिमी भारत में आए, किन्तु कालान्तर में स्वतंत्र हो गए। इनके सिक्कों की एक विशेषता है कि अधिकतर पिता का नाम भी मुद्रा–लेख में उल्लिखित है। इनका शासन संयुक्त रूप में संचालित हुआ था। यदि पिता शासक है (जिसकी उपाधि प्रायः महाक्षत्रप थी) तो उसके शासन में सहयोगी पुत्र का भी नामोल्लेख है तथा वह क्षत्रप कहा गया है। किसी परिस्थिति में पुत्र न रहकर छोटा भाई या बहन का पुत्र भी सहायक के रूप में दिखलाया गया है। (यह उसकी क्षत्रप उपाधि से ज्ञात होता है।)

कारदमक का पहला शासक चष्टन था। उसे घसमोटिक का पुत्र कहा गया है। चष्टन पश्चिमोत्तर भारत से आया था, इसीलिए उसने प्राकृत भाषा तथा खरोष्ठी लिपि को अपनाया था। क्रमशः खरोष्ठी लिपि का प्रयोग बंद हो गया तथा प्राकृत में संस्कृत मिश्रित भाषा प्रयोग में आने लगी। ऐसा प्रतीत होता है कि कारदमकवंश का राज्य चौथी सदी के अंत तक पश्चिमी भारत में था, तत्पश्चात् गुप्त सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त ने शकों को परास्त कर सभी प्रदेशों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

दूसरी सदी के मध्य में सातवाहन नरेशों को जीतकर चष्टन के उत्तराधिकारी रुद्रदामन ने अपने पूर्वजों की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। यह ज्ञात नहीं कि क्षहरात तथा कारदमक के परिवारों में क्या सम्बन्ध थे, किन्तु दोनों शक जाति के थे। दक्षिणापथपति पुलमावि के पराजित होने पर रुद्रदामन का राज्य मालवा, काठियावाड़ तथा गुजरात में फैल गया। जहाँ उसके लेख तथा सिक्केमिले हैं। गिरनार पर्वत पर खुदे लेख से प्रकट होता है कि रुद्रदामन शक 72 अर्थात् 150 ई० (72+78) में शासन कर रहा था। अतएव चष्टन 130 ई० के समीप मालवा का शासक रहा होगा। डॉ० भण्डारकर ने अंडौ लेख के आधार पर चष्टन तथा रुद्रदामन को संयुक्त शासक माना हैय क्योंकि दोनों उस लेख में राजा (राज्ञो) कहे गए हैं–

'राज्ञो चष्टनस घसमोटिक पुत्रस राज्ञो रुद्रदाम जयदाम पुत्रस'। भण्डारकर का मत समीचीन नहीं है। इसे स्वीकार करने में यह कठिनाई है कि रुद्रदामन ने जूनागढ़ लेख में व्यक्त किया है– 'स्वयमधिगत महाक्षत्रप नाम्ना' अर्थात् जयदामन के पश्चात् वह शासक हुआ और उसने अपने को महाक्षत्रप घोषित किया। सम्भव है, चष्टन के बाद किसी शत्रु ने अधिकार कर लिया हो। रुद्रदामन ने उसे हटाकर स्वयं अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। चष्टन के मुद्रा–लेख में महाक्षत्रप चष्टन के साथ रुद्रदामन क्षत्रप नहीं कहा गया है। चष्टन ने क्षत्रप तथा महाक्षत्रप के रूप में सिक्के प्रचलित किए। उसने आंध्र सिक्कों पर खुदे चैत्य के आकार को अपनाया। किन्तु, खरोष्ठी लिपि का प्रयोग समाप्त हो गया।

1. चाँदी के चष्टन के सिक्के–क्षत्रप के रूप में–

अग्रभाग–राजा के अर्द्ध शरीर की आकृति।

पृष्ठभाग–चौत्य, चाँद और तारे। ग्यारह बजे ब्राह्मी लिपि में लेख 'राजनो क्षत्रपस घसमोटिक पुत्रस'।

2. महाक्षत्रप के रूप में अग्रभाग –वही।

पृष्ठभाग–ब्राह्मी लिपि में लेख, 'राज्ञो महाक्षत्रपस घसमोटिक पुत्रस चष्टन'। किसी मुद्रा में खरोष्ठी लिपि में भी नाम अंकित मिला है।

9.4.1 ताँबे के सिक्के

अग्रभाग खड़ा अश्व, यूनानी अक्षर अस्पष्ट । पृष्ठभाग– चौत्य, चाँद, तारे। ब्राह्मी लिपि में लेख अस्पष्ट।

'चष्टन का जयदामन उत्तराधिकारी था जिसका पुत्र महाक्षत्रप रुद्रदामन अत्यन्त पराक्रमी शासक हुआ। उसका पिता जयदामन महाक्षत्रप के रूप में सिक्का प्रचलित न कर सका जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि बाहरी शत्रु ने उसे गद्दी से हटा दिया। सम्भवतः यही कारण था कि रुद्रदामन स्वयं महाक्षत्रप होने का दावा करता है।

क्षत्रप जयदामन के ताँबे के सिक्के–

अग्रभाग–वृषभ या हस्ती की आकृति, त्रिशूल तथा कठोर। पृष्ठभाग–छः मेहराव का चैत्य। ब्राह्मी लिपि में लेख 'राज्ञो क्षत्रपस स्वामी जयदामनस'।

9.5 रूद्रदामन के सिक्के

अग्रभाग–राजा का अर्द्धचित्र, यूनानी अक्षरों में अर्थरहित लेख।

पृष्ठभाग–तीन चाप का चैत्य, नीचे वक्र रेखा, बिन्दु, तारे तथा अर्द्धचन्द्र, बारह बजे, ब्राह्मी लिपि में लेख 'राज्ञो क्षत्रपस जयदाम पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदामस।'

महाक्षत्रपस रुद्रदामन के पुत्र एवं उत्तराधिकारी दामजद श्री ने द्वितीय शती के अंत (178 ई०) में राज्य सम्भाला। मुद्रा–लेखों में उसका नाम तीन रूपों में उल्लिखित है।

(क) दामघसद (ख) दामजद श्री (क्षत्रप उपाधि सहित) (ग) दामजद (महाक्षत्रप के रूप में)। जद शब्द ईरानी है, जिसका अर्थ है पुत्र। अतः अन्य भाषा के शब्द को यथार्थस्वरूप देना कठिन था। इसने अपने मुद्रा–लेख में संस्कृत मिश्रित प्राकृत का प्रयोग किया। 'राज्ञो तथा पुत्रस' विशेष उल्लेखनीय हैं।

महाक्षत्रप दामजद श्री के सिक्के–

अग्रभाग–राजा के अर्द्ध शरीर की आकृति।

पृष्ठभोग–चौत्य, ब्राह्मी में लेख – राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदाम्न पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस दामजद श्री'।

9.5.1 सिंहासन के निमित्त संघर्श

दामजद श्री के पश्चात् दो व्यक्ति अपने को गद्दी का अधिकारी घोषित करने लगे। (1) दामजद श्री का पुत्र जीवदामन (2) दामजद श्री का भ्राता रुद्रसिंह प्रथम। दोनों व्यक्तियों में संघर्ष की जानकारी उनके सिक्कों के अध्ययन से होती है। चूँकि इसी जीवदामन के समय से चाँदी के सिक्कों पर ब्राह्मी लिपि में अंक खोदे गए, अतः उनके आधार पर विदित होता है कि जयदामन ने दो बार महाक्षत्रप के रूप में सिक्के प्रचलित किए। उसी प्रकार प्रथम रुद्रसिंह (गद्दी का दूसरा अधिकारी) भी दो विभिन्न तिथियों पर महाक्षत्रप कहा गया है और मुद्रा–लेख में महाक्षत्रप की उपाधि सहित उल्लिखित है। इनकी तिथियों का उल्लेख शक सम्वत् में किया जाएगा।

जीवदामन ने महाक्षत्रप के रूप में 100 वर्ष (= 178 ई0) तथा 119 वर्ष में सिक्के प्रचलित किए। इनमें क्षत्रप की उपाधि नहीं मिलती। सिक्कों के परीक्षण से दोनों सिक्कों पर खुदी आकृति में अन्तर है। प्रथम रुद्रसिंह की तिथियाँ (शक–काल) निम्न प्रकार हैं–

102 में क्षत्रप के रूप में सिक्के

103 में क्षत्रप उपाधि सहित नाम (गुंडा लेख में)

103–110 महाक्षत्रप के रूप में सिक्के

110–112 क्षत्रप के रूप में

113–119 महाक्षत्रप के रूप में–इन तिथियों के विवेचन से प्रकट होता है कि 110–112 के दौरान जीवदामन की स्थिति नगण्य थी। प्रथम रुद्रसिंह क्षत्रप था। महाक्षत्रप कौन था? यह विचारणीय प्रश्न है। दोनों व्यक्तियों

(जीवदामन तथा रुद्रसिंह) में किसी के भी सिक्के महाक्षत्रप के रूप में नहीं मिलते। अतएव डॉ० भण्डारकर एक तीसरे व्यक्ति को इन दो वर्षों में महाक्षत्रप मानते हैं। डॉ० भण्डारकर के कथनानुसार ईश्वरदत्त दो वर्षों तक महाक्षत्रप रहा जिसके सिक्के भी सौभाग्यवश मिलते हैं। एक पर 'वर्षे प्रथम' तथा दूसरे पर 'वर्षे द्वितीय' अकित है। उनका कहना है कि इस संघर्ष में ईश्वरदत्त के अतिरिक्त सातवाहन नरेश यज्ञश्री सातकर्णि ने लाभ उठाया। क्षत्रपों से पश्चिमी प्रदेश जीत लिया। इन्हीं क्षत्रपों के अनुकरण पर यज्ञश्री ने चाँदी के सिक्के (सोपारा शैली) भी प्रचलित किए। उस घरेलू युद्ध में ई० स० 178 के पश्चात् रुद्रसिंह शासक बन बैठा एवं सिक्के प्रचलित किए। 110–112 (118 ई0 – 190 ई0) के मध्य ईश्वरदत्त गद्दी पर आया। किन्तु वह अधिक समय तक शक्तिशाली न रह सका। प्रथमरुद्रसिंह ने उसे परास्त कर पुनः 113–119 के दौरान महाक्षत्रप हो गया। सम्भवतः जीवदामन ने शक्ति एकत्रित कर अपने चाचा को हरा दिया जैसाकि उसकी महाक्षत्रप उपाधि से ज्ञात होता है।

उत्तरी काठियावाड़ में जसधन तालाब के किनारे स्थित स्तम्भ पर एक लेख खुदा है जिसकी तिथि 127 (शक–सम्वत्) अर्थात् ई० सं० 205 ज्ञात है। उसमें निम्न प्रकार से वंशावली दी गई है। उसके आधार पर प्रथम रुद्रसिंह रुद्रदामन का पुत्र प्रकट होता है–

राज्ञो	**महाभद्रमुख स्वामी**	**चष्टन**
''	''	जयदामन
''	''	रुद्रदामन
''	''	रुद्रसिंह
''	''	रुद्रसेन

9.6 रूद्रदामन के सिक्के

सम्भव है रुद्रसिंह महाक्षत्रप रुद्रदामन का प्रथम पुत्र हो। अतएव वह अपने को सिंहासन का अधिकारी मानने लगा। नाम लिखने की परिपाटी के कारण जीवदामन को रुद्रदामन का उत्तराधिकारी कहा जा सकता है। सिक्कों पर रुद्रदाम्नः तथा जीवदाम्नः अकित हैं। 'राज्ञो महाक्षत्रपस पुत्रस्य महाक्षत्रप जीवदाम्नः। अतः जीवदामन का शासन प्रथम रुद्रसिंह से पहले माना जा सकता है। जीवदामन के 119 वर्ष के सिक्कों (महाक्षत्रप में) पर मूंछें दीख पड़ती हैं, परन्तु 100 (=178 ई0) वर्ष वाले सिक्कों पर नहीं हैं। शकवंश में प्रथम रुद्रसिंह के सिक्कों पर ही सर्वप्रथम मूंछें दिखाई देती हैं, अर्थात् मूंछ की शैली रुद्रसिंह से आरम्भ हुई। इसलिए 119 वर्ष वाले जीवदामन के सिक्के (महाक्षत्रप तथा मूंछ सहित) प्रथम रुद्रसिंह के बाद प्रचलित हुए थे।

दोनों व्यक्तियों ने सिक्कों के लिए चाँदी तथा पोटीन का प्रयोग किया। पोटीन के सिक्कों पर पिता के नाम नहीं मिलते। 'राज्ञो महाक्षत्रपस जीवदामस तथा राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसिंहस।'

तात्पर्य यह है कि जीवदामन तथा रुद्रसिंह समकालीन थे। दोनों में संघर्ष की घटनाओं कीपुष्टि होती है।

9.7 सत्यदामन के सिक्के

दामदजश्री का पुत्र सत्यदामन अपने भ्राता जीवदामन के महाक्षत्रप काल (120 शक) में क्षत्रप रहा, ऐसी धारणा उसके मुद्रा–लेख से हो जाती है। सम्भव है, वह पिता के समय क्षत्रप रहा क्योकि उसके लेख संस्कृत मिश्रित हैं। यह प्रणाली दामजदश्री के समय में आरम्भ हो गई थी। लेख निम्न प्रकार है–'राज्ञो महाक्षत्रपस्य दामदजश्रीय पुत्रस्य राज्ञो क्षत्रपस्य सत्यदाम्न।'

इसके पश्चात् रुद्रसिंह प्रथम के पुत्र रुद्रसेन संघ दामन तथा दामसेन ने पृथक् पृथक् सिक्के तैयार किए। प्रायः चाँदी तथा पोटीन का प्रयोग किया गया। उनकी मुद्राएँ कम संख्या में उपलब्ध हुई हैं। पोटीन सिक्कों के प्रचलन से प्रकट होता है कि मालवा का भूभाग क्षत्रपों के हाथ में रहा।

दामदजश्री द्वितीय रुद्रसेन प्रथम का पुत्र था जिसके सिक्कों पर शक 154 (= 232 ई०) की तिथि उल्लिखित है। उन दिनों दामसेन महाक्षत्रप था। भगवानलाल इन्द्रजी इन दिनों ईश्वरदत्त का शासन सिद्ध करते हैं। दामसेन तथा विजयसेन के बीच ईश्वरदत्त की स्थिति बतलाते हैं तथा आभीर राजा ईश्वरसेन से उसकी तुलना करते हैं। पुराणों का ईश्वरसेन तथा नासिक लेख (9वें वर्ष)का आभीर राजा ईश्वरसेन एक ही व्यक्ति था जिसका सिक्का

भी उपलब्ध हुआ है। इस प्रश्न पर विचार किया गया है। क्षत्रप वंशावली में ईश्वरदत्त की स्थिति का प्रश्न विवादास्पद है। जिस अवधि (177–76) में भगवान् लालजी ईश्वरदत्त को रखते हैं। उस समय का दामदजश्री तृतीय का सिक्का महाक्षत्रप के रूप में मिल गया है। अतएव ईश्वरसेन (= ईश्वरदत्त) की तिथि निर्धारित नहीं की जा सकती। इसके पुत्र वीरदामन के सिक्कों पर, 156 तथा 160 पढ़े गए हैं। उसके पश्चात् वीरदामन के पुत्र यशोदामन ने महाक्षत्रप के रूप में सिक्के निकाले, परन्तु शीघ्र ही उसका भ्राता विजयसेन, शककाल 162 में महाक्षत्रप बन बैठा। सम्भवतः यह वीरदामन तथा यशोदामन के अधीन क्षत्रप रहा है, किन्तु 163 के पश्चात् महाक्षत्रप के रूप में शासन करने लगा। विजयसेन के अनगिनत सिक्के काठियावाड़ तथा गुजरात से उपलब्ध हुए हैं। इसी के समय से चाँदी के सिक्कों में विकृति आने लगी। इस प्रकार पिता, पुत्र अथवा चाचा क्षत्रप शासक होते रहे तथा सभी ने सिक्के प्रचलित किए। उनकी कोई ऐसी विशेषता नहीं थी, जिसका उल्लेख किया जाए। विश्वसेन के पश्चात् चष्टनवंश की समाप्ति हो गई और कालान्तर में शासन करने वाले क्षत्रप नरेशों ने राजा तथा स्वामी की भी उपाधि धारण की।

9.8 स्वर्ण मुद्राओं में मिश्रण

नए वंश के प्रथम शासक रुद्रसिंह द्वितीय शककाल 227 (= 305 ई0) में गद्दी पर बैठा। उसके चाँदी के सिक्कों पर निम्नलिखित लेख अकित है–'स्वामी जीवदामन पुत्रस राज्ञो क्षत्रपस रुद्रसिंहस'। रुद्रसिंह के पुत्र द्वितीय यशोदामन के सिक्के महाक्षत्रप उपाधि सहित नहीं मिले हैं। सम्भव है, किसी बाहरी शत्रु ने आक्रमण किया हो। इस वंश के तीसरे शासक ने लम्बी उपाधि धारण की। 'राज्ञा महाक्षत्रपस स्वामी रुद्रदाम पुत्रस राज्ञा महाक्षत्रपस स्वामी रुद्रसेनस'। रुद्रसेन तृतीय के शासनकाल में सिक्कों के लिए चाँदी के अतिरिक्त सीसे का भी प्रयोग हुआ। सबसे विशेष बात यह है कि इसी समय (शक 300) से मुद्रा–लेख इतने हीनावस्था में दिखाई पड़ते हैं कि अक्षरों को स्पष्टतया नहीं पढ़ा जा सकता है। यदि सिक्कों का परीक्षण किया जाए तो उन्हें दो वर्गों में बांट सकते हैं–

1. 270–73 के मध्य सिक्कों पर अक्षरों का अभाव।
2. दूसरे वर्ग के सिक्कों पर तिथि का स्पष्ट उल्लेख है। अक्षर भी साफ हैं। इसलिए अनुमान लगाया जा सकता है कि नए वंश के शासनकाल में नवीन टकसाल में सिक्के तैयार किए गए हों।

स्वामी रुद्रसेन तृतीय के पश्चात् स्वामी सिंहसेन (बहन का पुत्र) ने राज्य किया। इसके उत्तराधिकारी महाक्षत्रप के रूप में सिक्के प्रचलित रहे। स्वामी सिंहसेन के सिक्के पर राजा तथा महाराजा 'क्षत्रप' की उपाधियों सहित उल्लिखित हैं। उसी समय से सिक्कों पर तिथि के साथ संस्कृत शब्द 'वर्षे' का प्रयोग मिलता है जिसे गुप्तवंशीय चाँदी के सिक्कों पर स्थान दिया गया। इस नए क्षत्रपवंश का अतिम राजा रुद्रसिंह तृतीय ई० स० 388 में राज्य करता रहा। उसके पश्चात् गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने काठियावाड़ एवं गुजरात को जीत लिया। इस प्रकार क्षत्रपवंश का अंत हो गया।

9.9 सारांश

आन्ध्र–सातवाहनों के ही काल में पश्चिमी भारत में शकों ने प्रमुखता प्राप्त की थी। इनकी ख्याति पश्चिमी छत्रप के रूप में है। ये शक–शासक दो वंशों से सम्बन्ध रखते हैं। एक था हरात और दूसरा काद्र्दमक कहलाता था। पहले वंश में केवल दो और दूसरे वंश में कम–से–कम 27 शासक हुए थे। वे गुजरात, सौराष्ट्र और मालवा में ढाई शताब्दियों तक (310 ई०) तक शासन करते रहे। थाहरात वंश के प्रथम नरेश भूमक के ताँबे के कुछ ही सिक्के गुजरात, सौराष्ट्र के तटवर्ती प्रदेश तथा मालवा से मिले हैं। उन पर एक ओर बाण, चक्र और वज्र अंकित है और दूसरी ओर अगल–बगल सिंह–स्तम्भ तथा चक्र है। इन पर दोनों ओर शासक सहरात क्षत्रप भूमक का नाम है। एक ओर ब्राह्मी लिपि और संस्कृत भाषा में और दूसरी ओर खरोष्ठी लिपि और प्राकृत भाषा में। मथुरा से भी ब्राह्मी आलेख मात्र श्रहरातस भूमकस है और चौकोर है। इसके भी एक ओर बाण और चक्र प्रतीक है। दूसरी ओर चक्रस्तम्भ है। भूमक के उत्तराधिकारी नहपान ने इन सिक्कों के चित ओर के प्रतीक को अपने चाँदी के सिक्कों के पट भाग पर ग्रहण किया औरचित ओर प्रथम शती के रोमन सिक्कों पर अंकित सम्राट् के ऊर्वांग के अनुकरण पर उसकी अपनी छवि है। उसके ये सिक्के त्रि–भाषिक हैं। चित ओर का लेख यूनानी–रोमन मिश्रित भ्रष्ट लिपि में है और पट ओर लेख प्राकृत भाषा में ब्राह्मी तथा खरोष्ठी दोनों लिपियों में है। नहपान के ताँबे के सिक्के बहुत कम मिले हैं।

9.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

16. पॅिचमी क्षत्रपों के सिक्कों के विषय में वर्णन कीजिये।

....

....

17. पॅिचमी क्षत्रपों के सिक्कों की तकनीकि, प्रतीक एवं वजन मानक के विषय में टिप्पणी कीजिये।

....

....

18. क्षत्रप शासक रूद्रदामन की मुद्राओं के विषय में वर्णन कीजिये।

....

9.11 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्त परमे''वरी लाल : भारत के पूर्वकालिक सिक्के।

राव राजवन्त एवं राव प्रदीप कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

चक्रवर्ती एस.के. : प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र का अध्ययन।

उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

ओझा, रायबहादुर गौरी''ंकर हीराचन्द्र : प्राचीन मुद्रा।

पाण्डेय, विमले''ा कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

इकाई 10–सातवाहन सिक्के

इकाई की रूपरेखा

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्‌दे”य

10.2 सिक्कों का प्रमाण

10.3 सातवाहन सिक्कों की विशेषता

 10.3.1 भाषा एवं लिपि

 10.3.2 द्रविड़ भाषा

 10.3.3 धातु एवं तौल

10.4 सातवाहन सिक्कों की शैलियाँ

10.5 सातवाहन नरेशों के सिक्के

 10.5.1 गौतमीपुत्र सातकर्णि की मुद्राएँ

 10.5.2 वाशिष्ठीपुत्र पुलमावि

 10.5.3 गौतमीपुत्र यज्ञश्री सातकर्णि

 10.5.4 सातवाहन नरेशों तथा सामंतों के सिक्क

10.6 सारांश

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.8 संदर्भ ग्रन्थ

10.0 प्रस्तावना

मौर्य साम्राज्य के पतन के प”चात् भारत में अनेक राज्यों का उदय हुआ। दक्षिण भारत में मौर्यों के उत्तराधिकारी सातवाहन नरेश माने जातें हैं, जिनका नात पुराणों में आंध्र जातीय अथवा आंध्र भ्रत्य के रूप में उल्लिखित है।

पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार आन्ध्र–सातवाहन वंश का आरम्भ सिमुक नामक व्यक्ति से हुआ जिसने शुङ्गवंश को समाप्त और कण्वनरेश सुशर्मन की हत्या की थी। इस वंश के 29 अथवा 30 राजाओं ने 455 अथवा 460 वर्षों तक राज्य किया। किन्तु अन्य साक्ष्यों के आधार पर इतिहासकारों ने इनका जो वंश–क्रम प्रस्तुत किया है, उससे उपर्युक्त पौराणिक अनुश्रुति का पूर्ण सामंजस्य नहीं होता। यह माना जाता है कि आन्ध्र सिमुक ने अशोक की मृत्यु के उपरान्त ई०पू० 232 में तख्त पलटने का प्रयास किया था, उसका यह प्रयास कण्व शासक के विरुद्ध न था, जैसा कि पुराणों का कहना है। इस अनुमान के आधार पर समझा जाता है कि सातवाहन नरेश तीसरी शती ई० तक शासन करते रहे। किन्तु आन्ध्र–सातवाहनों के सिक्कों के स्वतन्त्र विश्लेषण से इतिहास का सर्वथा भिन्न रूप उभरता है। पौराणिक सूची में उल्लिखित सभी शासकों के सिक्के उपलब्ध नहीं हैं। आरम्भ के अधिकांश राजे मुद्रा–श्रृंखला में सर्वथा अज्ञात हैं। यदि ये सभी या उनमें से कोई वस्तुतः शासक था तो उसका स्वतन्त्र शासन न रहा होगा। आश्चर्य नहीं यदि वे पश्चिमी भारत अथवा दक्षिण के किसी कोने में शुङ्ग अथवा कण्वों के समान स्वतन्त्र रहे हों और अपने सिक्के न चलाये हों।

आन्ध्रवंश के आदिराजा सिमुक का परिचय पुराणों के अतिरिक्त नाणेघाट स्थित एक प्रतिमा–परिचय–लेख से प्राप्त रहा है। उस पर रजो सिमुक सातवाहन लिखा है। उसके सिक्के सर्वथा अनजाने रहे हैं। किन्तु अभी हाल में करीमनगर (आन्ध्रप्रदेश) जिले के कोटलिंगाल नामक स्थान से कुछ सिक्के मिले हैं, जिन पर रञ्ञो सिरि छिमुक सात पढ़ा गया है। सम्भवतः लेख का अन्तिम अंश सिक्कों पर नहीं आ पाया है। अनुमान है कि अन्तिम शब्द सातवाहनस

होगा। सिक्कों के इस लेख की नाणेघाट लेख के साथ पूर्ण समानता है। अतः ये सिक्के कदाचित् इस बात के द्योतक हैं कि आन्ध्र सातवाहनों के आरम्भिक शासक इसी प्रदेश में रहे होंगे। इन सिक्कों के साथ ही सातवाहन और सातकर्णि नामक दो अन्य शासकों के भी सिक्के मिले हैं। महाराष्ट्र और दक्षिण प्रदेश से मिले कतिपय सीसे और ताँबे के सिक्कों से सादवाहन अथवा सातवाहन नाम पूर्वपरिचित रहा है किन्तु पुराणों की सूची में यह नाम उपलब्ध नहीं है। जब तक सिमुक (छिमुक) के सिक्के नहीं मिले थे, पुराणों पर अविश्वास कर सिक्कों के सातवाहन को इस वंश का आदिपुरुष समझा जाता था। किन्तु अब तो यही कहना होगा कि सिमुक के बाद ही सातवाहन नामक राजा हुआ और उसके बाद सातकर्णि। सातवाहन और सातकर्णि के एक सदृश सिक्के नेवासा (अहमदनगर) के उत्खनन में मिले हैं जो उन्हें एक ही क्रम में रखते हैं।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको सातवाहन शासकों के सिक्कों की उत्पत्ति, तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक, वजन मानक एवं निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

10.2 सिक्कों का प्रमाण

प्राचीन हैदराबाद (वर्तमान आंध्र प्रदेश) रियासत के कोंडपुर नामक स्थान से ताँबे तथा सीसे के सिक्के उपलब्ध हुए हैं। जिन पर अंकित मुद्रा–लेख 'रज्ञो सिरि सात या सिरि सातस अथवा सिरि साहवाहनस' पढ़ा गया है। यानी सभी सिक्के सातवाहन नामक आदि पुरुष ने प्रचलित किए थे। (ज० न्यू० सो० इ० भा० 7)।

(क) ताँबे की मुद्रा

अग्रभाग–चौकोर, हाथी सूँड़ उठाए, ब्राह्मी लिपि में मुद्रा–लेख 'रजोसिरी साडवाह'। उस लेख को डॉ० अलतेकर ने 'रञो सतस' पढ़ा था। (ज० न्यू० सो० इ० भा० 4, पृ० 26)

डॉ० दीक्षित ने एक सिक्के पर 'राञो सिरि सडवाहनो' पढ़ा था। (बुलेटिन देकन कॉलेज तथा अनुसंधान संस्थान भा० 6, पृ० 141।)

डॉ० काले ने उज्जैनी चिह्न के साथ मुद्रा–लेख को 'रजो सिरि सातस' पढ़ा है। (ज० न्यू० सो० इ० भा० 11, पृ० 94)।

पृष्ठभाग–उज्जैनी चिह्न वृत्त में बिन्दु एवं स्वस्तिक।

(ख) सीसा (धातु) का निर्मित सिक्का

डॉ० मिराशी के कथनानुसार उसी भूभाग (कोंडपुर, हैदराबाद) से सीसा धातु का सिक्का उपलब्ध हुआ था जिसका वर्णन निम्न प्रकार प्रस्तुत किया गया है–

अग्रभाग मुद्रा अण्डाकार, हाथी की आकृति, सूँड़ गिराए हुए। निचले भाग में अधूरा लेख– सिरि सडवह (सम्पूर्ण लेख –रञो सिरि साडवाहनस)। ज० न्यू० सो० इ० भा० 11, पृ० 5। पृष्ठभाग–उज्जैनी चिह्न वृत्त के मध्य में बिन्दु सहित।

10.3 सातवाहन सिक्कों की विशेषता

दक्षिण भारत में मौर्ययुग में आहत प्रकार (पंचमार्क) के सिक्के तैयार होते रहे हैं। ये साहित्य में कार्षापण के नाम से उल्लिखित हैं। कार्षापण अत्यन्त प्राचीनकाल से भारत में प्रचलित थे। साहित्य के अनुशीलन से पता चलता है कि सोना, चाँदी तथा ताँबे का प्रयोग कार्षापण के लिए किया जाता था। मौर्यकाल में सिक्के चाँदी धातु के बनाए गए। कौटिल्य ने रूप्य शब्द का प्रयोग किया है। जिनका प्रचलन पूरे भारत में था। उसी नाम से सातवाहनयुगीन सिक्के भी लोकप्रिय हुए। सातवाहन सिक्के अधिकतर तीन धातुओं–ताम्र, सीसा तथा पोटीन के बनते रहे। श्रीराव ने आंध्र प्रदेश के संग्रहालय में सुरक्षित अड़तीस हजार सिक्कों का परीक्षण किया है जिसमें 21 हजार से ज्यादा सीसा, करीब पंद्रह हजार ताँबे तथा दो हजार पोटीन के सिक्के हैं। सीसा से निर्मित सिक्के आंध्र प्रदेश, अनन्तपुर, चोलमण्डल किनारा तथा चितलदुर्ग जिले से मिले हैं। मध्य प्रदेश के चौदा जिले से प्राप्त हुए हैं। उत्तरी कोंकण तथा नासिक के भूभाग से चाँदी के सिक्के प्राप्त हुए हैं जो क्षत्रप अनुकरण पर तैयार किए गए थे। अधिक सम्भव है

कि सातवाहन–नरेशों ने देश के वैभव के कारण सस्ती धातु–ताँबा, सीसा तथा पोटीन का प्रयोग किया। नानाघाट के लेख में यज्ञ के अन्त में सहस्रों काहापन (संस्कृत कार्षापण) दान देने का वर्णन है। ये सभी चाँदी के ही बने होंगे। सम्भव है, ताम्र–कार्षापण को सातवाहन–नरेश ने दक्षिणा में दी हो। चाँदी से तैयार कार्षापण की स्थिति में यह विचार करना होगा कि बैंक में ताँबे के सिक्कों पर सूद देना सम्भव न था, अतः जनता चाँदी के कार्षापण जमा करती होगी। तत्कालीन नासिक लेख में इस प्रकार का वर्णन आता है– 'काहापण प्रयुता गोवर्धन वाथावासु श्रेणिसु। 1000 वाधि पायून पडिक शत एते च कहापणा अपडिदातवा वधि भोजा'। गोवर्धन (नासिक) की श्रेणी के पास एक सहस्र कार्षापण जमा किया गया था जिसका सूद बारह आने प्रतिशत था। उस मूलधन (ऐते च कहाषण) को कोई व्यय नहीं कर सकता था। केवल सूद को ही व्यय करना होता था।

ऐसी परिस्थिति में कहापण को चाँदी का सिक्का समझना उचित होगा। नहपान तथा अन्य क्षत्रपों ने चाँदी का ही प्रयोग किया था। उस लेख में चाँदी के सत्तर हजार कार्षापण दो हजार सुवर्ण मूल्य के बराबर कहे गए हैं, अर्थात् 35 चाँदी के कार्षापण एक सुवर्ण के मूल्य में बराबर हुए।

'कार्षापण सहस्राणि सतरि 700,000 पंच शक सुवर्ण कृता दिन सहस्र मूल्यं'। नासिक लेख में उल्लिखित सुवर्ण कुषाण सिक्कों का संकेत करते हैं जो क्षत्रपों के स्वामी थे। सातवाहन युग में सिक्के का प्राचीन नाम – कार्षापण ही अपनाया गया। सोने के सिक्कों का प्रचलन नहीं था। दैनिक जीवन के सस्ते मूल्य के कारण सोने की आव''यक्ता नहीं रही।

10.3.1 भाषा एवं लिपि

मौर्यकाल में दक्षिण भारत में ब्राह्मी लिपि का प्रचार था तथा अशोक के समस्त लेख ब्राह्मी लिपि तथा प्राकृत भाषा में लिखे गए थे। उसके पश्चात् सातवाहनवंश ने दक्षिण पर अपना अधिकार किया। नासिक लेख में गौतमीपुत्र को ब्राहाण कहा गया है। नानाघाट लेख में वैदिक यज्ञों का विवरण है। कहने का तात्पर्य यह है कि सातवाहन राजाओं ने वैदिक परम्परा द्वारा अशोक के सिद्धान्तों के प्रतिकूल कार्य किया, क्योंकि अशोक बौद्ध संस्कृति का पालक था तथापि सातवाहनों ने प्राकृत भाषा को ही अपनाया। उत्तर भारत में महायान के उदय होने के कारण संस्कृत का प्रचार आरम्भ हो गया था। यहाँ तक कि विदेशी शक क्षत्रप रुद्रदामन ने गिरनार पर्वत पर संस्कृत (काव्यमय भाषा) में ही अभिलेख खुदवाया। सातवाहन शासकों के लिए प्राकृत का प्रयोग एक आश्चर्यजनक घटना थी। इसी वंश के राजा हाल ने प्राकृत में 'गाथासप्तशती' नामक ग्रन्थ की भी रचना की थी। सातवाहन लेखों में संस्कृत के स्थान पर प्राकृत के शब्द प्रयुक्त मिलते हैं–

संस्कृत	**प्राकृत**
राज्ञः	रञो या राञो
स्वामी	सामि
पुत्रस्य	पुतस
श्री	सिरी
सातकर्णिः	सातकर्णिस

जहाँ तक लिपि का सम्बन्ध है, अशोक की ब्राह्मी लिपि में पर्याप्त सुधार तथा परिवर्तन एवं परिवर्द्धन लाया गया था। सातवाहनकालीन लिपि में कोण तथा सिर पर लकीर का आरम्भ दिखाई पड़ता है। ग, च, र तथा व में सिरे पर छोटी लकीर स्पष्ट है। प, ल, ह में कोण का आरम्भ हो गया है। मुद्रा–लेखों में राजा के व्यक्तिगत नाम के साथ माता का नाम जुड़ा मिलता है। जैसे– गौतमी –गौतम गोत्र की रानी। वाशिष्ठी –वशिष्ठ गोत्र। माठरी –माठर गोत्र।

10.3.2 द्रविड़ भाषा

सातवाहनवंश का राज्य दक्षिण भारत में विस्तृत था। अतः जनसाधारण की प्राकृत भाषा के अतिरिक्त प्रांतीय द्रविडभाषा का प्रयोग इनके सिक्कों पर मिलता है।

द्वितीय सदी के सातवाहन मुद्रा–लेख पर प्राकृत तथा तमिल के मिश्रित शब्दों का प्रयोग किया गया है।

वाशिष्ठीपुत्र सातकर्णि के मुद्रा–लेख में अग्रभाग पर प्राकृत भाषा में 'रत्रो वाशिठी पुतस सिरि सातकनिस' अंकित है, परन्तु पृष्ठभाग पर द्रविड भाषा का लेख है– अरहणस (=राजा) वाहठि (=वाशिष्ठी) माकनस (=पुत्र) तिरू (=सिरि=श्री) हातकणिस (=सातकणिस) यह मुद्रा–लेख तमिल में है। आश्चर्य यह कि मुद्रा–लेख के अतिरिक्त द्रविड भाषा का प्रयोग अन्यत्र इतना पहले नहीं मिल सका है। (ज० वि० रि० सो० भा० 47, पृ० 19)

10.3.3 धातु एवं तौल

सातवाहन शासकों ने अधिकतर सीसा, ताँबा और पोटीन (ताँबा. टिन) का ही प्रयोग मुद्रा निर्माण में किया था, जो उनके लिए सुलभ था। यद्यपि लेखों में कार्षापण के नाम उल्लिखित हैं, जिन्हें चाँदी के सिक्के मानते हैं, परन्तु सातवाहन नरेशों ने चाँदी का सीमित प्रयोग किया। इसका एक कारण यह था कि सातवाहन राजाओं की कोई मुद्रा–नीति नहीं थी। दूसरा कारण यह भी था कि जिस पश्चिमी बन्दरगाह से चाँदी का आयात होता था, उस पर क्षत्रप अधिकार था। जिस समय पश्चिमी भूभाग तक सातवाहन राज्य विस्तृत हो गया, उस समय चाँदी का आयात कर सिक्के तैयार किए गए और विशाल क्षेत्र पर उन्होंने स्थानीय शैली अपनाई। यही कारण है कि अमुक शैली के सिक्के प्रत्येक राजा के शासनकाल में निर्मित हुए। आंध्र देश शैली को सभी युगों में कार्यान्वित किया गया। चाँदी के सिक्के 32 रत्ती (अर्द्धद्रम) या 35 रत्ती तौल में थे। सोने के कुषाण सिक्के 117 या 119 ग्रेन के बराबर थे। अतएव उपर्युक्त मूल्य के आधार पर चाँदी का 35X35 तौल 120 ग्रेन (सुवर्ण) के बराबर होता है। अनुपात 10:1 हुआ। इन सिक्कों में सम्मिश्रण को ध्यान में रखकर अनुपात 9:1 के बराबर होगा। (चाँदी में 20 प्रतिशत मिश्रण था।)

आंध्र शासकों को सीसा अधिक प्रिय था। इसी कारण से अधिकांश स्थानों से सीसे के सिक्के मिले हैं। सीसा के सिक्के ठप्पा–प्रणाली से तैयार किए जाते थे, किन्तु पोटीन का प्रयोग सांचे के द्वारा सिक्कों के निर्माण में होता था। सातवाहन सिक्कों में सुन्दरता का अभाव है तथा भद्दापन है। सातवाहन इतिहास की जानकारी में सिक्कों से अधिक सहायता मिलती है। अधिकतर उत्तरी भारत की प्रणाली को अपनाया गया था, इसलिए उज्जैनी चिह्न भी दिखाई देता है। सातवाहन सिक्के कलारहित होते हुए भी बहुत भारी हैं। केवल चाँदी के सिक्के 23 या 35 ग्रेन के बराबर हैं। नासिक के चाँदी सिक्के मूलतः नहपान ने प्रचलित किए थे जिसे गौतमीपुत्र सातकर्णि ने पुनः मुद्रित किया। उत्तरी कोंकण से जो चाँदी के सिक्के प्राप्त हुए हैं, उन्हें यज्ञश्री सातकर्णि ने क्षत्रपों के अनुकरण पर तैयार किया था। इस प्रकार पोटीन के सिक्के भारी तौल के तथा चाँदी के सिक्के हलके तौल के उपलब्ध हुए हैं।

10.4 सातवाहन सिक्कों की शैलियाँ

सातवाहन शासकों का यह दोष था कि उन लोगों ने अपनी नवीन मुद्रा–नीति को कार्यान्वित नहीं किया, किन्तु स्थानीय ढंग के सिक्के प्रचलित किए। जितने शासकों ने उस प्रदेश पर राज्य किया, सभी ने उस शैली को अपनाया। प्रायः आंध्र शैली में समस्त नरेशों के सिक्के उपलब्ध हुए हैं–

आंध्र शैली–आंध्र प्रदेश के समस्त सिक्के सीसा से तैयार किए जाते थे। इस शैली में अग्रभाग पर चैत्य की आकृति दिखाई देती है जिसमें कई चाप बने हैं और सिरे पर दूज का चाँद का चित्र है। अन्य प्रकार में इस ओर घोड़ा या हाथी की आकृति बनाई जाती थी। इस ओर मुद्रा–लेख (माता के नाम सहित शासक का नाम) अंकित रहते हैं। पृष्ठभाग पर सदा उज्जैनी चिह्न तैयार किया जाता था जिसमें केन्द्र बिन्दु सहित चार वृत्त लकीर से आमने–सामने जुड़े हैं। उज्जैनी चिह्न मालवा के साथ सम्बद्ध रहा, जिस भाग पर सातकर्णि ने शासन किया था। उसी समय से सातवाहन सिक्कों पर यह चिह्न अंकित किया जाने लगा। ऐसे सिक्के वाशिष्ठीपुत्र पुलमावि, सातकर्णि तथा यज्ञश्री ने तैयार किए थे।

मध्य प्रदेश–चाँदा जिले की शैली– इस प्रदेश के सिक्के पोटीन (ताँबा, टिन) से तैयार किए गए, जिसके कारण इनकी तौल 300 ग्रेन तक मिलती है।

अग्रभाग–सूंड़ उठाए हाथी। मुद्रा–लेख–पुलमाविस या यज्ञ सात।

पृष्ठभाग–उज्जैनी चिह्न।

मध्य प्रदेश से चाँदा जिले के दूसरे प्रकार के सिक्के मिलते हैं। दोनों पर हाथी हैं, इस स्थान के पुलमावि सिक्कों पर हाथी की आकृति सर्वप्रथम अंकित की गई है।

दक्षिण भारत–अनन्तपुर शैली–सीसा धातु के सभी सिक्के। अग्रभाग–घोड़े की भद्दी आकृति। मुद्रा–लेख

अधूरा। पृष्ठभाग–वृक्ष के साथ चैत्य बना है।

चोलमण्डल से प्राप्त सीसा के सिक्के –इनके अग्रभाग पर मस्तूल के साथ जहाज का चित्र है। वाशिष्ठीपुत्र पुलमावि के समय इस शैली के सिक्के तैयार हुए थे जिससे ज्ञात होता है कि पुलमावि के शासनकाल में चोलमण्डल पर सातवाहन का अधिकार हो गया था। दक्षिण–पूर्व एशिया से व्यापार भी चल रहा था। सिक्कों पर पोत का चिह्न इसी का द्योतक है। दक्षिण भारत में रोमन सिक्कों की प्राप्ति से भारत तथा रोम के बीच समुद्री व्यापार की बात प्रमाणित होती है।

मैसूर चितलदुर्ग शैली–मैसूर प्रदेश में सीसा के सिक्के उपलब्ध हुए हैं। अग्रभाग पर नन्दि (humped bull) तथा पृष्ठभाग में उज्जैनी चिह्न दिखाई देते हैं। इस भाग में महारठीवंश के शासकों के लेख प्रकाश में आए हैं। सम्भव है, चितलदुर्ग शैली के सिक्कों को प्रांतीय राज्यपाल (गवर्नर) से तैयार करवाया हो।

सोपारा शैली– (चाँदी धातु) उत्तरी कोंकण तथा नासिक से प्राप्त सिक्के चाँदी से तैयार किए गए थे। कोंकण के सिक्के सोपारा शैली के नाम से प्रसिद्ध हैं। यद्यपि दोनों स्थानों के सिक्के बनावट तथा तौल में क्षत्रप प्रकार के हैं, परंतु कोंकण से प्राप्त सातवाहन नरेश ने स्वयं तैयार करवाए, यद्यपि क्षत्रपों का अनुकरण था। नासिक से (जोगलथम्बी) उपलब्ध सिक्कों को गौतमीपुत्र सातकर्णि ने नहपान के सिक्कों पर अपनी मुहर लगाकर प्रचलित किया था।

मालवा शैली–मालवा से प्राप्त सिक्के दो प्रकार के हैं। पहला आहत (पंचमार्क) कार्षापण तथा दूसरा साँचे से निर्मित। इस शैली के ताँबे के सिक्कों से पता चलता है कि ईसा–पूर्व पहली सदी में पश्चिमी मालवा (राजधानी उज्जैन) पर सातवाहन का अधिकार था। अतएव चार दिशाओं में खींची हुई चार रेखाओं के किनारे वृत्त बिन्दु सहित उज्जैनी चिह्न कहलाए। सातवाहन सिक्कों पर प्रायः यह चिह्न मिलता है।

कोल्हापुर शैली–दक्षिण महाराष्ट्र में कोल्हापुर नामक स्थान से दो धातुओं के सातवाहन सिक्के प्राप्त हुए हैं। पोटीन तथा सीसा। ये सिक्के अत्यन्त भद्दे हैं। अग्रभाग – (अ) सीसा में चैत्य तथा वृक्ष (ब) पोटीन में वृक्ष के सामने चैत्य।पृष्ठभाग–धनुष–बाण, ब्राह्मी लिपि में मुद्रा–लेख। इन पर तीन प्रकार के मुद्रा–लेख खुदे हैं–

1. राञो वाशिठी पुतस विलिवाय कुरस।
2. राजो माठरी पुतस शिवल कुरस।
3. राजो गोतमी पुतस विलिवाय कुरस।

इन तीनों प्रकार के सिक्कों के समीकरण विवादास्पद हैं। कुछ विद्वान् इन सिक्कों को सातवाहन सम्राटों द्वारा प्रचलित मानते हैं। दूसरा मत यह है कि राजा तथा गवर्नरों के संयुक्त नाम से सिक्कों को मुद्रित किया गया। अंतिम तीसरे मत के समर्थक कोल्हापुर शैली के सिक्कों को स्थानीय नरेश द्वारा प्रचलित मानते हैं। सातवाहन शासकों का इनके प्रचलन में कोई हाथ नहीं था।

जहाँ तक इनकी तिथि का प्रश्न है, कोल्हापुर के सिक्के सम्भवतः ईसवी सन् पहली सदी में तैयार हुए थे। सातवाहनवंश का तीसरा राजा सातकर्णि ईसा पूर्व पहली शताब्दी में शासन करता था जिसके सिक्के प्रकाश में आए हैं (ज0 न्यू0 सो0 इ0 भा07, 8018) दूसरी शताब्दी के मध्य ने गौतमीपुत्र सातकर्णि ने राज्य किया, किन्तु लेखों या सिक्कों के आधार पर उसके पूर्व आंध्रव"ाी शासकों के नाम नहीं मिलते। यानी दो सौ वर्षों का इतिहास प्रायः अनिश्चित–सा (अन्धकारमय) प्रतीत होता है। इसी दौरान कोल्हापुर सिक्कों वाले शासक ने राज्य किया, ऐसा अनुमान असंगत नहीं होगा। मत्स्य पुराण के आधार पर इस अंतराल के राजाओं के नाम ज्ञात हो जाते हैं, किन्तु उनकी प्रामाणिकता पर संदेह है तथा उस काल की पुरातत्त्व सामग्रियाँ नहीं मिलती हैं।

साधारणतया कोल्हापुर सिक्कों के मुद्रा–लेख के अध्ययन से पता चलता है कि वासिठीपुत प्रवम, शिवलकुर द्वितीय तथा गौतमीपुत्र विलिवायकर तृतीय शासक था। सिक्कों के परीक्षण से ज्ञात होता है कि माठरीपुत शिवलकुर ने वासिठी पुतस विलिवायकर के सिक्के को पुनः मुद्रित किया था। गौतमीपुत्र ने भी वासिठी पुतस विलिवायकुर एवं माठरी पुतस शिवलकुर के सिक्कों को दुवारा मुद्रित कर प्रचलित करवाया। इस प्रकार के मुद्रण से एक कालक्रम निश्चित हो जाता है।

(1) वासिठी पुतस विलिवायकुर पहले राजा था जिसके पश्चात् (2) माठरी शिवलकुर गद्दी पर आया। (3) इस

क्रम में गौतमी विलिवायकुर अंतिम नरेश था।

यदि इन राजाओं का अभिलेखों तथा सिक्कों के आधार पर अन्य सातवाहन नरेशों से मिलान किया जाए तो वासिठीपुत तथा वाशिष्ठीपुत्र पुलमावि (नासिक–लेख) एक ही प्रतीत होते हैं। अंतिम राजा गौतमीपुत विलिवायकुर की तुलना आंध्रवंश के प्रतापी नरेश गौतमीपुत सातकर्णि से की जा सकती है। इस समीकरण में कठिनाई यह है कि कोल्हापुर का गौतमीपुत विलिवायकुर वासिठीपुत का उत्तराधिकारी हो जाता है यद्यपि गौतमीपुत सातकर्णि पुलमावि का पिता था और वर्षों पहले शासन करता रहा। उपर्युक्त समीकरण के आधार पर पिता को (गौतमीपुत) वाशिष्ठी पुत्र पुलमावि के बहुत बाद में रखना होगा, जो असम्भव है। माठरीपुत शिवलकुर की तुलना कनहेरी लेख में उल्लिखित माठरीपुत स्वामी सकसेन से की जा सकती है (ज0 वाम्बे0 ब्रा0 ए0 सो0 भो012, पृ0408)। भण्डारकर का मत है कि कोल्हापुर के शिवलकुर को आंध्र प्रदेश के सकसेन से मिलान किया जा सकता है (दक्षिण का इतिहास, पृ035)। अतएव इस विवेचन का सारांश यह है कि कोल्हापुर सिक्कों के शासकों की मिलान अथवा समीकरण अनिश्चित–सा दिखाई देता है। इस सम्बन्ध में एक नया मत प्रस्तुत किया जाता है कि विलिवाय अथवा शिवल नाम वंश (कुर = कुल) का या जो दक्षिण महाराष्ट्र में शासन करते थे। उसने ये सिक्के प्रचलित किए थे।

इस समस्या को सुलझाने के लिए यदि विलिवायकुर स्थानीय गवर्नर अथवा सातवाहन सम्राटों की उपाधियाँ मान ली जाएं तो प्रतीत होगा कि राजा के नाम के साथ स्थानीय उपाधि जोड़ दी गई थी। अतः कोल्हापुर के शासकों की समता इस प्रकार की जाती है।

गौतमीपुत = गौतमीपुत्र सातकर्णि।

वासिठीपुत = वाशिष्ठीपुत्र पुलमावि ।

माठरीपुत = स्वामी सकसेन (कनहेरी लेख)।

परन्तु इस समता में ऐतिहासिक दोष दिखाई देता है। प्राचीन लेखक टालेमी ने विलिवायकर नामक राजा की राजधानी हिपोतुरा का उल्लेख किया है। उसी प्रसंग में पुलमावि का भी नाम उल्लिखित है। अतः इस आधार पर कोल्हापुर सिक्कों का वासिठीपुत विलिवायकुर सातवाहन सम्राट् पुलमावि माना जा सकता है। इस सम्बन्ध में अंतिम सिद्धान्त या मत निश्चित करना कठिन है।

10.5 सातवाहन नरेशों के सिक्के

इस वंश के आदि पुरुष सातवाहन नामक व्यक्ति तथा तीसरे शासक सातकर्णि (ईसा–पूर्व द्वितीय सदी) द्वारा प्रचलित सिक्कों का वर्णन पहले ही किया गया है। उनकी पुनरावृत्ति अनुपयुक्त होगी। ई0 स0 की दूसरी शताब्दी के शासन करने वाले सातवाहनवंशी नरेशों की मुद्राओं का विवरण किया जाएगा।

10.5.1 गौतमीपुत्र सातकर्णि की मुद्राएँ

इस शासक के पाँच प्रकार के सिक्कों का उल्लेख मिलता है। पोटीन का अधिक प्रयोग किया गया था–

(अ) कोल्हापुर शैली सीसा के सिक्के

(ब) कोल्हापुर शैली पोटीन के सिक्के (ब्रि0 म्यू0 के0 फ0 4, सं0 1–3)

(स) पोटीन का एक नवीन प्रकार का सिक्का – (ई0 कल0 भा0 5, पृ08) अग्रभाग–सूंड़ उठाए हाथी, नीचे वक्र रेखा, उज्जैनी चिह्न। मुद्रा–लेख –रानो सिर सात (गौतमीपुत्र सातकर्णि)। पृष्ठभाग–वृत्त में वृक्ष।

(द) पश्चिमी भारत से पोटीन के सिक्के उपलब्ध हुए हैं जिन पर राजा का नाम अकित है (ब्रि0 म्यू0 कै0 फ04)।

(य) जोगलथम्बी के सिक्के–सातकर्णि इन सिक्कों का निर्माता नहीं था। क्षत्रप नरेश नहपान के करीब चौदह हजार सिक्के इस ढेर में मिले हैं। अधिकतर सिक्कों को गौतमीपुत्र सातकर्णि ने नहपान को पराजित कर पुनः मुद्रित किया था–

अग्रभाग–तीन चाप का चौत्य, नीचे वक्र पक्ति, मुद्रा–लेख (प्राकृत भाषा में) 'राजो गोतमीपुतस सिरि सातकर्णिस' । पृष्ठभाग–उज्जैनी चिह्न, ऊपरी भाग में अर्दधचन्द्र।

गौतमीपुत्र द्वारा पुनः मुद्रित

अग्रभाग–इस पर नहपान का सिर (नहपान के सिक्के का अग्रभाग) उस पर चौत्य तथा मुद्रा–लेख – रञो गोत सातकणिस'।

पृष्ठभाग–इस पर उज्जैनी चिह्न से मुद्रित (नहपान का पृष्ठभाग पर) ब्राह्मी लिपि में 'राज्ञो क्षहरातस नहपानस (1 बजे से प्रारम्भ) खरोष्ठी लिपि लेख (12) 'रजो छहरतस नहपनस'।

10.5.2 वाशिष्ठीपुत्र पुलमावि

गौतमीपुत्र का उत्तराधिकारी वाशिष्ठीपुत्र पुलमावि पिता के समस्त राज्य (उत्तरी भाग) को अधिकार में नहीं रख सका। रुद्रदामन द्वारा पराजित होने पर उसने दक्षिण में राज्य का विस्तार किया। कृष्णा जिले से प्राप्त लेख तथा सिक्के से इसकी पुष्टि होती है। उसने समुद्र तट पर भी अधिकार कर लिया और पोत की आकृतियुक्त सिक्के निर्मित किए। सातवाहनवंश के इस सम्राट् ने दक्षिण भारत के विशाल क्षेत्र पर राज्य किया। इसके सिक्के नए ढंग के हैं जो सीसा, पोटीन तथा चाँदी से बनाए गए थे। वायुपुराण में सातकर्णि नामक आंध्रवंशी राजा का वर्णन आया है जो पुलमावि के पश्चात् राज्य करता था। कनहेरि लेख में वाशिष्ठीपुत्र सातकर्णि का उल्लेख आया है जो महाक्षत्रप रुद्र (= रुद्रदामन, जूनागढ़ शिला–लेख) की राजकुमारी का पति था (इ0 ए0 भा0 13, पृ0 273) शायद इसी राजा दक्षिणापथपति सातकर्णि को रुद्रदामन ने दो बार पराजित किया था। ऐसी स्थिति में कनहेरी में उल्लिखित सातकर्णि एवं जूनागढ़ का दक्षिणापथपति सातकर्णि एक ही व्यक्ति माने जा सकते हैं। कालक्रम के अनुसार रुद्रदामन 150 ई० में शासन करता रहा तथा पुलमावि 149 ई० में शासक था। अतएव वायुपुराण का सातकर्णि, कनहेरी, जूनागढ़ तथा नासिक लेख का पुलमावि एक ही व्यक्ति प्रतीत होता है।

वाशिष्ठीपुत्र सातकर्णि के चाँदी के सिक्के प्रकाश में आए हैं (ज0 न्यू0 सो0 इ0 भा011, पृ0 49) जो क्षत्रप सिक्कों के अनुकरण प्रतीत होते हैं। शायद यह सातकर्णि, पुलमावि का ज्येष्ठ भ्राता हो, क्योंकि दोनों में मातृकुल का नाम (वाशिष्ठी) एक समान है। वाशिष्ठीपुत्र पुलमावि ने निम्न प्रकार के सिक्के प्रचलित किए थे–

1. आंध्रदेश शैली–सीसा, चैत्य एवं उज्जैनी चिह्न।

2. मध्यदेश (चाँदा जिला) – पोटीन। सूंड़ उठाए हाथी तथा उज्जैनी चिह्न। (ब्रि0 म्यू0 के0 फ05, संख्या 88–93)।

3. चोलमण्डल की तटीय शैली– जहाज की आकृति तथा उज्जैनी चिह्न स्पष्ट हैं।

इस युग के अन्य सिक्के भी प्रकाश में आए हैं। मत्स्यपुराण में पुलमावि के भ्राता वाशिष्ठीपुत्र चन्द्रसती तथा शिवश्री सातकर्णि के नाम उल्लिखित हैं। उनके सिक्कों के आधार पर दोनों शासकों का काल पुलमावि के बाद माना गया है। इनके सिक्के केवल आंध्र प्रदेश शैली के मिलते हैं। इससे प्रकट होता है कि महाक्षत्रप रुद्रदामन द्वारा पराजित होकर सातवाहन नरेश आंध्र प्रदेश में सीमित हो गए। उनकी प्रतिष्ठा जाती रही, जिसे कालान्तर में यज्ञश्री सातकर्णि ने पुनः स्थापित किया। यही कारण है कि पुलमावि के दोनों भ्राताओं के सिक्के आंध्र प्रदेश (गोदावरी तथा कृष्णा घाटी) से ही उपलब्ध हुए हैं। अग्रभाग में चैत्य अथवा घोड़े की आकृति है तथा पृष्ठभाग पर उज्जैनी चिह्न दिखाई देता है (ब्रि0 म्यू0कै0 फ0 6, सं० 117–27)।

तात्पर्य यह है कि पुराणों के शिवश्री सातकर्णि तथा सिक्कों के वाशिष्ठीपुत्र शिवश्री सातकर्णि एक ही व्यक्ति थे। तत्पश्चात् पुराणों में शिवस्कन्द सातकर्णि का वर्णन आता है। अमरावती लेख में शिवमक शत नाम वाले राजा का उल्लेख है तथा तरहला ढेर के एक सिक्के पर स्कन्द सातकर्णि खुदा है। इस कारण पुराणों के शिव एवं सातकर्णि की समता इसी से की जा सकती है। (इ0 हि0 क्वा0 भा0 16, पृ0503)।

इस शासक के एक सिक्के पर द्राविड़ भाषा में भी लेख मिले हैं।

अग्रभाग– अरहणस वाहठि माकनस तिरू हात काणीस।

पृष्ठभाग–रञो वाशिठो पुतस सिरि सातकर्णिस।

अरहण (= राजा तिरु) (= सिरि या श्री) माकनस (= पुत्र) हात (= सात) शब्दों के प्रयोग से प्रकट होता है कि दक्षिण भारत की भाषा का प्रभाव द्वितीय सदी में आरम्भ हो गया था, किन्तु द्राविड़ भाषा का उद्भव इस सदी

में प्रमाणित नहीं किया जा सकता। (ले0 बि0 रि0 सो0 भा048, पृ019)।

10.5.3 गौतमीपुत्र यज्ञश्री सातकर्णि

सातवाहनवंश का अंतिम सम्राट् यज्ञश्री सातकर्णि था, जिसने अपने वंश की नष्टप्रायः प्रतिष्ठा को पुनः जीवित किया। पश्चिम भारत पर शासन करने वाले क्षत्रपों से कई पीढ़ियों से शत्रुत्ता थी। सातवाहन–क्षत्रप संघर्ष सम्बन्धी युद्ध के उत्थान तथा पतन का वर्णन पिछले पृष्ठों में किया गयाहै। यज्ञश्री सातकर्णि ने अपने पराक्रम से द्वितीय शताब्दी के अंतिम चरण में क्षत्रपों को परास्त किया। उसने राज्य सीमा का विस्तार किया। काठियावाड़, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश तथा चोलमण्डल के तटीय प्रदेश पर वह शासन करता रहा। यज्ञश्री के लेख तथा सिक्के इसे प्रमाणित करते हैं। नासिक, कार्ले, जूनार तथा कनहेरी गुहा लेख महाराष्ट्र में उसकी प्रभुता की पुष्टि करते हैं। सोपारा शैली के चाँदी के सिक्के क्षत्रपों का अनुकरण था। अतः चाँदी की मुद्रा यज्ञश्री का पश्चिमी भारत (काठियावाड़) पर अधिकार प्रमाणित करती है। पोत की आकृति वाली मुद्राएँ तटीय प्रदेश पर शासन की पुष्टि करती हैं। संक्षेप में, यह कहना युक्तिसंगत होगा कि गौतमीपुत्र यज्ञश्री सातकर्णि ने अत्यन्त विशाल साम्राज्य पर शासन किया। इसके पश्चात् सातवाहनवंश के शासक शक्तिहीन थे जिनके समय में आंध्र राज्य कई भागों में विभक्त हो गया। इस वंश के शासक नगण्य हो गए। यद्यपि पुराणों में यज्ञश्री सातकर्णि के बाद के शासकों का उल्लेख है जिन्होंने शायद सिक्के भी प्रचलित किए, किन्तु दक्षिण भारत पर यत्र–तत्र राज किया। सातवाहनवंश के गवर्नर भी स्वतंत्र होकर सिक्के मुद्रित करने लगे।

यज्ञश्री सातकर्णि ने निम्न प्रकार तथा शैली के सिक्के प्रचलित किए थे–

1. आंध्र देश शैली सीसा दोनों प्रकार।

   अग्रभाग–चैत्य, तीन चाप, छः चाप वाला चन्द्रमा सिरे पर, सिरे पर कभी स्वस्तिक अथवाघोड़े की आकृति या हाथी की आकृति।

   पृष्ठभाग–उज्जैनी चिह्न (दो वृत्त वाला) वृत्त में बिन्दु स्पष्ट दिखाई देते हैं। (ब्रि0 म्यू0 कै0 फ0 7, सं० 139–55)

2. चाँदा जिला पोटीन

   अग्रभाग–सूंड उठाए हाथी, मुद्रा–लेख –'सिरि यज्ञ सातकणिस अथवा सिरि सातकण'।

   पृष्ठभाग–उज्जैनी चिह्न में वृत्त में बिन्दु (वही सं0172–7)।

3. चाँदी के सोपारा शैली–क्षत्रप अनुकरण। मुद्रा–लेख दोनों भागों पर अर्द्धद्रम के बराबर। अग्रभाग पर क्षत्रप शासकों के ढंग की तरह राजा की अर्द्धआकृति, मुद्रा–लेख ब्राह्मी लिपि में 'रात्रो गोतमी पुतस सिरि यज्ञ सातकर्णिस'।

   पृष्ठभाग–चैत्य तथा उज्जैनी चिह्न मुद्रा–लेख–'रात्रो गौतमी पुतस हिर यज्ञ

   हातकर्णिस' (वही सं0)।

   अन्य कई चाँदी के सिक्के भी प्रकाश में आए हैं, जिनमें विभिन्न मुद्रा–लेख (द्राविड़ भाषा में) अंकित हैं– 'गोतमी पुतस क्षहिरु हातकर्णिस' पढ़ा गया है। (ज0 न्यू0 सो0 इ0 भा092, पृ0123, आ० स० इ० वार्षिक रिपोर्ट 1913 –14 पृ0208)।

4. एक नवीन चाँदी का सिक्का। शुद्ध चाँदी 30 ग्रेन (ज0 न्यू0 सो0 इ0 भा08, पृ0111)। अग्रभाग –6 चाप की पर्वतनुमा आकृति, वक्र रेखा नीचे ब्राह्मी लिपि में लेख– रानो गोतमी'। पृष्ठभाग–उज्जैनी चिह्न।

5. जहाज की आकृतियुक्त पुलमावि के सदृश सिक्का, यह प्रमाणित करता है कि चोलमण्डल के तट पर यज्ञश्री सातकर्णि का अधिकार था। सम्भवतः यह ई0 स0 170 के समीप प्रचलित किया गया सीसा धातु वाला सिक्का था।

6. सीसा के अतिरिक्त चाँदी की पोतयुक्त मुद्रा मिली है। (ज0 न्यू0 सो0 ई0 भा03, पृ0 46) अग्रभाग दो मस्तूल वाला जहाज, नीचे मत्स्य तथा शंख। मुद्रा–लेख ब्राह्मी लिपि (आंध्र लिपि) में 'राजो समय सरी यज्ञ

शतकनस'। इसमें माता का नाम नहीं है। पृष्ठभाग– उज्जैनी चिह्न

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि यज्ञश्री सातकर्णि का राज्य पल्लव सीमा के भीतर तक था। गंजाम के लेख (27वें वर्ष) आंध्र प्रदेश के कृष्णा जिले की चित्र प्रशस्ति, महाराष्ट्र के नासिक, कार्ले लेख, कनहेरी का अभिलेख तथा यज्ञश्री सातकर्णि के पोटीन, सीसा तथा चाँदी के सिक्के, इस शासक के विशाल राज्य तथा शक्ति एवं गौरवगाथा सुनाते हैं।

10.5.4 सातवाहन नरेशों तथा सामंतों के सिक्के

गौतमीपुत्र यज्ञश्री सातकर्णि के पश्चात् सातवाहनवंश की अवनति होने लगी। इस वंश में ऐसा कोई शासक नहीं रहा जो बाद में (सौराष्ट्र का भाग) महाराष्ट्र आदि को अपने अधिकार में रखता। अतः साम्राज्य का पश्चिमी भाग सातवाहनों से पृथक् हो गया। पुराणों, संस्कृत–साहित्य तथा दक्षिण भारत के अभिलेख एवं सिक्कों के अध्ययन से पता चलता है कि यज्ञश्री सातकर्णि के पश्चात् आंध्र–साम्राज्य कई भागों में विभक्त हो गया। लेखों के आधार पर सातवाहन के सामन्त शासकों के लेख तथा सिक्के भी उपलब्ध हुए हैं। इस प्रकार यज्ञश्री के बाद सातवाहन की शक्ति क्षीण हो गई एवं राज्य भी छिन्न–भिन्न हो गया।

सातवाहनवंश के कुछ उत्तराधिकारी पुराणों में वर्णित हैं।

विजय–ई0 स0203। चंडश्री–इ0 स0209। पुलोमा ई0 स0 219

पहले राजा विजय सातकर्णि के सिक्के तरहला ढेर (अकोला) से मिले हैं। दूसरे राजा चंडश्री की तुलना चंड सातकर्णि से की जा सकती है जो गोदवरी जिले के कोड़ावली लेख में उल्लिखित है। सिक्कों में इसे वासिटीपुत चंडशती कहा गया है। आंध्र देश से प्राप्त कुछ सिक्कों पर श्रीरुद्र सातकर्णि कुम्भ कर्ण या शक सातकर्णि (तरहला ढेर) आदि नाम खुदे मिले हैं। इनका नाम पुराणों में नहीं मिलता। सम्भवतः यज्ञश्री सातकर्णि के उत्तराधिकारी नरेश तीसरी सदी तक मध्य प्रदेश तथा आंध्र प्रदेश में शासन करते हों, क्योंकि तीसरी शताब्दी के बाद पल्लवों ने आंध्र देश पर अधिकार कर लिया। कुछ सिक्के यत्र–तत्र मिले हैं, जिन पर उज्जैनी चिह्न दिखाई देता है। इसलिए उनका सम्बन्ध सातवाहनवंश से जोड़ना अनुचित न होगा। संस्कृत साहित्य में भी पिछले सातवाहन नरेशों का वर्णन यदा–कदा मिलता है। मैसूर के धारवार, उत्तरी कनारा अथवा कुंतलदेश के नरेश सातकर्णि का उल्लेख राजशेखर कृत 'काव्य मीमांसा' तथा 'कामसूत्र' में मिलता है। हाल भी सातवाहन नरेश कहा गया है।

10.6 सारांश

उपर्युक्त विवरण के अनुशीलन से यह कहना सर्वथा उचित होगा कि मौर्य साम्राज्य के पश्चात् दक्षिण में सातवाहन नामक वीर योद्धा ने स्वतंत्रता की घोषणा कर राज्य स्थापित किया। कालान्तर में वह राज्य सातवाहनवंश के नाम से विख्यात हुआ। पुराणों में उल्लिखित शिमुक की तुलना सातवाहन से करना न्यायसंगत होगा। इसी के वंशज दक्षिण में शासन करते रहे। उनकी प्रतिष्ठा के कई कारण थे। अशोक की मृत्यु के पश्चात् बौद्धधर्म का हास हो गया था। अशोक के सिद्धान्तों का भी निरादर होने लगा तथा जनता सिद्धान्तों के प्रतिकूल आचरण करने लगी। मौर्य राज्य के अन्त हो जाने पर जनजीवन में नई जागृति आई। भारतीय संस्कृति तथा वैदिक परिपाटी के अनुसार जनता के कार्य सम्पन्न होने लगे। उत्तरी भारत में शुंग नरेश पुष्यमित्र ने यज्ञ सम्पन्न कर बौद्ध मत की निन्दा की। अयोध्या लेख में उसे 'द्विरमेधयाजिनः' कहा गया है तथा पतंजलि ने 'इह पुष्यमित्रः याजयामः' से पुष्यमित्र द्वारा यज्ञ सम्पादन की पुष्टि की। दक्षिण भारत में भी सातवाहन राजाओं ने यज्ञ कर बौद्धों के प्रतिकूल कार्य किया। इस वंश के लेखों में इन्हें 'एक ब्राह्मण' कहा गया है तथा क्षत्रियों के मान को नष्ट करने वाला कहा गया है–'खतिय दप मान–मदनस' (नासिक गुहा–लेख)। सम्भवतः उन्होंने ब्राह्मण होने के कारण वैदिक परम्परा तथा मार्ग का अवलम्ब किया। नानाघाट के लेख में अनेक यज्ञों के नाम उल्लिखित हैं। उससे प्रकट होता है कि सातकर्णि ने वैदिक यज्ञों का सफल सम्पादन किया था। तात्पर्य यह है कि सातवाहन नरेश मौर्यों के पथ से पृथक् होकर वैदिक मार्ग का अनुसरण कर दक्षिण भारत में शासन करने लगे। दक्षिण की राजनीति में नया मोड़ आया। जनजीवन अत्यन्त जागृत हो गया। सामाजिक कार्यों में प्रगति हुई। आर्थिक उन्नति के लिए सिक्कों का भी प्रचलन किया गया।

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

19. सातवाहन सिक्कों के विषय में वर्णन कीजिये।

....

....

20. सातवहनों के सिक्कों की तकनीकि, प्रतीक एवं वजन मानक के विषय में टिप्पणी कीजिये।

....

....

21. सातवाहन शासक गौतमीपुत्र यज्ञश्री सातकर्णि की मुद्राओं के विषय में वर्णन कीजिये।

....

....

10.8 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्त परमे''वरी लाल : भारत के पूर्वकालिक सिक्के।

राव राजवन्त एवं राव प्रदीप कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

चक्रवर्ती एस.के. : प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र का अध्ययन।

उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

ओझा, रायबहादुर गौरी''ांकर हीराचन्द्र : प्राचीन मुद्रा।

पाण्डेय, विमले''ा कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

इकाई 11—गुप्तों के सिक्के

इकाई की रूपरेखा

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्दे”य

11.2 सोने तथा चाँदी के सिक्कों की विशेषता

11.2.1 गुप्त—मुद्रा—कला पर विदेशी प्रभाव

11.2.2 धातु एवं तौल माप

11.2.3 गुप्तकालीन सिक्कों में धातु का अनुपात

11.3 गुप्त नरेशों की स्वर्ण—मुद्रा

11.3.1 प्रथम चन्द्रगुप्त

11.3.2 समुद्रगुप्त

11.3.3 रामगुप्त

11.4 चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य

11.5 प्रथम कुमारगुप्त

11.6 स्कन्दगुप्त

11.7 सारांश

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.9 संदर्भ ग्रन्थ

11.0 प्रस्तावना

भारत के इतिहास में गुप्तकाल 'स्वर्ण—युग' के नाम से प्रसिद्ध है। इस काल में भारतीयता कीवृद्धि सभी क्षेत्रों में हुई। मुद्रा के प्रचलन में भी गुप्त राजाओं ने नए विधान का समोवश किया, किन्तुआरम्भ में गुप्त—नरेशों ने पूर्व—प्रचलित सिक्कों का ही अनुकरण किया। प्रथम दो महाराजा श्रीगुप्ततथा घटोत्कच, सामंत थे। अतः उन्हें सिक्के प्रचलन का शायद अधिकार न था। किन्तु उनकेपश्चात् सभी शासकों ने सिक्के चलाए। तीसरे नरेश प्रथम चन्द्रगुप्त ने स्वतंत्र महाराजाधिराज कीउपाधि धारण की तथा गुप्त—सम्वत् का भी शुभारम्भ किया। इसी शासक ने गुप्त सिक्के शुरू किए,परन्तु पश्चिमी विद्वान् इससे सहमत नहीं हैं। प्रथम चन्द्रगुप्त का राज्य सीमित ही था, किन्तु उसकेपुत्र समुद्रगुप्त ने साम्राज्य की सीमा बढ़ाई। प्रयाग—प्रशस्ति में उसके दिग्विजय का वृत्तांत भरा पड़ाहै। उस युद्ध—गाथा के अध्ययन से अनेक विषयों पर प्रकाश पड़ता है। राजनीति के पंडित समुद्रगुप्त ने कई नीतियों से काम लिया। उत्तर—पश्चिम में पिछले कुषाण सम्राट् को पराजित किया। उनकेसम्पर्क के कारण पिछले कुषाण सिक्कों का अनुकरण भी किया। उसी कारण से गुप्त स्वर्ण—मुद्राओंमें उन पिछले कुषाण सिक्कों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। समुद्रगुप्त का दण्डधारी सिक्का उसप्रभाव का सूचक है।

कुषाण—शासन में ही स्वर्ण—मुद्राएँ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के निमित्त प्रचारित की गई थीं। उसीआर्थिक नीति का अनुसरण कर गुप्त—नरेशों ने सोने के सिक्के सर्वप्रथम प्रचलित किए। उस युगमें उत्तर—पश्चिम भारत से मध्य एशिया तक व्यापार होता था। अतएव उसके लिए स्वर्ण—मुद्रा(अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय) का प्रचलन आवश्यक ही था। फाहियान उसी मार्ग से होकर भारत आयाथा। ईसवी—पूर्व सदी में भारतीय यूनानी स्टेटर (स्वर्ण—मुद्रा) भी प्रचलित किए गए थे। अतः भारतीयव्यापार की अभिवृद्धि के लिए स्वर्ण मुद्राएँ गुप्तकाल में प्रचलित हुई। समुद्रगुप्त ने पूर्वी सीमा(समतट, डवाक, ढाका आदि) को जीतकर दक्षिण—पूर्व एशिया से व्यापार बढ़ाया था। स्वर्णद्वीप सेसोने का आयात होने लगा। यही कारण है कि गुप्त—शासकों का ध्यान स्वर्ण—मुद्रा की ओर आकृष्टहुआ। उन लोगों के सामने

नागवंशी सिक्के भी थे। समुद्रगुप्त ने नाग राजाओं को पराजित कियाथा। परन्तु उनका आर्थिक महत्त्व न था। अतः गुप्त–नरेशों ने नाग सिक्कों का अनुकरण नहींकिया। समुद्रगुप्त के पश्चात् द्वितीय चन्द्रगुप्त ने राज्य–सीमा बढ़ाई। गुजरात, काठियावाड़ तथामालवा को जीता। उस भूभाग में शक क्षत्रप नरेशों के चाँदी के सिक्के प्रचलित थे। अतएवराजनीतिक बातों पर विचार कर स्थानीय जनता को प्रसन्न करने के लिए गुप्त नरेशों ने क्षत्रप रजत–मुद्रा की नकल की। चाँदी के सिक्के पश्चिम के अतिरिक्त मध्यदेश में भी प्रचलित सिक्कोंके लिए किए गए। इस नीति के कारण सोने के अतिरिक्त चाँदी का भी प्रयोग करना पड़ा। कहनेका तात्पर्य यह है कि गुप्त मुद्रा–नीति का आरम्भ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए किया गया तथाराजनीति ने भी इस परिवर्तन को बल दिया।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको गुप्त शासकों के सिक्कों की उत्पत्ति, तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक, वजन मानक एवं निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

11.2 सोने तथा चाँदी के सिक्कों की विशेषता

गुप्तकाल में तीन धातुओं सोना, चाँदी तथा ताँबे के सिक्कों के प्रचलित रहने पर भी सोने के सिक्कों की ही प्रधानता थी। चाँदी के सिक्के तो केवल दो प्रकार के ही निकले, परन्तु प्रत्येक गुप्त–सम्राट् ने अपने राज्यकाल में कुछ नए प्रकार का सोने का सिक्का चलाया। उनकी संख्या प्रथम कुमारगुप्त के समय में 14 हो गई थी। सोने तथा चाँदी के सिक्कों में धातु के अतिरिक्त बनावट में, बहुत विविधता पाई जाती है। सोने के सिक्कों की तौल 118–146 ग्रेन तक है। इनमें पृष्ठभाग की अपेक्षा अग्रभाग में अधिक भिन्न–भिन्न आकृतियाँ दिखलाई पड़ती हैं। चाँदी के सिक्के इसके सर्वथा विपरीत मालूम पड़ते हैं। इनकी तौल 30–32ग्रेन है और दूसरी ओर ही भिन्न–भिन्न चित्र अंकित हैं। सोने के सिक्कों पर जो निरर्थक चिह्न हैं वे चाँदी पर दिखाई नहीं पड़ते। चाँदी पर उल्लिखित तिथि सोने के सिक्कों पर नहीं है। सबसे बड़ी भिन्नता कालक्रम की है। सोने के सिक्कों का जन्मदाता प्रथम चन्द्रगुप्त था जिसने ई0 स0319 के आसपास सिक्का आरम्भ किया। परन्तु ई0 स0405 के लगभग (सौराष्ट्र तथा मालवा की विजय के पश्चात्) द्वितीय चन्द्रगुप्त ने चाँदी के सिक्कों का निर्माण करवाया।

11.2.1 गुप्त–मुद्रा–कला पर विदेशी प्रभाव

यह तो निश्चित सिद्धान्त है कि गुप्तकाल में मुद्राकला का स्वतन्त्र रूप से जन्म नहीं हुआ, परन्तु इसका आरम्भ विदेशियों के अनुकरण पर ही हुआ था। यह विवेचन किया गया है कि पिछले कुषाणों के सिक्कों का गुप्त–मुद्रा पर कितना प्रभाव पड़ा। यों कहा जाए कि इन्हीं के अनुकरण पर गुप्त–मुद्रा–कला प्रारम्भ हुई। स्मिथ आदि विद्वानों ने कतिपय गुप्त–सिक्कों की बनावट से यह सिद्धान्त निकालने का प्रयास किया है कि रोम तथा ग्रीक सिक्कों ने भी गुप्त–मुद्रा–कला पर प्रभाव डाला। सिंह–निहंता सिक्के की समता स्मिथ ने रोमन हैरेक्लिज तथा नेमियन (सिंह) से दिखाई है। किन्तु भारत में सिंह–व्याघ्र का आखेट राजाओं के मनोरंजन की वस्तु है। अतः सिंह मारने वाले सिक्के पर रोम का प्रभाव मानना युक्तिसंगत नहीं है। इतना तो मानने के लिए सभी सहमत हैं कि कुषाणों के सिक्के रोम के अनुकरण पर निकले, इसलिये गुप्त–नरेशों पर उनका गौण रूप से प्रभाव सिद्ध हो जाता है। क्षत्रपों के सिक्के ग्रीक हेमीड्राम (hemi drachm) के अनुकरण पर तैयार हुए थे। गुप्त–नरेशों ने भी क्षत्रपों के अनुकरण पर ही चाँदी के सिक्के निकाले । इस प्रकार ग्रीक प्रभाव चाँदी के सिक्कों पर गौण रूप से प्रकट होता है। इन गौण प्रभावों के अतिरिक्त गुप्त मुद्रा कला में अनेक नवीनतायें दिखलाई पड़ती है। गुप्त सम्राटों ने क्रम"ाः नवीन बनावट तथा वि"ाुद्ध धातु के साथ–साथ भारतीय सुवर्ण तौल (146 ग्रेन) का प्रयोग किया था।

11.2.2 धातु एवं तौल माप

गुप्त–नरेश भारतीय संस्कृति के पोषक थे, किन्तु मुद्रा–नीति का आरम्भ पूर्ववर्ती कुषाणों की स्वर्ण मुद्रा तथा क्षत्रपों के रजत–सिक्कों के अनुकरण पर ही हुआ। भारतवर्ष में सोना अधिकतर दक्षिण भारत–हैदराबाद, मैसूर तथा मालाबार के भूभाग से, उपलब्ध होता था। यद्यपि गुप्त–साम्राज्य का विस्तार पर्याप्त रूप में था, तथापि गुप्तकाल में किन प्रदेशों से पर्याप्त सोना मिलता था, यह कहना कठिन है। सम्भवतः व्यापार की सामग्रियों के बदले भारत में बाहर से सोना और चाँदी आया करती थी। भारतीय व्यापार मध्य एशिया तथा रोम के पूर्वी साम्राज्य तक फैला था। अतएव गुप्त–युग में बाहरी सोने का आयात अधिक मात्रा में अवश्य होता रहा। यह भी सम्भव है कि ताम्रलिप्ति होकरसुवर्णद्वीप से सोना भारत में आता रहा हो। गुप्त–नरेश अपनी मुद्रा के निमित्त बाहरी आयात पर निर्भर रहते

थे। चाँदी की कोई भी खान भारत में नहीं है। अधिकतर बर्मा, ईरान तथा अफगानिस्तान से चाँदी आती है। चाँदी का अधिक आयात पश्चिमी एशिया से होता रहता था जिसका प्रयोग सिक्कों, आभूषणों एवं पात्रों के निर्माण में किया जाता था।

पेरिप्लस ने भारत के पश्चिम बन्दरगाहों पर सोने तथा चाँदी के आयात का वर्णन किया है।उत्तरी भारत का व्यापारिक सम्बन्ध पश्चिम एशिया से अधिक रहा, अतएव स्वर्ण आदि धातुएँभारतीय सामग्रियों के मूल्य के रूप में यहाँ (भारत) आती रहीं। प्राचीन ग्रंथों के आधार पर सोने कीमुद्रा, सुवर्ण नाम से विख्यात थी जो तौल में १६ मासा (प्रत्येक मासा = 5 रत्ती) यानी 80 रत्तीया 146.4 ग्रेन के बराबर थी। परन्तु कुषाण–नरेशों ने (जिनका अनुकरण गुप्त–राजाओं ने किया) रोमन सिक्के (120 ग्रेन) के बराबर तौल में अपनी स्वर्ण मुद्रा प्रचलित की। गुप्त–नरेशों ने इसीविदेशी (रोमन माप) तौल को अपनाया तथा सोने के सिक्कों का अभारतीय नाम भी (दीनार,दिनेरियस का विकृत रूप) रखा। गुप्तकालीन अभिलेखों में दीनार शब्द का प्रयोग अधिक मिलता हैजो 'डेनेरियस' शब्द का संस्कृत रूप है। भारतीय नाम सुवर्ण का प्रयोग स्कन्दगुप्त के समय कियागया। इस बात की चर्चा हो चुकी है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त ने पश्चिम भारत के शासक क्षत्रपों कोपरास्त कर रजत–सिक्के प्रचलित किए। सोने की तरह चाँदी के सिक्कों का प्रचलन क्षत्रपों कीमुद्राओं के अनुकरण पर हुआ था। भारत में चाँदी के प्राचीन सिक्के पुराण या कार्षापण के नाम सेप्रसिद्ध थे। ईसवी–पूर्व पहली सदी के नानाघाट लेख में कार्षापण का उल्लेख मिलता है। इनकी तौल 16 मासा (प्रत्येक मासा = 2 रत्ती) के बराबर होती थी। 32 रत्ती या 57 ग्रेन चाँदी के सिक्कोंका प्राचीन तौल–माप था। किन्तु पश्चिम भारत में प्रचलित क्षत्रप सिक्के भारतीय यूनानी द्रम केबराबर यानी 67 ग्रेन के न होकर अर्द्धद्रम के बराबर तैयार किए गए थे। चाँदी के क्षत्रप सिक्केप्रायः 35 ग्रेन तौल में मिलते हैं। गुप्त–सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के विजय प्राप्त करने परकाठियावाड़ तथा मालवा में प्रचलित अर्द्धद्रम (= 35 ग्रेन) के समान गुप्त–नरेशों ने चाँदी केसिक्के तैयार करवाए। इस प्रकार भारतीय यूनानी नाम द्रम (drachm) को तथा तौल–माप मेंअपनाया गया। गुप्त–नरेशों के पश्चात् द्रम नाम से रजत–सिक्के का उल्लेख भारतीय साहित्य मेंमिलता है, जिसका विकृत रूप दाम हो गया। दाम पारिभाषिक रूप में प्रयोग होने लगा। संक्षेप में,इसकी पुनरावृत्ति आवश्यक है कि गुप्त–सम्राटों ने सोने या चाँदी के सिक्कों के विदेशी नाम कोसुसंस्कृत कर प्रयोग किया तथा आरम्भ में उनकी तौल–माप को कार्यान्वित किया।

11.2.3 गुप्तकालोन सिक्कों में धातु का अनुपात

यद्यपि प्राचीन भारत में प्रचलित सिक्कों में धातु के अनुपात का सीधा वर्णन नहीं मिलता है, तथापि यत्र–तत्र उपलब्ध आर्थिक विवरणों से अनुपात का अनुमान किया जा सकता है। द्वितीय शताब्दी के नासिक लेख के आधार पर चाँदी से सोने के अनुपात का उल्लेख किया जा सकता है। 35 कार्षापण (रजत–सिक्के) मूल्य में एक सुवर्ण के बराबर उल्लिखित है। अतः यह 35×32 :: 80 यानी 14 : 1 का अनुपात है। चौथी सदी में यह अनुपात घट गया। गुप्तकाल में 16 मासे का चाँदी का सिक्का मूल्य में एक सुवर्ण के बराबर वर्णित किया गया है। उसके अनुसार निम्न अनुपात है– 16 ×32 = 80। भारतीयकरण के साथ सोने के मूल्य में कमी आती गई। कुमारगुप्त की स्वर्ण मुद्रा तौल में 125 ग्रेन थी। उसके चाँदी के सिक्के 35 ग्रेन तौल के बराबर मिलते हैं। अतः 35×32 : 125 का अनुपात मिलता है।

प्रथम कुमारगुप्त के वैग्राम ताम्रपत्र (ई0 स0447) में एक दीनार 16 रजत सिक्के (रूपक) के मूल्य के बराबर बताया गया है। उसमें वर्णन आया है कि अग्रहार के लिए दानकर्त्ता ने 6 दीनार (सोना का सिक्का) में तीन कुल्यावाप (भूमि का माप) भूमि खरीदी, जो बंजर थी। उसी ने एक चौथाई कुल्यावाप भूमि आठ रूपक (चाँदी के सिक्के) में खरीदी। यदि भूमि एक ही प्रकार की हो तो स्पष्ट है कि तीन कुल्यावाप भूमि के लिए 96 रूपक व्यय हुए अर्थात् 6 दीनार = 96 रूपक। अतएव एक दीनार मूल्य में सोलह रजत सिक्कों के बराबर था। पंचतंत्र के लेखक विष्णुगुप्त ने (500 ई0) अठ्ठाईस रूपक को एक दीनार के बराबर कहा है।

11.3 गुप्त नरेशों की स्वर्ण–मुद्रा

गुप्तवंश के प्रथम दो शासकों के किसी प्रकार के सिक्के अभी तक प्रकाश में नहीं आए हैं। तीसरे शासक प्रथम चन्द्रगुप्त ने सर्वप्रथम महाराजाधिराज की उपाधि धारण की तथा सिंहासनारूढ़ होने के अवसर पर एक काल–गणना (गुप्तकाल या गुप्त–सम्वत्) आरम्भ की जो उसकी स्वतंत्रता की द्योतक है। विष्णु पुराण में उसके राज्यविस्तार का वर्णन मिलता है जो साकेत एवं प्रयाग से मगध तक फैला था। गुप्त अभिलेखों के अध्ययन से पता

चलता है कि उसका पुत्र समुद्रगुप्त अपने को लिच्छवि–दौहित्र कहने में गर्व का अनुभव करता था। इसमें सत्यता भी थी, क्योंकि प्राचीन वृज्जि संघ में लिच्छवि गणतंत्र का प्रमुख स्थान था। ऐसे पुराने यशस्वी, पराक्रमी तथा सुविख्यात गणतंत्र की कन्या साधारण गुप्तवंश के राजकुमार से ब्याही जाए, यह एक उल्लेखनीय घटना थी। सम्भवतः चन्द्रगुप्त ने ऐसे तेजस्वी राजकुमार के उज्ज्वल भविष्य को देखकर ही लिच्छवि–प्रमुख ने अपनी कन्या का विवाह किया। उस विवाह में शर्त लगाई गई थी कि इस कन्या से उत्पन्न कुमार सिंहासन का स्वामी होगा तथा राजकन्या के साथ ही मुद्रा का प्रचलन होगा। समुद्रगुप्त की प्रयाग–प्रशस्ति में निम्नलिखित वंश–परम्परा का उल्लेख मिलता है–

'महाराज श्रीगुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्रीघटोत्कच–पौत्रस्य महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त–पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यां उत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्रीसमुद्रगुप्तः।'

11.3.1 प्रथम चन्द्रगुप्त

गुप्तवंश के सिक्कों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस परिवार में सर्वप्रथम प्रथम चन्द्रगुप्त ने सोने का सिक्का प्रचलित किया, क्योंकि उसके अग्रभाग पर राजा तथा रानी खड़े हैं। कुमारदेवी श्री (श्री कुमारदेवी) तथा चन्द्रगुप्त मुद्रा–लेख अंकित है। पृष्ठभाग पर सिंहवाहिनी अम्बिका देवी की आकृति है तथा 'लिच्छवयः' लेख खुदा है। इससे प्रयाग–प्रशस्ति में उल्लिखित लिच्छवि तथा गुप्त–नरेश के वैवाहिक सम्बन्ध की पुष्टि होती है।

11.3.2 समुद्रगुप्त

प्रथम चन्द्रगुप्त के पश्चात् समुद्रगुप्त ने छः प्रकार की स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन किया। दण्डधारी सिक्के अनुकरण की विशेषता के कारण सर्वप्रथम प्रचलित माने जाते हैं। उनकी शुद्ध धातु, राजा का नाम, वृत्त में अकित संस्कृत छंदोबद्ध लेख आदि बातें उल्लेखनीय हैं। समुद्रगुप्त ने उत्तरी तथा दक्षिणी भारत पर दिग्विजय कर अश्वमेध किया जिसमें दक्षिणा देने के लिए सोने के सिक्के मुद्रित करने पड़े। अश्वमेध–प्रकार के सिक्के बतलाते हैं कि राजा ने वैदिक ढंग से यज्ञ सम्पन्न किया। इस घटना का वर्णन पिछले गुप्तवंशी लेखों में 'चिरोत्सन्ना अश्वमेधा हर्तुः' वाक्य से मिलता है। मुद्रा के अग्रभाग पर भी निम्नलिखित मुद्रा–लेख अंकित है–

"राजाधिराज पृथिवभवित्वा दिवं जयत्य अप्रतिवार्यवीर्यः।''

क्रम में इस अश्वमेध–प्रकार को द्वितीय स्थान दिया जा सकता है। तत्पश्चात् राजा ने धनुर्धारी–प्रकार का प्रचलन किया। इनकी तौल 120 ग्रेन के बराबर है। ये सिक्के भरसार ढेर (वाराणसी के समीप) से अधिक संख्या में उपलब्ध हुए हैं। सम्भवतः साम्राज्य के पूर्वी भाग में इनका प्रचलन था।

उस भूभाग में शक परम्परा का अभाव था। अतएव टकसाल के पदाधिकारियों ने कुछ नवीनता लाने का प्रयत्न किया। दण्ड को हटाकर धनुष (प्रत्यंचा के साथ) को स्थान दिया। इस धनुर्धारी प्रकार की लोकप्रियता बढ़ती गई। गुप्तवंश के अंतिम समय तक इस प्रकार के सिक्के बनते रहे। समुद्रगुप्त के शासनकाल में धनुष तथा परशु को राजा के हाथों में दिखाकर नवीन प्रकार के सिक्कों का समावेश हुआ। अतएव धनुर्धारी तथा परशुधारी प्रकार साथ–साथ प्रचलित हुए। व्याघ्रनिहंता प्रकार राजा के आखेट–प्रेम को व्यक्त करता है। समुद्रगुप्त युद्ध–प्रेमी था। सैकड़ों युद्ध किए, ऐसा वर्णन प्रयाग– स्तम्भ–लेख तथा मुद्रा–लेख में मिलता है–

'विविध समर शतावतरण दक्षस्य, स्वभुज बल पराक्रमैकबन्धो।'(प्रयाग–प्रशस्ति)

'समर सत वितत विजयो जित, रिपु रजितो दिवं जयति।'(दण्डधारी प्रकार मुद्रा–लेख)

समुद्रगुप्त के वीणा–प्रकार के सिक्के यह प्रमाणित करते हैं कि राजा संगीत–प्रेमी था। वाद्य में कुशल व्यक्ति था। अतएव राज्यकाल के अंतिम समय में ही वीणा–प्रकार के सिक्के प्रचलित हुए। ''गान्धर्व ललितैः ब्रीडित विदशपति गुरु तुम्बुरु नारदादेः'' (प्रयाग–प्रशस्ति) वाक्य से समुद्रगुप्त द्वारा वीणा–प्रकार के सिक्के की उपादेयता एवं सार्थकता सिद्ध हो जाती है।

11.3.3 रामगुप्त

समुद्रगुप्त के बाद रामगुप्त ने शासन के अल्पकाल में एक ही प्रकार का सिक्का चलाया। 'काच' वाला सिक्का रामगुप्त की मुद्रा है जिसमें काच को राम पढ़ा गया है। हाल ही में मालवा से प्राप्त लेख में इसका नाम

उल्लिखित है। सिक्के में–

अग्रभाग पर राजा की खड़ी मूर्ति (समुद्रगुप्त के समान वस्त्र पहने) बाएँ हाथ में चक्रयुक्त ध्वजा लिए और दाहिने हाथ से अग्नि में आहुति देते हुए दिखाई गई है। वामहस्त के नीचे गुप्त– लिपि में काच अंकित है और चारों ओर उपगीति छन्द में 'काचों गामवजित्य दिवं कर्मभिरुत्तमैर्जयति' लिखा है।

पृष्ठभाग पर पुष्प लिए खड़ी देवी की मूर्ति है तथा उसके पीछे 'सर्वराजोच्छेता' लिखा है। इसमें तो किसी को सन्देह नहीं है कि काच का सिक्का किसी गुप्त–राजा ने निकाला होगा। नाम लिखने का ढंग, बनावट आदि से यह गुप्तकालीन ज्ञात होता है। चक्रयुक्त ध्वजा से प्रकट होता है कि काच नामक राजा वैष्णव था। गुप्तकाल में यही मत राजकीय धर्म था। सिक्के की बनावट तथा तौल (118 ग्रेन) से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह सिक्का चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से पहले का है। एलन ने इसे समुद्रगुप्त का सिक्का माना है। इस सिद्धान्त की पुष्टि में निम्नलिखित प्रमाण दिए हैं–

(1) बनावट तथा तौल समुद्रगुप्त के समान है। (2) समुद्रगुप्त का दूसरा नाम 'काच' था। (3) समुद्रगुप्त ने अन्य सिक्कों के 'सुचरितैः' का अनुवाद इस सिक्के पर 'कर्मभिः उत्तमैः' उत्कीर्ण करवाया था। (4) दूसरी ओर उल्लिखित उपाधि 'सर्वराजोच्छेता' लेखों में केवल समुद्रगुप्तके लिए प्रयोग की गई 31 ' 2 यदि गुप्त–नरेशों के लेख तथा सिक्कों के आधार पर एलन के प्रमाणों का अध्ययन किया जाए तो इसे मानने में आपत्ति दिखाई देती है।' बनावट तथा तौल से इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि काच का सिक्का समुद्रगुप्त के समकालीन था। गुप्तकाल में कितने ही सम्राटों के अन्य नाम भी थे (जैसे चन्द्रगुप्त द्वितीय के अन्य नाम देवगुप्त और देवराज भी मिलते हैं), परन्तु किसी ने उन नामों को सिक्कों पर उत्कीर्ण नहीं करवाया। गुप्त–मुद्राओं में राजमूर्ति के बाएं हाथ के नीचे का नाम–समुद्र, चन्द्र, कुमार तथा स्कन्द आदि–राजा के व्यक्तिगत नाम थे जिसने उस सिक्के का निर्माण कराया। ऐसी अवस्था में काच को समुद्रगुप्त का द्वितीय नाम मानना युक्तिसंगत नहीं है।

इन सब विवादों के पश्चात् भी यह प्रश्न उठता है कि काच वाला सिक्का किस गुप्त–नरेश का है? डॉ0 भण्डारकर ने यह प्रमाणित किया है कि काच वाला सिक्का समुद्रगुप्त के बाद राज्य करने वाले उसके ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त ने निकाला था। गुप्त–लिपि में 'क' की पड़ी लकीर हट जाने से 'र' तथा 'च' का 'म' तनिक असावधानी से हो जाता है। कुछ सिक्कों में 'च' तो 'म' हो ही गया है। ऐसी स्थिति में यह मानना युक्तिसंगत है कि काच वाला सिक्का रामगुप्त ने तैयार किया था।''

11.4 चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य

रामगुप्त के अल्पकालीन शासन के पश्चात् द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने सिंहासन को सुशोभित किया। उसने आठ प्रकार के सिक्के निर्माण कराए। द्वितीय चन्द्रगुप्त के सिक्के तीन तौल–(क) 121 ग्रेन, (ख) 125 ग्रेन, (ग) 132 ग्रेन–के मिलते हैं। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के सिक्कों में शिल्प कौशल दिखलाई पड़ता है। एलन के कथनानुसार उनके सिक्के में मौलिकता अधिक है। इसमें राजा की सुन्दर मूर्ति, भावभंगी, साधारण सज–धज तथा रचना–कौशल देखने योग्य है। भारतीय कला के ये सर्वोत्तम उदाहरण माने जाते हैं।

सोने के सिक्के

हिन्दू रीति के अनुसार लक्ष्मी सिंहासन के बदले कमलासन पर बैठी हैं। द्वितीय चन्द्रगुप्त ने समुद्रगुप्त के दंडधारी–सिक्कों को निकालना बन्द कर दिया और घोड़े पर सवार राजमूर्ति वाला नयासिक्का चलाया।

1. धनुर्धारी–चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने इस प्रकार के सिक्के अधिक प्रचलित किए। अग्रभाग– (समुद्रगुप्त के वेष में) धनुष–बाण धारण किए खड़े हुए राजा की मूर्ति और गरुड़ध्वज दिखलाई पड़ता है। बाएं हाथ के नीचे गुप्त–लिपि में नाम और चारों ओर 'श्रीमहाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त' लिखा है। पृष्ठभाग –पद्मासन पर बैठी लक्ष्मी की मूर्ति तथा राजा की उपाधि 'श्रीविक्रमः' लिखा मिलता है।

   इस प्रकार के सिक्कों में धनुष का स्थान, बाण धारण करने का ढंग तथा राजा का नाम अंकित करने की रीति के अनुसार, अनेक भेद पाए जाते हैं। यह इतना लोकप्रिय हो गया कि गुप्तवंश के अंतिम समय तक शासकों ने इसी प्रकार की स्वर्ण मुद्रा तैयार की। भारतीय कला का यह सर्वोत्तम उदाहरण माना जाता है। द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय अनेक शैलियाँ प्रयुक्त की गई। नाम लिखने की शैली तथा प्रत्यंचा के भीतर अथवा बाहर होने से उसमें विभेद हो गया। बयाना ढेर में तो द्वितीय चन्द्रगुप्त के सात सौ से अधिक सिक्के

इस प्रकार के मिले हैं। यद्यपि उसके समय में शुद्ध धातु तथा नए तौल का प्रयोग हुआ था किन्तु बाद के राजा भी स्वर्ण तौल और हीन धातु में ही धनुर्धारी–प्रकार को काम में लाते रहे।

2. छत्रधारी सिक्के–अग्रभाग में आहुति देते खड़ी राजा की मूर्ति है। राजा का बायाँ हाथ खड्ग की मुष्टि पर टिका हुआ है। उनके पीछे बौना नौकर छत्र लिये खड़ा है। चारों ओर दो प्रकार के लेख 'महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त' अथवा 'क्षितिमवजित्य सुचरितैः दिवं जयति विक्रमादित्यः ' मिलते हैं।

   पृष्ठभाग–कमल पर खड़ी लक्ष्मी की मूर्ति है।

3. तीसरे प्रकार का सिक्का दुष्प्राप्य है। यह पर्यङ्क–प्रकार (couch type) कहा जाता है। अग्रभाग पर भारतीय वेष में (वस्त्राभूषण से सुसज्जित) राजा पर्यङ्कः पर बैठा है। दाहिने हाथ में कमल है तथा बायाँ पर्यङ्क पर स्थित है। इसमें चारों ओर तीन भिन्न लेख मिलते हैं–

   (1) 'देव श्रीमहाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तस्य'।

   (2) 'देव श्रीमहाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्तस्य विक्रमादित्यस्य ।

   पर्यङ्कः के नीचे 'रूपाकृति' लिखा है'।

   (3) 'परम भागवत महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त'।

पृष्ठभाग पर सिंहासन पर बैठी लक्ष्मी की मूर्ति है और 'श्रीविक्रमः' लिखा है। तीसरे वर्ग के सिक्के में भिन्न लेख 'विक्रमादित्य' मिलता है।

दूसरे वर्ग के सिक्के में उल्लिखित 'रूपाकृति' के विषय में अभी तक कोई निश्चित मत नहीं है। कोई–कोई 'रूपाकृति' (रूप+आकृति) से यह समझते हैं कि उस स्थान पर राजा के सच्चे अंग का चित्र दिखलाया है। कुछ विद्वान् रूप को नाटक मानकर यह अर्थ निकालते हैं कि राजा पर्यंक पर बैठा अभिनय देख रहा है। ये अनुमान कहाँ तक सच है, इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता।

4. चौथे प्रकार के सिक्के अनेक वर्ग के हैं। इनको सिंह–निहता कहा जाता है। उनमें राजा की अवस्था, सिंह की दशा तथा लेख के कारण अंतर पाया जाता है। इन सिक्कों को देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि राजा का शरीर कितना सुन्दर था तथा उसकी भुजाओं में कितना बलथा। इनके निरीक्षण से उसके आखेट की रुचि की और विद्या तथा कला के प्रेम की सूचना मिलती है।

   अग्रभाग उष्णीष तथा अन्य वस्त्राभूषण से युक्त खड़ी राजा की मूर्ति है जो धनुष–बाण से सिंह को मार रहा है। अन्य में कृपाण से मारते हुए राजा की मूर्ति दिखलाई गई है। इसमें चार तरह से लेख मिलते हैं–

   (1) नरेन्द्रचन्द्र प्रथितदिवं जयत्यजेयो भुवि सिंहविक्रमः। (2) नरेन्द्रसिंह चन्द्रगुप्तः पृथिवीं जित्वा दिवं जयति। (3) महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्तः। (4) देव श्रीमहाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्तः।

   पृष्ठभाग–लक्ष्मी (अम्बिका) सिंह पर बैठी हैं। दूसरे प्रकार के सिक्के पर सिंह, चन्द्र और अन्य तीनों पर 'श्रीसिंहविक्रमः' या 'सिंहविक्रमः' लिखा मिलता है।

5. पाँचवे प्रकार के सिक्के का समावेश द्वितीय चन्द्रगुप्त ने ही गुप्त–मुद्रा में किया। उसको 'अश्वारोही' के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार के सिक्के का अधिक प्रचार चन्द्रगुप्त के पुत्र प्रथम कुमारगुप्त ने किया।

   अग्रभाग –अश्वारोही राजा की मूर्ति है और चारों ओर 'परम भागवत महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्तः' लिखा है।

   पृष्ठभाग – आसन पर बैठी तथा कमल लिए देवी की मूर्ति है। इस तरफ 'अजित विक्रमः उत्कीर्ण है।

6. छठे प्रकार को 'चक्रविक्रम' नाम दिया गया है। ऐसा एक ही सिक्का बयाना ढेर से मिला है। यद्यपि अग्रभाग में शासक का नाम नहीं है तथापि विरुद 'विक्रम' से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त ने इसे चलाया था। इससे प्रकट होता है कि राजा परम वैष्णव था। महरौली के लौह स्तम्भ से भी उसके वैष्णव होने की बात प्रमाणित होती है। इसमें स्वयं भगवान विष्णु द्वितीय चन्द्रगुप्त को त्रैलोक्य भेंट कर रहे हैं। इसके अग्रभाग में विष्णु दो प्रभामण्डल से युक्त हैं, जो शरीर के चारों ओर फैली हैं उनका शरीर नंगा है और धोती तथा आभूषण पहने हैं। बाएँ हाथ में गदा है। दाहिना हाथ तीन गोल वस्तु राजा को भेंट कर रहे

हैं जो सम्मुख खड़ा है। राजा के शरीर पर अनेक आभूषण और एक प्रभामण्डल दिखाई देता है।

पृष्ठभाग–साड़ी पहने लक्ष्मी कमल पर खड़ी हैं। बाएँ हाथ में दण्डयुक्त कमल है। दाहिनी ओर शंख है। उसी तरफ 'चक्रविक्रम' लेख खुदा है।

द्वितीय चन्द्रगुप्त का एक ध्वजधारी तथा पर्यङ्कः पर बैठे राजा–रानी प्रकार की मुद्राएँ उपलब्ध हुई हैं। चन्द्रगुप्त की स्वर्ण मुद्राएँ सुन्दर रीति तथा कलात्मक ढंग से बनाई गई हैं। सम्भवतः टकसाल वाले नए प्रकार को काम में लाना चाहते थे और पुराने ढंग को छोड़ने में सतर्क थे। प्राचीन भारतीय मुद्राओं में द्वितीय चन्द्रगुप्त के सिक्के अत्यन्त सुन्दर नमूने प्रस्तुत करते हैं।

चाँदी के सिक्के

चाँदी के सिक्कों के वर्णन में यह बतलाया गया है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने गुप्त–मुद्रा में चाँदी के सिक्कों का सर्वप्रथम समावेश किया। यह परिस्थिति मालवा तथा सौराष्ट्र विजय करने पर उत्पन्न हुई। यह कहा जा चुका है कि ये सिक्के क्षत्रपों के अनुकरण पर चलाए गए थे। यद्यपि द्वितीय चन्द्रगुप्त ने बहुत समय तक राज्य किया, परन्तु चाँदी के सिक्के बहुतायत से नहीं मिलते। इन सिक्कों पर–

अग्रभाग–राजा की अर्द्ध–शरीर की मूर्ति है। इस तरफ ब्राह्मी अंकों में तिथि का उल्लेख मिलता है।

पृष्ठभाग–मध्य में गरुड़ की आकृति है और चारों ओर वृत्त में लेख मिलते हैं। इनमें दो भेद पाए जाते हैं। किसी पर 'परम भागवत महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त विक्रमादित्य', अथवा 'श्रीगुप्तकुलस्य महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त विक्रमार्कस्य' लिखा है।

ताँबे के सिक्के

द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपने पिता के सदृश ताँबे के सिक्के चलाए जो सुन्दर तथा कई प्रकार के मिलते हैं। लेख के अनुसार ये कई प्रकार के हैं।

अग्रभाग–राजा के अर्द्ध–शरीर का चित्र है। किसी–किसी सिक्के पर 'श्रीविक्रमः' या 'श्री/चन्द्र' अथवा केवल 'चन्द्र' लिखा मिलता है।

पृष्ठभाग गरुड़ का चित्र है। इस तरफ अनेक प्रकार के लेख मिलते हैं। 'महाराजा चन्द्रगुप्तः', 'श्रीचन्द्रगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' या केवल 'गुप्त' लिखा मिलता है।

11.5 प्रथम कुमारगुप्त

उसके पुत्र प्रथम कुमारगुप्त का शासनकाल अनेक प्रकार के सिक्कों के लिए प्रसिद्ध है। उसके राज्य में मुद्रा–कला चरमसीमा पर पहुँच गई थी। कुमारगुप्त के सोने के सिक्के तौल में 124–129 ग्रेन तक पाए जाते हैं। धनुर्धारी–सिक्का तो सभी गुप्त राजाओं ने निकाला परन्तु इस काल में यह न्यून संख्या में पाया गया है। सबसे अधिक संख्या में कुमारगुप्त ने अश्वारोही–सिक्कों का निर्माण कराया। अपने पिता के सदृश इसने बहुत ही सुन्दर मोर वाला सिक्का निकाला जिसके समान कान्ति वाला सिक्का गुप्त–मुद्रा में नहीं पाया जाता। सब मिलाकर चौदह प्रकार के सिक्के कुमारगुप्त ने निकलवाए।

1. धनुर्धारी–सिक्कों की संख्या बहुत कम है परन्तु लेख के कारण कई भेद किए गए हैं। अग्रभाग–धनुष–बाण धारण किए राजा की मूर्ति है। इस ओर अनेक प्रकार के लेख मिलते हैं।

   पृष्ठभाग–पद्मासन पर बैठी तथा हाथ में कमल लिए देवी की मूर्ति है। सब पर एक ही लेख 'श्रीमहेन्द्रः' पाया जाता है।

2. कृपाणधारी सिक्के के अग्रभाग पर भारतीय वस्त्राभूषण पहने राजा खड़ा आहुति देता दिखलाई पड़ता है। एक हाथ खड्ग की मुष्टि पर स्थित है और गरुड़ध्वज दिखाई पड़ता है। चारों ओर 'गामवजित्य सुचरितै कुमारगुप्तो दिवं जयति' लिखा है। पृष्ठभाग–पद्मासन पर बैठी लक्ष्मी की मूर्ति है और 'श्रीकुमारगुप्तः' लिखा है।

3. तीसरे प्रकार का सिक्का 'अश्वमेध–सिक्का' के नाम से जाना जाता है। कुमारगुप्त ने समुद्रगुप्त के समान

इसे अश्वमेध के स्मारक के रूप में नहीं बनवाया। उससे कुमारगुप्त के राज्य–वैभव का ज्ञान होता है। दोनों का अवलोकन करने से उनकी भिन्नता स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। कुमारगुप्त के अश्वमेध–सिक्के पर विभूषित घोड़े का चित्र है और घोड़े का मुख दाहिनी ओर है। यद्यपि वे सब बातें समुद्रगुप्त के अश्वमेध–सिक्के में नहीं पाई जाती हैं परन्तु इनकी बनावट उससे श्रेष्ठ है। तीसरी भिन्नता तौल की है। समुद्र का सिक्का 118 ग्रेन का है परन्तु कुमार के सिक्के 124 ग्रेन तौल में हैं।

अग्रभाग–विभूषित घोड़े की मूर्ति है जो यूप के सम्मुख खड़ी है। लेख स्पष्ट नहीं है।

पृष्ठभाग–वस्त्राभूषणों से सुसज्जित, चँवर धारण किए महिषी की मूर्ति है। यज्ञ का शूल भी दिखाई पड़ता है और 'श्रीअश्वमेध महेन्द्रः' लिखा है।

4. चौथे प्रकार के सिक्के बहुत संख्या में पाए जाते हैं। यह अश्वारोही–प्रकार कहा जाता है। उनमें घोड़े के स्थान, देवी की अनेक अवस्थाएँ तथा भिन्न लेखों के कारण बहुत अंतर पाया जाता है।

   अग्रभाग–घोड़े पर सवार राजा की मूर्ति है। किसी में धनुष भी दिखलाई पड़ता है। इस तरफ विभिन्न लेख मिलते हैं।

   पृष्ठभाग–एक में कमल लिए बैठी देवी की मूर्ति है। किसी में आसन पर बैठी लक्ष्मी की मूर्ति है जो मयूर को फल खिला रही है। सब पर 'अजित महेन्द्र' लिखा मिलता है।

5. पाँचवें में सिंह को मारते हुए राजा की मूर्ति अकित है। इसे सिंह–निहंता कहा जाता है। लेख के कारण इसमें बहुत अंतर हो जाता है।

   अग्रभाग–भारतीय वेष में खड़ी राजमूर्ति है जो सिंह को धनुष–बाण से मारते हुए दिखाई गई है। इस तरफ भिन्न–भिन्न लेख मिलते हैं।

   पृष्ठभाग सिंह पर बैठी लक्ष्मी (अम्बिका) की मूर्ति है। किसी पर 'श्रीमहेन्द्रसिंह' या 'सिंह– महेन्द्रः' लिखा मिलता है।

   एक दूसरे वर्ग का सिंह मारने वाला सिक्का मिला है। इस पर हाथ में अंकुश लिए राजा हाथी पर सवार है। हाथी पैरों से सिंह को कुचल रहा है। उस पर 'सिंहनिहन्ता महेन्द्र (दित्य)' लिखा है।

6. व्याघ्रनिहंता–प्रकार – अग्रभाग पर भारतीय वेष में धनुष–बाण से व्याघ्र को मारते हुए राजमूर्ति अंकित है। इस पर 'श्रीमान् व्याघ्र – बलपराक्रमः' लिखा है। पृष्ठभाग खड़ी देवी की मूर्ति है जो वाम हस्त में कमल लिए तथा दाहिने से मोर को फल खिलाती हुई दिखलाई पड़ती है। इस तरफ 'कुमारगुप्तोधिराजा' लिखा है।

7. कुमारगुप्त का सातवें प्रकार का सिक्का कार्तिकेय नाम से प्रसिद्ध है। इस पर राजा तथ कार्तिकेय का नाम कुमार होने के कारण दोनों ओर ही मूर्ति अंकित है। अग्रभाग–वस्त्राभूषण धारण किए राजा खड़े होकर मयूर को फल खिला रहा है। इस पन 'जयति गुणैर्गुणारविन्द श्रीमहेन्द्रकुमारः' लिखा है। पृष्ठभाग मयूर पर बैठे कार्तिकेय की मूर्ति है। बाएं हाथ में त्रिशूल है और दाहिने से आहुति दे रहा है। 'श्रीमहेन्द्रकुमारः' लिखा मिलता है।

8. यह सिक्का गुप्त–मुद्रा में विलक्षण है। इसमें किसी ओर भी लेख नहीं मिलता। यह हुगली (बंगाल) से प्राप्त हुआ था। कुमारगुप्त के धनुर्धारी–सिक्के के साथ प्राप्त होने के कारण एलन इसे प्रथम कुमारगुप्त का सिक्का मानते हैं। इसे 'गजारोही' नाम से जानते हैं।

   अग्रभाग –हाथी पर चढ़े राजा की मूर्ति है। उसके पीछे छत्र धारण किए नौकर दिखलाई पड़ता है।

   पृष्ठभाग–हाथ में कमल धारण किए खड़ी लक्ष्मी की मूर्ति है।

9. प्रथम कुमारगुप्त के कुछ नए प्रकार की स्वर्ण मुद्राएँ बयाना ढेर से मिली हैं जिनमें वीणा तथा गैंडा मारने वाली प्रमुख हैं। समुद्रगुप्त की तरह कुमार पर्यङ्क पर बैठा है तथा गोद में वीणा लिए बजा रहा है। लेख भी उसी प्रकार का है, केवल नाम में परिवर्तन है। 'महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त' अग्रभाग पर उत्कीर्ण है। पृष्ठभाग पर लक्ष्मी पर्यङ्क पर दाहिने हाथ में कमल लिए बैठी हैं, 'कुमार' नाम अंकित है।

10. गैंडा–प्रकार की मुद्रा उल्लेखनीय है। कला की दृष्टि से भी अत्यन्त सुन्दर है।

अग्रभाग–राजा घोड़े पर सवार होकर गैंडा को तलवार से मार रहा है। छंदमय लेख है जिसका अर्थ श्लेषात्मक है। 'भर्ताखड्.गत्राता कुमारगुप्तो जयति निशाम'। अर्थ यह है कि कुमारगुप्त गैंडा को मार रहा है अथवा वह तलवार से जनता की रक्षा करता है। इसमें खड्.ग तलवार तथा गैंडा दोनों अर्थों में प्रयुक्त है।

पृष्ठभाग में देवी मकर पर खड़ी है, पीछे एक स्त्री छत्र लिए दिखलाई गई है। उसी ओर 'श्री महेन्द्र' लिखा है। प्रथम कुमारगुप्त का एक सिक्का जो 'प्रताप' –प्रकार का कहा जाता था, उसे डॉ0 ए0 एस0 अलतेकर ने लेख के कारण 'अप्रतिध' कहा है।

अग्रभाग में दो आकृतियाँ (पुरुष तथा स्त्री) के बीच साधुवेषधारी राजा की आकृति वितर्कमुद्रा मेंय लेख इन व्यक्तियों के मध्य में लम्बवत् 'कुमारगुप्तः' पृष्ठभाग–लक्ष्मी की बैठी आकृति, कमलनाल सहित, लेख–अप्रतिधः।

चाँदी के सिक्के

यद्यपि द्वितीय चन्द्रगुप्त ने चाँदी के सिक्के चलाए परन्तु उसके पुत्र प्रथम कुमारगुप्त नेभिन्न–भिन्न ढंग तथा अनगिनत संख्या में चाँदी के सिक्के निर्माण कराए। इसने गुजरात और काठियावाड़ में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की तरह सिक्का चलाया, किन्तु मध्यदेश के लिए एक नवीन प्रकार का सिक्का प्रचलित किया। ये क्रमशः पश्चिमी तथा मध्यदेशी के नाम से जाने जाते हैं। कुमारगुप्त का पश्चिमी देश में एक दूसरी तरह का सिक्का मिला है जो विशुद्ध चाँदी का नहीं है, इसमें ताँबे पर चाँदी का पानी चढ़ाया गया है। यह बिलकुल पश्चिमी प्रकार का है, केवल पृष्ठभाग पर 'महाराजाधिराज' के बदले 'राजाधिराज' लिखा मिलता है। विद्वानों का मत है कि हूण आक्रमण के कारण राजकोष में धन की कमी से पानीदार सिक्के चलाए गए थे।

1. पश्चिमी सिक्के पर–अग्रभाग में राजा के अर्द्ध–शरीर की मूर्ति है। इस तरफ ब्राह्मी अंकों में तिथि का उल्लेख मिलता है।

पृष्ठभाग–बीच में गरुड़ की आकृति है और चारों ओर 'परमभागवत महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्तः महेन्द्रादित्य' लिखा है।

2. मध्यदेशी सिक्के पर – अग्रभाग पर राजा के अर्द्ध–शरीर का चित्र है। राजा के सम्मुख ब्राह्मी अंकों में तिथि मिलती है।

पृष्ठभाग– गरुड़ के बदले पंख फैलाए मोर का चित्र है। विभिन्न लेख 'विजितावनिरवनिपति कुमारगुप्तो दिवं जयति' लिखा है।

ताँबे के सिक्के

कुमारगुप्त के कुछ ताँबे के सिक्के भी मिलते हैं, जो काठियावाड़ में चलते थे। पानीदार चाँदी वाले सिक्कों के साथ उस स्थान से एक बड़ा ढेर मिला है।

11.6 स्कन्दगुप्त

गुप्तवंश के अंतिम सम्राट् स्कन्दगुप्त के सिक्के पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हैं। इसने दो आकार एवं तौल के सिक्के निर्माण कराए थे। प्रथम तौल 132 ग्रेन और दूसरा भारतीय सुवर्ण तौल 144 ग्रेन के लगभग है। इससे पूर्व किसी ने इस सुवर्ण तौल का प्रयोग नहीं किया था। ये सिक्के गुप्त–राज्य के पूर्वी हिस्से में मिलते हैं। स्कन्दगुप्त के दो प्रकार के सिक्के मिले हैं।

सोने के सिक्के

1. प्रथम धनुर्धारी जिसे इसके पूर्व–पुरुषों ने निकाला था। स्कन्दगुप्त ने इसे सबसे भारी 132 ग्रेन का निकाला।

अग्रभाग– धनुष–बाण धारण किए खड़ी राजमूर्ति दिखाई गई है। बाएं हाथ के नीचे स्कन्द तथा 'जयति' महितला 'सुधन्वी' लिखा है और गरुड़ध्वज दिखाई देता है।

पृष्ठभाग–पद्मासन पर बैठी तथा कमल लिए लक्ष्मी की मूर्ति है। इधर 'श्री स्कन्दगुप्तः' लिखा है। तत्पश्चात्

स्कन्दगुप्त ने इसी प्रकार के सिक्के को भारी सुवर्ण–तौल में भी निकाला। इसकेदूसरे धनुर्धारी–सिक्के की तौल 146 ग्रेन है। इसमें– अग्रभाग पर खड़ी, धनुष–बाणधारी राजमूर्ति है। बाएं तरफ गरुडध्वज है। राजा के बाएं हाथ के नीचे 'स्कन्द' तथा चारों ओर उपगीति छन्द में 'जयति दिवं श्रीविक्रमादित्यः' लिखा है। पृष्ठभाग बैठी हुई देवी की मूर्ति है और राजा की उपाधि 'क्रमादित्यः' अंकित है।

2. दूसरे प्रकार के सिक्के को 'राजा–लक्ष्मी' प्रकार कहा जाता है। यह भी अपने ढंग का एक ही है। इसमें– अग्रभाग बाईं तरफ, वस्त्राभूषण से सुसज्जित, धनुष–बाणधारी राजा की मूर्ति है। दाहिनी तरफ देवी कोई वस्तु दाहिने हाथ में लिए खड़ी है। राजा तथा देवी की मूर्तियों के मध्य में गरुड़ध्वज दिखलाई पड़ता है। इसका लेख अस्पष्ट है।

   पृष्ठभाग–कमल लिए देवी की मूर्ति बैठी दिखलाई गई है। इस तरफ 'श्री स्कन्दगुप्तः' लिखा है।

   कुछ विद्वान् इस सिक्के पर स्कन्दगुप्त तथा देवी के चित्र में देवी को जयश्री मानते हैं। जूनागढ़ लेखों में वर्णन मिलता है कि जयश्री स्कन्दगुप्त को राज्य का भार दे रही है। स्कन्दगुप्त के उसी लेख में 'लक्ष्मी स्वयं वा वरयांचकार' का उल्लेख मिलता है। इससे उत्तराधिकार के युद्ध का भी अनुमान किया गया है। सम्भवतः उसका भ्राता पुरुगुप्त ने विरोध किया हो। किन्तु लेख तथा सिक्के के आधार पर यह प्रमाणित किया जाता है कि गुणवान तथा योग्य होने के कारण स्कन्दगुप्त ही राज्य का उत्तराधिकारी समझा गया। इसके अतिरिक्त स्कन्दगुप्त का छत्रधारी–प्रकार का सिक्का भी बयाना ढेर में मिला है। इसके अग्रभाग में राजा का नाम या लेख नहीं मिलता किन्तु पृष्ठभाग पर विरुद 'क्रमादित्य' से प्रकट होता है कि स्कन्दगुप्त ने इसे जरूर तैयार करवाया था।

इसी विरुद के आधार पर वोदलिन–संग्रह का अश्वारोही–सिक्का भी स्कन्दगुप्त का माना गया है जिसे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का बताया जाता था। इस प्रकार स्कन्दगुप्त की चार प्रकार की स्वर्ण–मुद्राएँ ज्ञात हैं।

चाँदी के सिक्के

स्कन्दगुप्त ने भी, अपने पिता के सदृश, पश्चिम तथा मध्यदेश में प्रचलन के लिए चाँदी के भिन्न–भिन्न सिक्के निकाले। पश्चिम देश में स्कन्दगुप्त ने कई प्रकार के सिक्कों का निर्माण करवाया। सर्वप्रथम पूर्व–पुरुषों के अनुरूप निकाले, जिससे ज्ञात होता है कि सौराष्ट्र में कोई नियत टकसाल थी, जहाँ से द्वितीय चन्द्रगुप्त, प्रथम कुमार तथा स्कन्दगुप्त ने एक ही ढंग के सिक्के निकाले। सम्भवतः उक्त स्थान को छोड़कर दूसरे स्थानों से सिक्के प्रचलित हुए।

(1) पश्चिमदेशी – (अ) गरुड़, (ब) नन्दि, (स) वेदी प्रकार।

इन सब पर अग्रभाग में राजा के अर्द्ध–शरीर का चित्र है।

पृष्ठभाग क्रमशः गरुड़, नन्दि अथवा वेदी की आकृति दिखाई देती है। गरुड़ वाले पर 'परम– भागवत महाराजाधिराज श्रीस्कन्दगुप्त क्रमादित्यः' लिखा है। नन्दि वाले में लेख अस्पष्ट हैं। वेदी वाले पर 'परमभागवत महाराजाधिराज श्रीविक्रमादित्यः स्कन्दगुप्त' लिखा मिलता है।

(2) मध्यदेशी सिक्के भी लेख के कारण दो प्रकार के हैं।

इन पर अग्रभाग में राजा के अर्द्ध–शरीर का चित्र है और ब्राह्मी अंक में 148 कर उल्लेख मिलता है।

पृष्ठभाग– पंख फैलाए मोर की आकृति है। निम्न दो प्रकार के लेख मिलते हैं–

(अ) 'विजितावनिरवनिपति जयति दिवं स्कन्दगुप्तो याम'।

(ब) 'विजिता श्रीस्कन्दगुप्तो दिवं जयति'।

11.7 सारांश

यह तो विदित है कि स्कन्दगुप्त के पश्चात् गुप्त–साम्राज्य की अवनति होने लगी। यही अवस्था सिक्कों से भी ज्ञात होती है। स्कन्दगुप्त के बाद उसके सौतेले भाई पुरुगुप्त ने थोड़े समय तक राज्य किया। इसके समय से ही मुद्रा–कला का ह्रास होने लगा, जो आगे हीनावस्था को पहुँच गया। परन्तु पुरुगुप्त वृद्धावस्था में गद्दी पर बैठा।

इसलिए वह किसी तरह का सिक्का प्रचलित न कर सका। जिन सिक्कों पर अभी तक एलन ने पुरु पढ़ा था, वहाँ वास्तव में बुध है। इसी तरह के सिक्के अन्य स्थान पर सुरक्षित हैं जिससे स्थिति स्पष्ट हो जाती है। भितरी मुद्रा (seal) के लेख से पुरुगुप्त के वंश में दो राजा हुए, नरसिंह तथा उसका पुत्र द्वितीय कुमारगुप्त। एक अन्य लेख से यह भी पता लगा है कि पुरुगुप्त के दो पुत्र थे–नरसिंह तथा बुधगुप्त। इसलिए दोनों भाइयों का शासन साथ–ही–साथ रहा। सिक्कों के आधार पर कहा जा सकता है कि नरसिंह पूर्वी बंगाल पर तथा बुधगुप्त मध्यदेश तथा मालवा पर शासन करता था। पूर्वी बंगाल पर नरसिंह के बाद द्वितीय कुमारगुप्त तथा उसका पुत्र विष्णुगुप्त राज्य करते रहे, जिनके सिक्के कालीघाट ढेर से मिले हैं। इन लोगों ने सुवर्ण–तौल के सिक्के प्रचलन किया जो मिश्रित सोने के हैं। सभी ने धनुर्धारी–प्रकार अपनाया। गुणैधर के लेख से वैन्यगुप्त का नाम मिलता है जिसके धनुर्धारी–प्रकार –प्रकार के सिक्के भारी तौल के हैं। बुधगुप्त अधिक भूभाग पर शासन करता रहा। उसने सोने तथा चाँदी के सिक्के भी निकाले।

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

22. गुप्त वंश के सिक्कों के विषय में वर्णन कीजिये।

....

....

23. गुप्तों के सिक्कों की तकनीकि, प्रतीक एवं वजन मानक के विषय में टिप्पणी कीजिये।

....

....

24. गुप्त शासक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की मुद्राओं के विषय में वर्णन कीजिये।

....

....

11.9 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्त परमे’’वरी लाल : भारत के पूर्वकालिक सिक्के।

राव राजवन्त एवं राव प्रदीप कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

चक्रवर्ती एस.के. : प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र का अध्ययन।

उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

ओझा, रायबहादुर गौरी’’ांकर हीराचन्द्र : प्राचीन मुद्रा।

पाण्डेय, विमले’’ा कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

इकाई 12—हूणों के सिक्के

इकाई की रूपरेखा

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्दे”य

12.2 हूण

12.3 हूणों की —मुद्राएँ

12.4 तोरमाण के सिक्के

12.4.1 ससैनियन या पि”चम—भारतीय प्रकार

12.4.2 गुप्त या मध्य भारतीय प्रकार

12.4.3 किदार—कुषाण प्रकार या क”मीरी प्रकार

12.4.4 सूर्य—चक्र या पि”चम भारतीय प्रकार

12.5 मिहिरकुल

12.5.1 रजत सिक्के

12.5.2 ताम्र सिक्के

12.6 सारांश

12.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.8 संदर्भ ग्रन्थ

12.0 प्रस्तावना

सामान्य रूप से भारतवर्ष में पूर्वमध्य युग का समय गुप्त साम्राज्य के पतनके पश्चात छठीं शती ईसवी से प्रारम्भ माना जाता है। इस समय एक छत्रसाम्राज्य का सर्वथा अभाव दृष्टिगोचर होता है। अनेक छोटे—छोटे राजवंशों काअभ्युदय राजनीतिक पटल पर हो चुका था, और ये राज्य आपस में सतत—संघर्षशील थे। केवल हर्षवर्धन ने एकछत्र साम्राज्य का सपना संजोया थाकिन्तु वह भी दक्षिणी भारत की सीमा को अतिक्रमित करने में अक्षम सिद्ध हुआ।इसीलिए उसके अभिलेखों ने उसे ‘‘सकलोत्तरापथेश्वर नाथ’ विरुद् से विभूषित कर तोष प्राप्त करना श्रेयस्कर समझा। गुर्जर—प्रतिहारों का प्रभाव एक निश्चितसीमा की परिधि में सिमटकर रह गया। यह कहा जा सकता है कि यह युग हिन्दूनरेशों की अवनति का युग था। स्कन्दगुप्त के मृत्यूपरान्त ही गुप्त सत्ता कानिरन्तर ह्रास परिलक्षित होता है। इसके चिह्न सिक्कों में भी दृष्टिगत होते हैं।परवर्ती गुप्त कालीन सिक्कों में निरन्तर दुराकृति और धातु—मिश्रण के चिह्नदृष्टिगोचर होते हैं। छठीं श० ईसवी से लेकर बारहवी शती ईसवी के मध्यविशुद्ध स्वर्ण सिक्के तो अत्यन्त दुर्लभ हैं, यहां तक कि रजत और ताम्र मुद्राएँ भीकम ही प्राप्त होती हैं। इनका प्रसार भी राष्ट्रव्यापी नहीं जान पड़ता। किसीएक प्रकार की निश्चित मुद्रा प्रणाली का अभाव था। मुद्राओं की महत्वशीलताइस युग में बाधित हो गई थी।

गुप्त शासकों के समय से ही पश्चिम की ओर से एक विदेशी बर्बर जाति हूण भारत भूमि में प्रवेश करने लगी। स्कन्दगुप्त के भीतरी स्तम्भ लेख में एक पंक्ति है—**हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दौर्य्या धारा कम्पिता।** इससे स्पष्ट है कि स्कन्दगुप्त के पहले ही हूणों का प्रवेश भारत भूमि में हो चुका था क्योंकि इन्हीं के कारण कुमारगुप्त प्रथम के समय ही वंश की लक्ष्मी चंचल होने लगी थी। तभी स्कन्दगुप्त के भीतरी स्तम्भलेखमें उल्लेख है—**पितीरदिबंम्युपेते विप्लुतां—वंशलक्ष्मीं।**

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको हूण शासकों के सिक्कों की उत्पत्ति, तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक, वजन मानक एवं निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

12.2 हूण

हूण चीन की सीमा पर रहने वाली एक विदेशी खानाबदोश जाति थी। इसे येथा और हेपथैलिटीज भी कहा जाता था। ये भी शकों और यूचियों की तरह अपने वासस्थान से विस्थापित होकर दो शाखाओं में बंट चले थे। एक वोल्गा होकर रोम में चला गया तथा दूसरा आक्सस नदी से होकर पांचवीं शती में ईरान और भारत पहुंचा। भारत में गुप्त साम्राज्य की पश्चिमी सीमा की ओर बढ़ते हुए ये हिन्दूकुश पार कर गांधार में स्थित हो गुप्तों के क्षेत्र में पहुंचे। पर स्कन्दगुप्त ने इनको इधर बढ़ने से रोक दिया। किन्तु पर्शिया में शासक को मार कर वहां इन्होंने एक विशाल राज्य स्थापित किया। पुनः दूसरी बार पांचवीं शती के अन्त या छठी शती के प्रारम्भ में ये भारत की ओर बढ़े। अब इन्होंने तोरमाण के नेतृत्व में पंजाब से बढ़ते हुए पश्चिमी भारत तथा मालवा को जीत लिया। तोरमाण के बाद उसके पुत्र मिहिरकुल के नेतृत्व में और आगे बढ़कर उसने उत्तरी भारत की ओर अपना विस्तार किया। तथा अपनी राजधानी शाकल (स्यालकोट) बनाया। पर वहाँ से शीघ्र ही उसे अधीनस्थ राजकुमारों के विद्रोह के कारण भागना पड़ा। अब वह कश्मीर को अधिकृत कर अपनी मृत्यु (528 ई.) तक भारत में बना रहा। पर565 ई. में हूणों के अधिकृ त ट्रैनोक्सैनिया से इन्हें ससैनियन शासक खुसरू प्रथम ने तुर्कों के सहयोग से भगा दिया। इसी के साथ हूणों का भारत भूमि से अन्त हो गया।

भारत के अधिकृत प्रदेश पर उन्होंने अपने सिक्के चलाए थे। इनके सिक्कों की अपनी विशेषताएं हैं।

12.3 हूणों की मुद्राएँ

अपने द्वारा विजित प्रान्तों की शैली के अनुकरण पर ही हूणों ने अपनी मुद्राएँ प्रचलित की। उदाहरणार्थ अफगानिस्तान में ससानी सिक्कों का, भारत में गुप्त सिक्को का और कश्मीर में उत्तरकालीन कुषाण मुद्राओं के आदर्शों का अनुकरण किया। ससैनियन प्रभाव से प्रेरित इनके सिक्कों के पुरोभाग पर सम्राट का भद्दा ऊर्ध्व भाग तथा पृष्ठतल पर ससानी ढंग की अग्निवेदिका का अंकन मिलता है। ब्राह्मी लिपि में 'तोर' लेख अंकन प्राप्त होता है। मध्य भारत में हूणो ने रजत एवम् ताम्र मुद्राओं का प्रवर्तन गुप्त शैली के अनुकरण के आधार पर किया था। तोरमाण की रजत–मुद्राओं के अग्रभाग पर सम्राट् का मस्तक, तिथि एवम् गुप्तकालीन ब्राह्मी में ''वजित वनिरवनि पतिः श्री तोरमाण' लेखांकन प्राप्त होता है। ब्राह्मी लिपि में तोरमाण का विरुद ''साहि जबुब्ल'' अथवा ''जबुल'' का अंकन हुआ है।

इन ससानी सिक्कों की भारतीयों ने गधिया नाम से पहचान की है, और यह नाम भारतीय जैन साहित्य में उपलब्ध होता है। इस नाम के पीछे उद्देश्य क्या था, यह स्पष्ट नहीं है। इसीलिए इस नाम के अर्थ को लेकर विद्वानों ने भिन्न–भिन्न प्रकार की अटकलें प्रस्तावित की है। पी०एल० गुप्ता गधिया नाम का समीकरण 'गद्याणक' लेख के साथ करते हैं। भारतीय ससानी (गधिया) सिक्के रजत और ताम्र दोनों ही धातुओं के बने हैं। आकार–प्रकार के आधार पर इन्हें कई वर्गों में विभक्त किया जाता है। राजस्थान से ये सिक्के विपुल मात्रा में प्राप्त हुए है। कनिंघम ने इन सिक्कों को लेखहीन बताया है, और कहा है कि इन पर केवल एक अक्षर अंकित है। ये सिक्के मेवाड़ के प्रारम्भिक शासकों से संबंधित हो सकते हैं।

राजपूताने के अजमेर–मेवाड़ क्षेत्र में पिपलाज नामक स्थल से एक मुद्रा–निधि प्राप्त हुई है। इसमें सिक्कों की संख्या हजारों में बताई गई है। परन्तु इसमें कतिपय सिक्कों का ही अध्ययन संभव हो सका है। इन अध्ययन कर्ताओं में यू०सी० भट्टाचार्य और जे० एन० उनवल का नाम मुख्यतया उद्धृत किया जा सकता है। भट्टाचार्य इन्हें ससानी अंकन से अधिक भारतीय अंकन के निकट स्वीकार करते हैं। उनवल इन पर लेख की किसी भी संभावना को अस्वीकार करते हैं परन्तु अल्टेकर ने सम्राट् के मुख के सम्मुख अक्षर 'ह' के अंकन का दावा प्रस्तुत किया है। अग्निवेदिका का प्रदर्शन रेखाओं के माध्यम से हुआ है। इन सिक्कों में चाँदी की मिलावट है और इनकी तिथि छठी–सातवी शताब्दी ईस्वी के मध्य रखी जाती है।

इसी प्रकार के दूसरे सिक्के जिन्हें लेख–युक्त सिक्का कहा जाता है, का विस्तार मेवाड़ के पश्चिमी हिस्से

एवं मध्य प्रदेश में देखा जा सकता है। ग्वालियर में भी इस कोटि के कुछ सिक्के प्रकाशित किए गए है। ये रजत और ताम्र दोनो ही धातुओं के हैं। इन पर लेख 'श्रीवाम' अंकित है। इस श्रृंखला के सिक्के उत्तर प्रदेश और बिहार से भी प्राप्त हुए है। इनमें अधिकांश पर 'श्रीविप्र' लेख अंकित है। इन सिक्कों के साथ मिश्र धातु–निर्मित सिक्कों का एक अन्य प्रकार भी प्राप्त हुआ है जो बनावट में तो इन्ही सिक्कों जैसा है परन्तु प्रतीक दोनों ही तलों के भिन्न है। इनके पुरोभाग पर विष्णु का वराह अवतार, शूकर मुखधारी मानवाकृति दाँत पर बड़ी नारी रूप (पृथ्वी) को उठाए हुए ऊपर गदा और चक्र तथा पृष्ठतल पर दो पंक्तियों में नागरी लिपि में लेख 'श्रीमदा–विवराह' अंकित है। हुल्श ने इन्हें प्रतीहार नरेश भोज प्रथम (840–890 ई०) के सिक्के स्वीकार किया है क्योंकि भोज आदि वराह विरुद का धारक बताया जाता है। इस मत को मान्यता दी जाती है। इस आधार पर यह प्रस्तावित किया जा सकता है कि इन सिक्कों का अस्तित्व नौवीं शताब्दी ईसा में भी वर्तमान था।

इन सिक्कों के साथ जो 'श्रीविग्र' नामांकित सिक्के प्राप्त हुए हैं, इनके प्रचलनकर्ता के नाम को लेकर विवाद है। कुछ विद्वान् इसका समीकरण विनायक पाल नामक शासक से जोड़ते हैं जबकि कुछ इसे शासक का नाम नहीं वरन् विरुद् नाम स्वीकार करते हैं। फिर भी यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाता है कि आखिर इस विरुद् का धारक कौन था?

इन गधिया (भारतीय–ससानी) सिक्कों का एक अन्य वर्ग भी प्रचलित है,जो उक्त समीक्षित दोनों प्रकारों से सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार को सम्मिलित करने वाली एक मुद्रा–निधि पूना से प्राप्त हुई है, जिसे पी० जे० चिनमुलगुण्ड ने प्रकाशित किया है। इन सिक्कों की रूपरेखा कुछ इस प्रकार है–पुरोभाग पर शिरस्त्राण पहने मुखाकृ ति का अंकन तथा अंग्रेजी केS अक्षर सदृश रेखा का उल्टा तथा सीधा अंकन और पृष्ठ तल पर डमरूनुमा वेदिका का अंकन है। पी० जे० ने ऐसी सम्भावना व्यक्त की है कि दक्कन में गधिया सिक्के इसके पूर्व अज्ञात रहे हैं। इसका तात्पर्य यह है कि उत्तर की भाँति दक्षिण में भी ये सिक्के प्रचलित थे। परन्तु अल्टेकर की यह संभावना है कि ये सिक्के उत्तर भारत से ही किसी के साथ इस क्षेत्र विशेष में आए होंगे। क्योंकि राष्ट्रकूटों की उक्त निधि के अतिरिक्त किसी अन्य निधि की जानकारी हमें अभी तक नहीं है। पी०एल० गुप्ता ने इन सिक्कों के नागपुर, बम्बई, सतारा इत्यादि स्थानों से प्राप्त होने की सूचना प्रकाशित की है। अतएव ये सिक्के महाराष्ट्र में प्रचलित रहे हैं और ये दसवीं–ग्यारहवीं सदी तक निश्चित और निर्बाध रूप से चलते रहे तथा यह प्रमाण उपलब्ध है कि कोकण के सिलाहार नरेश छित्तराज ने इन्हीं सिक्कों के अनुकरण पर अपने सिक्के प्रचलित कराए। इस प्रकार के सिक्के थाणे से भी प्राप्त हुए हैं।

गुजरात प्रांत से भी गधैया सिक्कों की कई निधियाँ प्राप्त हुई हैं। पी0एल0 गुप्ता का कहना है कि इन सिक्कों पर भी ससानी ढंग की मुण्डानुकृति और अग्निवेदिका का अंकन प्राप्त होता है। टेलर ने इन सिक्कों को ससानी सिक्कों का भद्दानुकरण स्वीकार किया है। इस क्षेत्र में इनके प्रचलन की निरन्तरता को लगभग तेरहवीं शती ई0 तक स्वीकार किया जाता है।

तोरमाण के पुत्र और उत्तराधिकारी मिहिरकुल के भी सिक्के गुप्त शैली में बने हुए प्राप्त हुए हैं। इसके सिक्के ताम्र–निर्मित हैं। पुरोभाग पर राजा और पृष्ठतल पर यज्ञवेदी का अंकन प्राप्त होता है। ससैनियन शैली में निर्मित इसके कुछ सिक्के उक्त सिक्कों से भिन्न प्रकार के हैं। पुरोभाग पर ''श्री मिहिर'' लेख तथा पृष्ठतल नंदी–अंकन से युक्त है। ''जयतु वृषध्वज' और 'जयतु मिहिर कुल'' लेख भी संप्राप्त होता है। कुछ विचारकों का अभिमत है कि 'यज्ञेवदी' के स्थान पर नंदी का अंकन सम्भवतः उसके गांधार प्रांत में शासन का संकेतक है। मिहिर कुल के कुछ सिक्के कुषाण–सिक्कों के अनुकरण पर बनाए गए हैं। इन पर ''शाही मिहिर कुल' लेख का अंकन भी है। पृष्ठतल पर लक्ष्मी का अंकन है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मिहिरकुल के सिक्कों की तीन श्रेणियाँ हैं। प्रथम प्रकार के सिक्के गुप्तों के अश्वारोही प्रकार के सिक्कों की अनुकृति हैं। दूसरा वर्ग उत्तर कुषाण मुद्राओं से अभिप्रेरित है और तीसरा वर्ग, ससैनियन सिक्कों के आदर्शानुकरण पर आधारित है।

हूण शासक तोरमाण के कुछ सिक्के पूर्वी पंजाब और राजस्थान से प्राप्त हुए हैं। इन सिक्कों को यहाँ अभिचर्चित करना आवश्यक हो जाता है। तोरमाण के इन ताम्र सिक्कों के पुरोभाग पर ससैनियन शैली का मुण्ड और पृष्ठतल पर सूर्य–चन्द्र–तारक प्रतीक चिह्नों का अंकन प्राप्त होता है, ''जबुब्ल'' लेखांकन भी है। गुप्तों के धनुर्धर प्रकार के सिक्कों के अनुकरण के आधार पर बनाए गए तोरमाण के सिक्के भी प्राप्त होते हैं। कुषाणों के अनुकरण पर अभिनिर्मित मुद्राएँ भी प्राप्त हुई हैं जिनका प्राप्ति–स्थल कश्मीर है।

कनिंघम ने ताम्र–निर्मित कतिपय सिक्कों को प्रकाशित किया है और उनका उल्लेख कश्मीर के सिक्कों के

रूप में किया है। ये सिक्के ताम्रनिर्मित हैं तथा आकार में गोल हैं। इनके मुख भाग पर राजा को अग्निवेदिका के पास खड़ा प्रदर्शित किया गया है और ब्राह्मी लिपि में लेख 'श्री तोरमाण' अंकित है। सिक्के के पृष्ठतल पर बैठी हुई देवी का अंकन और बायीं ओर 'किदार' लेख पठनीय है। इस प्रकार के सिक्कों के कर्तृत्व संबंध को लेकर विवाद है। कतिपय विद्वान् इसे मिहिरकुल के पुत्र का सिक्का मानते हैं। परन्तु हम जानते हैं कि इतिहास में मिहिर कुल के किसी ऐसे पुत्र का उल्लेख नहीं है जिसका नाम तोरमाण था । कतिपय मुद्रा शास्त्री लेख तथा बनावट के आधार पर इन्हें स्पष्ट रूप से तोरमाण का सिक्का मानते हैं जो मिहिर कुल का पिता था। परन्तु एस0सी0 रे की अवधारणा उक्त मत के विरोध में जाती है। अपने मत के पक्ष में इन्होंनेराजतरंगिणी में संदर्भित तोरमाण का उल्लेख प्रस्तुत किया है, जो हूण नरेश तोरमाण से सर्वथा भिन्न था। राजतरंगिणी के तोरमाण का पुत्र प्रवरसेन था और हूण नरेश तोरमाण का पुत्र मिहिरकुल था। दोनों के मुद्रा प्रकार में भी भिन्नता है। प्रवरसेन की मुद्राओं पर 'किदार' लेख प्राप्त होता है। यदि मुद्रांकित तोरमाण हूण नरेश था तो आलोचित सिक्कों पर अंकित 'किदार' लेख उसके पुत्र मिहिरकुल के सिक्कों पर क्यों नहीं दिखाई देता। दूसरा तथ्य यह भी ध्यातव्य है कि मिहिरकुल के सिक्कों के पृष्ठतल पर जिस देवी का अंकन है वह आदोंक्षी देवी की भाँति है और हाथ में कार्नुकोपिया है, परन्तु तोरमाण के सिक्कों पर यह देवी लक्ष्मी सदृश है जिसके हाथ में कमलपुष्प है। तीसरा तथ्य यह भी है कि हूण नरेश तोरमाण द्वारा कश्मीर विजय का कोई साक्ष्य अभी तक प्राप्त नहीं है। अतएव उक्त प्रकार के कश्मीर में प्रचलित सिक्के हूण नरेश तोरमाण से संबंधित नहीं हो सकते। बेला लाहिड़ी और लल्लनजी गोपाल भी एस०सी० रे के मत से सहमत हैं और इन सिक्कों का सम्बन्ध हूण तोरमाणु से स्वीकार नहीं करते। ये सिक्के कश्मीर के किसी स्थानीय शासक की ओर संकेत करते हैं।

क्षेमेन्द्र के लोक–प्रकाश नामक ग्रंथ में 'तोरमाण' नामांकित सिक्कों का उल्लेख प्राप्त होता है। यद्यपि यह अनैतिहासिक प्रतीत होता है कि हूण तोरमाण का सिक्का ग्यारहवीं शती ईस्वी तक प्रचलित था, जिसकी शुरुआत छठीं शताब्दी ईस्वी में हुई थी। 500 वर्ष बाद भी किसी शासक का सिक्का प्रचलन में था, यह यथातथ्य नहीं प्रतीत होता। तो फिर 'लोकप्रकाश' में चर्चित 'तोरमाण' कश्मीर का कोई स्थानीय शासक रहा होगा। अतः तोरमाण नामांकित सिक्कों का अभिज्ञान अभी तक संभव नहीं हो सका है और मुद्राशास्त्र के इतिहास में एक जटिल पहेली है।

गुजरात, मालवा, उत्तर प्रदेश (पश्चिमी) तथा राजस्थान से ससानी अनुकृति पर बने सिक्के बहुत बाद तक भी प्रचलित रहे जिनके प्रवर्तक हूण नरेश थे। ऐसी मान्यता है कि हूण नरेशों के सिक्के ससैनियन सम्राट फिरोज के सिक्कों के अनुकरण पर बनाए गए थे। पी0 एल0 गुप्ता इन्हें ''हिन्द–यवन'' सिक्का कहने की अपेक्षा ''हिन्द–हफ्थाली'' कहना अधिक उचित मानते हैं।

12.4 तोरमाण के सिक्के

हूण शासक तोरमाण के सिक्के अधिकां''ातः रजत सिक्के थे, जो निम्न प्रकार के थे –

12.4.1 ससैनियन या पश्चिम–भारतीय प्रकार

पुरोभाग– भद्दा और खूंखार राजा का आवक्ष अंकन, ससैनियन ढंग से ताज पहने, सिक्का लेख –**शाही जबुल** किन्ही पर **शाही जनबुल**

पृष्ठभाग– ससैनियन सिक्कों की तरह का अग्निकुण्ड और दो रक्षक।

ऐतिहासिक विवेचन–

1. ये सिक्के पतले पत्तर के बने हैं।
2. इन पर राजा का मुकुट और उसकी आकृति ससैनियन ढंग पर बनाई गई है।
3. 'जबुल' या 'जनबुल' तोरमाण की पदवी के लिए प्रयोग किया गया है।

4. सैननियनों में अग्नि पूजा के कारण वहाँ के सिक्कों के पृष्ठभाग पर यज्ञ कुण्ड और उसके रक्षकों का होना स्वाभाविक है।

12.4.2 गुप्त या मध्य भारतीय प्रकार

प्रकार–1

पुरोभाग– बाईं ओर राजा का आवक्ष अंकन, सिर के सामने तिथि–52 गुप्त ब्राह्मी में।

पृष्ठभाग–पंख फैलाए मोर की आकृति, उसके चारों ओर गुप्त लिपि में छन्दोबद्ध लेख–

विजितावनिरवनि पतिः श्री तोरमाण दिवं जयति

ऐतिहासिक विवेचन–

1. इस पर सब कुछ पूर्ण भारतीय प्रभाव है।
2. तिथि के विषय में विभेद है। फ्लीट ने इसे तोरमाण के शासन वर्ष का अंकन माना है। रैप्सन ने इसके विरोध में कहा है कि ईशानवर्मन और पूर्ववर्मन मौखरी इसी संवत् में अपनी तिथि अंकित कराये हैं। यह संवत् है। ड्रेइन 448 ई. से प्रारम्भ होने वाले हूण संवत् में इस तिथि को मानते हैं जब हूणों ने पहले पहल भारत पर विजय किया था। कुछ लोग इसे शक संवत की तिथि मानते हैं। उनके अनुसार इसका पहला अंक 4(452) लिखना छूट गया है।
3. लेख और पंख फैलाए मोर का अंकन अवनति काल के गुप्त शासकों की सिक्कों पर है। उसी का अनुकरण यहाँ हुआ है।

प्रकार–2

पुरोभाग– धनुष–बाण लिए राजा का अंकन

पृष्ठभाग– चक्र, सिक्कालेख – तोर

ऐतिहासिक विवेचन–

1. यह अवनतकालीन गुप्त शासकों के सिक्कों के अनुकरण पर बना ळें
2. चक्र सम्भवतः सूर्य का प्रतीक है।

12.4.3 किदार–कुषाण प्रकार या कश्मीरी प्रकार

पुरोभाग– खड़े राजा की आकृतिय सिक्का लेख– श्री तोरमाण

पृष्ठभाग– भद्दी आकृति में कमल लिए आर्दोक्षो का अंकन सिक्कालेख– किदार

ऐतिहासिक विवेचन–

1. यह कश्मीर में बड़ी संख्या में मिला है।
2. यह पूर्ण भारतीय प्रभाव का हैं।
3. सभी प्रकारों पर गुप्त ब्राह्मी लिपि का प्रयोग हुआ है।

12.4.4 सूर्य–चक्र या पश्चिम भारतीय प्रकार

पुरोभाग– ससैनियन सिक्कों की तरह राजा का आवक्ष अंकन, पीछे ब्राह्मी अक्षर ध और आगे त्र।

पृष्ठभाग– ऊपर सूर्य–चक्र, नीचे लेख – तोर या जबूल या जबोआ

ऐतिहासिक विवेचन–

1. ये सिक्के सम्भवतः राजस्थान तथा पंजाब के लिए बने थे जिससे ये वहीं से प्राप्त हुए है।

2. ब्राह्मी अक्षर 'ध' और 'त्र' का अभिप्राय स्पष्ट नहीं है।
3. किन्हीं पर राजा का नाम 'तोर' संक्षिप्त रूप में अथवा पदवी अंकित है।
4. पश्चिम भारत के लिए प्रचलित इन पर ससैनियन प्रभाव स्वाभाविक है।

12.5 मिहिरकुल

हूण शासक मिहिरकुल ने रजत तथा ताम्र दोनों प्रकार के सिक्के चलाये, जो निम्न प्रकार के हैं –

12.5.1 रजत सिक्के

ससैनियन प्रकार–

पुरोभाग– राजा का आवक्ष अंकन, ससैनियन ढंग का मुकुट पहने, कुछ विन्दियाँ, लेख अस्पष्ट

पृष्ठभाग– भद्दी बनावट में अग्निवेदीय दो रक्षक राजा का नाम

त्रिशूल प्रकार–

पुरोभाग– राजा का आवक्ष अंकन आगे बैल की आकृति

पृष्ठभाग– त्रिशूल का अंकन ब्राह्मी में लेख – जयतु मिहिरकुल

ऐतिहासिक विवेचन–

1. मिहिरकुल तोरमाण के बाद हूण वंश का शासक था।
2. सिक्कालेख में राजा के नाम के साथ जयतु विशेषण जुड़ा है। किन्ही पर जयतवृषध्वज अंकित है। इससे स्पष्ट है कि मिहिरकुल शैव धर्म का अनुयायी था क्योंकि यहाँ नन्दी शिव के वाहन के रूप में प्रयुक्त है।
3. त्रिशूल प्रकार का सिक्का पूर्णतया भारतीय परिवेश में बना है।

12.5.2 ताम्र सिक्के

ससैनिय प्रकार–

पुरोभाग– ससानियन ढंग का आवक्ष अंकन, ब्राह्मी लेख – मिहिरकुल **पृष्ठभाग**– बाई ओर चलता कूबड़दार बैल, ऊपर छितिजाकार रेखा, ब्राह्मी लेख – जयतु

अश्वारोही प्रकार–

पुरोभाग– घोड़े पर सवार राजा, लेख पूर्ववत

पृष्ठभाग– लक्ष्मी का अंकन, लेख पूर्ववत

किदार कुषाण प्रकार–

ऊपर वर्णित्य तोरमाण के इस प्रकार की सिक्का की तरह, केवल नाम में अन्तर।

ऐतिहासिक विवेचन–

1. अश्वारोही प्रकार आकार में सबसे बड़ा है, फिर ससैनियन प्रकार और किदार कुषाण प्रकार। अतः तीनों प्रकार के सिक्के ताम्बे के इसने क्रमशः बड़े, मध्यम और लघु आकार के निर्गत किए थे।
2. कूबड़दार बैल का अंकन इसके सिक्कों की नवीनता है जो नन्दी का बोधक है।
3. लेख में जयतु वृष से इसके शैव धर्मानुयायी होने का आभास होता है।
4. कुछ ताम्र सिक्कों पर दोनों राजाओं का अंकन मिलता है। कुछ लोगों का मानना है कि ये मूलतः मिहिरकुल के थे जिन्हें तोरमाण ने पुर्नलांछित किया था। अगर ऐसा है तो यह तोरमाण कोई दूसरा शासक रहा होगा

क्योंकि एक तोरमाण, जिसकी चर्चा पहले की गई है मिहिरकुल से पूर्व शासक था। दूसरे वर्ग का मानना है कि ये मूलतः तोरमाण की सिक्के थी जिन्हें बाद के शासक मिहिरकुल ने पुनः लांछित कराया। यही बात सटीक बैठती है।

12.6 सारांश

हूण शासकों ने जिस क्षेत्र को जीता वहां के प्रचलित सिक्कों के अनुकरण पर ही अपने नाम का सिक्का निर्गत किया। यदि कुछ नया जोड़ा तो वह बहुत ही अल्प नवीनता थी। इसी से उन्होंने अफगानिस्तान, पंजाब, राजस्थान, मालवा में ससैनी प्रकार के सिक्कों, कश्मीर में किदार कुषाण प्रकार के सिक्कों तथा मध्य भारत में गुप्त शासकों के चाँदी के सिक्कों के अनुकरण पर सिक्के निर्गत किए। इनके सिक्के अधिकांश रजत के हैं और कुछ ताम्र के अनके सिक्कों पर राजा के नाम का अभाव है।इनके सिक्कों पर प्राप्त लेख गुप्त ब्राह्मी लिपि में हैं भले ही इनकी विदेशी उपाधि 'जबुल' है। इन पर एक चिन्ह बना है हेफ्थलाइट।इनकी सिक्कों के पुरोभाग पर राजा का प्रायः अर्द्धचित्र ही अंकित है। इसका कारण है कि ससानी सिक्कों पर राजा का आवक्ष अंकन ही प्राप्त होता है। कश्मीर से प्राप्त तोरमाण के सिक्कों पर खड़ा राजा अंकित है।

इन्होंने बहुत ही कम प्रकार के सिक्के निर्गत किए क्योंकि रजत सिक्के जो उस क्षेत्र में इनके पहले प्रचलित थे वे भी सीमित प्रकार के ही थे। अतः उन्हीं के अनुकरण के कारण इन्होंने भी उन्हीं प्रकारों की सिक्के निर्गत कीं। सिक्कों पर सब कुछ भारतीय वेष–भूषा, अंकन, लेख आदि का प्रयोग हुआ है। इसमें कोई विदेशीपन नहीं दीखता। अवनति काल के गुप्त कालीन सिक्कों की तरह राजा की मुखाकृति के सामने तिथि का अंकन किन्हीं पर हुआ है जिसे विक्रम संवत का माना गया है। इन पर लेख दो प्रकार के मिलते हैं कुछ पर छन्दोबद्ध और कुछ पर केवल गद्य में राजा का नाम या उसकी पदवी है। कुछ ऐसे भी सिक्के मिले हैं जिन पर कोई लेख अंकित नहीं है। सिक्का लेखों में दो ही नाम मिले हैं तोरमण अथवा तोर और श्री मिहिरकुल। पश्चिमी भारतीय सिक्कों पर अंकित 'जुबुल' तोरमाण की पदवी थी।

12.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

25. हूण वंश के सिक्कों के विषय में वर्णन कीजिये।

....

....

26. हूणों ने कितने प्रकार के सिक्के चलाये? टिप्पणी कीजिये।

....

....

27. हूण शासक तोरमाण तथा मिहिरकुल की मुद्राओं के विषय में वर्णन कीजिये।

....

....

12.8 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्त परमे''वरी लाल : भारत के पूर्वकालिक सिक्के।

राव राजवन्त एवं राव प्रदीप कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

चक्रवर्ती एस.के. : प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र अध्ययन।

उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

ओझा, रायबहादुर गौरी''ांकर हीराचन्द्र : प्राचीन मुद्रा।

पाण्डेय, विमले''ा कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

इकाई 13—मौखरी एवं वर्धन वंश के सिक्के

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्दे’’य

13.2 मौखरी वंश के सिक्के

13.2.1 सिक्कों की विशेषताएँ

13.2.2 सिक्के

13.3 वर्धन वंश के सिक्के

13.4 हर्ष की मुद्राएँ

13.5 हर्ष के स्वर्ण सिक्के

13.6 हर्ष के रजत सिक्के

13.7 सारांश

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.9 संदर्भ ग्रन्थ

13.0 प्रस्तावना

गुप्तोत्तर—काल अर्थात् गुप्त—शासकों के पतन के पश्चात् लगभग बारहवींशती में मुसलमानों के आगमन के समय के बीच के सोने के सिक्के अत्यन्त दुर्लभ हैं चाँदी के सिक्के भी कम ही हैं और ताँबे के सिक्के भी अधिक नहीं हैं। इसकाल में सिक्कों का कोई तारतम्य बँधा हुआ दिखाई नहीं पड़ता। उनका प्रसारदेशभर में रहा हो, ऐसा भी नहीं जान पड़ता। यह काल ऐसा है जब देश अनेकछोटे—छोटे राज्यों के रूप में बिखर गया था। इन सभी राज्यों ने अपने सिक्केप्रचलित किये ऐसा तो ज्ञात होता ही नहींय साथ ही जिन राज्यों ने सिक्के प्रचलितकिये, उनके सभी राजाओं के सिक्के हो, ऐसी बात भी नहीं है। लगता ऐसा है किपूर्व काल में सिक्कों की जो महत्ता थी, उनका जो वैभव था, इस काल में वह लुप्तहो गया था। इस काल के जो सिक्के हैं, उनमें से अधिकांश में मौलिकता का अभावहै। देश के विभिन्न भागों में विभिन्न धातुओं का प्रयोग देखने में आता हैय यही नहीं,किसी भी प्रदेश में किसी धातु का निश्चित और नियमित प्रयोग भी नहीं मिलता।यही नहीं, एक ही धातु के सिक्कों में धातु की मात्रा समान बनी रही हो, यह बातभी नहीं है। बनावट में विभिन्नता तो है ही। इसी प्रकार की अन्य अनेक विसंगतियाँइस काल के सिक्कों में परिलक्षित होती हैंय वे कदाचित् इस बात के प्रतीक हैं किमुद्रा—प्रणाली इस काल में ढह—सी गयी थी।

छठी—सातवीं शती में थानेश्वर के वर्धन—वंशीय और कान्यकुब्ज के मौखरि राजाओं ने, जिनके बीच वैवाहिक सम्बन्ध था, अपने सिक्के चलाये थे। येसिक्के मौखरि वंश के ईशानवर्मन (550—576 ई0), सर्व्ववर्मन (576—580 ई0) और अवन्तिवर्मन (580—600 ई0) तथा वर्धन वंश के प्रतापशील (प्रभाकरवर्धन) और शीलादित्य (हर्षवर्धन) के सिक्के हैं। वे कुमारगुप्त (प्रथम) और स्कन्दगुप्त के मयूर भाँत के चाँदी के सिक्कों की अनुकृति हैं, अन्तर केवल इतना है कि इन सब सिक्कों पर राजा का वामाभिमुख अंकन हुआ है। इन सिक्कों के अनुकरण पर परवर्ती काल में भीमसेन अथवा भीमराज नामक शासक ने किया था, वह किस वंश का था, यह ज्ञात नहीं है।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको मौखरी तथा वर्धन शासकों के सिक्कों की उत्पत्ति, तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक, वजन मानक एवं निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

13.2 मौखरी वंश के सिक्के

मौखरि–नरेशों की मुद्राएँ–गुप्तों की रजत–मुद्राओं की अनुकृति पर ही मौखरि नरेशों ने भी अपने सिक्के प्रचलित कराए। इनके पूर्ववर्ती हूण–शासक भी गुप्त–रजत मुद्रा शैली के अनुकरणकर्ता थे। ''पंखयुक्त'' मयूर का अंकन प्रायः तीनों राजवंशों में समान रूप से दृष्टिगोचर होता है। ये सिक्के मौखरि नरेश ईशानवर्मन, सर्ववर्मन तथा अवन्तिवर्मन् इत्यादि के थे। मौखरि–मुद्राओं पर अंकित तिथियों को कतिपय इतिहासविद् शक संवत् अथवा मौखरि सम्वत् अथवा गुप्त सम्वत् से समीकृत करते हैं।

फैजाबाद जिले के भितौरा नामक ग्राम से एक निधि प्राप्त हुई है जिसमें सभी रजत–मुद्राओं की बनावट तोरमाण मुद्रा शैली में है। इनके पुरोभाग पर राजा का मुख और पृष्ठतल पर पंख फैलाए मयूर का अंकन है और भिन्न–भिन्न प्रकार के सिक्कों पर शासक का अलग–अलग नाम अंकित है। परन्तु इस निधि के तीन सिक्के परम्परा के विपरीत हैं। इन सिक्कों का विवरण बर्न ने प्रकाशित किया है। सिक्कों पर शासक के नाम और विवरण कुछ इस प्रकार हैं–

शासक का नाम	अंकित अंक	मुद्रालेख
ईशान वर्मन्	9, 254, 257	(विजितावनीर) अवनिपति श्री ईशानवर्मन् देवः जयति।
शर्व वर्मन्	6, 234, 231	विजितावनिर अवनिपति श्री शर्व वर्मन् देवः जयति।
अवन्ति वर्मन	17, 250, 57, 71	विजितावनिर अवनिपति श्री अवन्ति वर्म देवः जयति।
प्रतापशील	9	
शीलादित्य	कई अंक अंकित हैं।	

उपरोक्त सारिणी में क्रमशः तीन नाम मौखरि नरेशों के हैं, अन्तिम दो नामों को लेकर विवाद हैं। कुछ मुद्राशास्त्री इसे नाम का और कुछ विरुद् का संबोधक मानते हैं। हर्षचरित में प्रतापशील विरुद्ध का वर्णन पुष्यभूति वंश के सम्राट् प्रभाकरवर्धन हेतु प्रयुक्त है। ह्वेनसांग ने शीलादित्य को हर्षवर्धन के विरुद् के रूप में प्रयोग किया है। अतः इनकी पहचान संबंधित शासकों से ही सुनिश्चित है। हार्नले महोदय का यह विचार कि ये सिक्के कश्मीर के शासक प्रवरसेन के हैं, अनैतिहासिक तथा तथ्यहीन है। पुष्यभूति वंश तथा मौखरि वंश में वैवाहिक संबंध भी था। हर्षवर्धन की बहन राजश्री का विवाह मौखरि नरेश अवन्ति वर्मा के पुत्र ग्रहवर्मन् से हुआ था। अतः एक ही निधि से दोनों परिवारों के सिक्कों का मिलना अस्वाभाविक नहीं है। इस साक्ष्य से दोनों राजवंशों का तारतम्य भी स्पष्ट होता है। ये सभी सिक्के गुप्त–रजत–मुद्राओं के अनुकारक सिक्के हैं।

इन मुद्राओं पर अंकित तिथि के पाठ को लेकर मतैक्य नहीं है। बर्न द्वारा प्रस्तावित तिथियों का पाठ कुछ और है तो स्मिथ का पाठ कुछ और। वास्तविक पृच्छा तो यह है कि इन मुद्राओं पर अंकित तिथियाँ किस संवत् को अभिव्यक्त करती है। पायरे ने अपने ग्रंथ 'Maukheries' में इन्हें गुप्त संवत् का द्योतक बताया है। गुप्त संवत् की मान्यतानुसार ईशान वर्मन् का समय सिक्के पर उपलब्ध तिथियों के अनुसार 573–576 ई0 सम्भावित है। ईशान वर्मा के हरहा (उ०प्र०) अभिलेख की तिथि 544 ईस्वी है। अतएव पायरे की अवधारणा ग्राह्य है।

प्रतापशील नामांकित सिक्कों की तिथि सुपाठ्य नहीं हो सकती है, अतः इन पर प्रयुक्त संवत् का ठीक–ठीक अनुमान संभव नहीं है।

शीलादित्य विरुदांकित सिक्कों पर अंकित समस्त तिथियाँ 1 से लेकर 33 अंक तक हैं। इन अंकों के आधार पर यह निश्चित करना सर्वथा दुरूह है कि इन पर किस संवत् का अंकन हुआ है। एक सामान्य अवधारणा प्रस्तावित की जाती है कि उक्त अंक इतना तो अवश्य सुनिश्चित करते हैं कि हर्ष कम–से–कम 33 वर्ष तक निश्चित रूप से शासनरत था।

अयोध्या से एक ऐसा सिक्का प्राप्त हुआ है, जिस पर विद्वानों ने भीमराजअथवा भीमसेन लेख पढ़ा है। इस सिक्के को कनिंघम ने प्रकाशित किया है।इसके मुखभाग पर राजा का सिर अंकित है तथा पृष्ठतल पर मुद्रा के मध्य भाग मेंनृत्य–मुद्रा में मयूर तथा उसके चतुर्दिक् लेख 'विजितावनीर वनिपतिः श्री भीमराजो दिवं जयति' अंकित है। कनिंघम ने मुद्रांकित नाम 'भीमसेन' तथाअल्टेकर ने 'भीमराज' पढ़ा है। लाहिड़ी भी 'भीमसेन' पाठ को ही यथार्थ मानतीहैं। बेला लाहिड़ी तोरमाण का ही भारतीय नाम भीमसेन स्वीकार करती हैं।किन्तु इस तथ्य की पुष्टि हेतु कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। अतःयह संशययुक्त समीकरण प्रतीत होता है। यह कहना अधिक तर्कसंगत होगा किभीमराज अथवा भीमसेन नाम का कोई ऐसा शासक था जो उत्तर प्रदेश में हीकिसी क्षेत्र विशेष में शासन कर रहा था ।

मौखरि और वर्धन–वंश के सिक्के गुप्त सिक्कों के ही अनुकारक हैं और आलोचित सिक्के का प्रकार मौखरि सिक्के के समकक्ष है, अतएव कुछ विचारक इसे मौखरि शासकों के उपरान्त रखने का आग्रह करते हैं।

13.2.1 सिक्कों की विशेषताएँ

भिटौरा ढेर में हर्ष के सिक्कों के साथ 32 चाँदी के सिक्के मौखरियों के भी मिले हैं। इनकी विशेषताएँ निम्न हैं –

12. हर्ष और मौखरी शासकों के सिक्के लगभग समान हैं क्योंकि दोनो समकालीन थे और दोनो सम्बन्धी थे। उन्होंने अवनत कालीन गुप्त सिक्कों के अनुकरण पर अपनी सिक्के बनाई थीं।
13. इनमें ईशानवर्मा, सर्ववर्मा और अवन्तिवर्मा की सिक्के मिली हैं। ये लगभग एक ही तरह के बने हैं। अन्तर और पहचान इनके लेख से होता है।
14. ईशानवर्मा की सिक्कों के पृष्ठभाग पर छंदोबद्ध सिक्कालेख मिलता है जबकि दूसरे सिक्कों पर इसके स्थान केवल राजा का नाम ही अंकित है।
15. इनकी सिक्कों पर तिथियाँ अंकित हैं। इनको सिक्काविदों ने भिन्न–भिन्न पढ़ा है। ये तिथियाँ किस संवत् में हैं इस पर भी विभेद है। अधिकांश इसे मौखरी संवत में मानते हैं।
16. केवल एक ही प्रकार के इनके सिक्के मिले हैं जो सभी रजत के हैं। स्वर्ण सिक्के इनके अभी तक प्राप्त नही हो सके हैं।

13.2.2 सिक्के

पुरोभाग– राजा का आवक्ष अंकन, दाहिनी ओर मुख

पृष्ठभाग– पंख फैलाए मोर, सिक्कालेख (भिन्न–भिन्न राजाओं के अलग–अलग) ईशान वर्मा के सिक्के पर–**विजितावनिर वनियति श्री ईशानवर्मन देवः जयति।** लेख से 'ईशान वर्मन' के स्थान सर्ववर्मा पर–**सर्ववर्मन्** तथा अवन्तिवर्मा – पर **अवन्तिवर्मन** अंकित है।

13.3 वर्धन वंश के सिक्के

आर० के० मुखर्जी ने हर्ष को उत्तरी भारत का एक छत्र अंतिम हिन्दू सम्राट कहा है। साक्ष्यों के आलोक में यह बात चरितार्थ भी हो जाती है। वर्धन वंश के नरेश प्रभाकर वर्धन के सिक्के 'प्रतापशील' के नाम से प्राप्त होते हैं। उत्तर प्रदेश में इस युग से संबंधित अत्यल्प स्वर्ण–मुद्राओं का ज्ञान संभव हो सका है। इस क्षेत्र के एक स्वर्ण सिक्के पर दम्पत्ति रूप में शिव–पार्वती का अंकन है। इसको हर्षवर्धन के साथ समीकृत किया जाता है। हर्ष की मुद्राओं पर हर्ष संवत् का प्रयोग मिलता है। फैजाबाद के भितौरा मुद्रा निधि से शिलादित्य नामक राजा के अनेक सिक्के प्राप्त हुए हैं जो कि हर्ष की सर्वविदित उपाधि थी। इन पर हर्ष संवत् से संबंधित तिथियों का भी अंकन हुआ है। हर्षचरित में भी हर्ष की मुद्राओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

गुप्तोत्तर काल के आर्थिक गठन के निदर्शक अनेक साक्ष्यों में मुद्रा–परक साक्ष्य का विशेष महत्त्व है। सम्बन्धित मुद्राओं में अद्यतन शोधों से उपलब्ध एवं प्रकाशित मुद्राओं के क्रम में हर्ष की कुछ विशेष मुद्राओं को विवेचित करना आवश्यक जान पड़ता है जिनका समीक्षण पूर्ववर्ती मुद्राशास्त्रीयों ने भी किया है, अपने ग्रंथ ''Coins of Medieval India 1894'' में जनरल कनिंघम ने एक ऐसी मुद्रा को सम्प्रकाशित किया, जिसके पुरोभाग पर एक अश्वारोही की आकृति तथा मुद्रा–लेख ''हर्षदेव'' एवं पुरोभाग पर ही बाएँ हाथ में कार्नुकोपिया लिए हुए सिंहासनासीन देवी का अंकन प्राप्त होता है। कनिंघम की यह मीमांसा है कि प्रस्तुत नरेश कश्मीर का शासक था, जिसका संबंध काबुल से भी था। इन्होंने अपने मत के पक्ष में राजतरंगिणी के एक स्थल को भी उद्धृत किया है जिसमें कल्हण कहता है कि हर्ष की मुख्य रानी बसन्तलेखा काबुल के शाही राजवंश से सम्बन्धित थी। इसके उपरान्त हार्नले महोदय का एक लेख 1903 में ''ज0 रा0 ए0 सो0'' में प्रकाशित हुआ जिन्होंने अपने विवेचन के आधार पर यह विचार प्रस्तावित किया कि आलोचित मुद्रा कन्नौज के शासक हर्ष की थी जिसे ''हर्षदेव'' नाम से भी जाता था। परन्तु सर रिचर्ड बर्न का जे0 आर0 ए0 एस0 1906 तथा डी0 देवहूति का जे0 एन0 एस आई0 1964'' के प्रकाशित लेखों में हार्नले के प्रस्तावित मत को सर्वथा अस्वीकार किया गया है।

1904 में भारतीय पुरातत्व के सर्वेक्षण गवेषण एवं समुत्खनन की सतत् प्रक्रिया में फैजाबाद के भितौरा गाँव से एक मृण्मय–घट में 522 रजत तथा 8 ताम्रमुद्राएँ प्राप्त हुईं, जिनमें 284 रजत मुद्राएँ ''श्रीशालदत्त'' (श्री शिलादित्य) एवं 9 ''श्रीप्रतापशाल' (श्री प्रतापशील) नामक शासक से सम्बन्धित हैं। इनमें 32 रजत मुद्राएँ मौखरियों से, कुछ कश्मीर के शासक ''प्रतापादित्य द्वितीय'' सेतथा एक मुद्रा हर्ष से जो (कन्नौज के हर्ष से भिन्न था) सम्बन्धित स्वीकार की गई हैं। 1906 में सर रिचर्ड बर्न द्वारा लिखित अपने एक निबन्ध में (जो ''जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी'' में प्रकाशित हुआ था) इन मुद्राओं में ''प्रतापशील'' का ''प्रभाकरवर्धन तथा ''शिलावित्य'' का ''हर्ष'' से तादात्म्य स्थापित करते हुए इन मुद्राओं को सम्बन्धित शासकों की ही मुद्राएँ स्वीकार किया। आर0 के0 मुखर्जी ने अपने ग्रंथ 'Harsha' तथा आर0 एस0 त्रिपाठी ने हिस्ट्री ऑफ कन्नौज पृष्ठ 117) में बर्न की उपर्युक्त स्थापना से अपने को सहमत किया है। हार्नले की स्थापना बर्न की स्थापना से सर्वथा पृथक् है। इनका तर्क था कि ''शीलादित्य हर्ष की शासकीय उपाधि नहीं थी। हर्षचरित तथा इसके अभिलेखों में इस विरुद का व्यवहार नहीं हुआ। राजतरंगिणी' में ''प्रतापशील'' – ''शीलादित्य'' नाम के एक अन्य शासक का उल्लेख मिलता है, जो विक्रमादित्य का पुत्र था और जिसे प्रवरसेन ने सिंहासनाच्युत किया था। इस विक्रमादित्य का अभिज्ञान मालवा के यशोधर्मा से किया गया है, जो मंदसोर प्रशस्ति' में उल्लिखित है। मुद्राओं पर अंकित 'अर्द्धचन्द्र' प्रतीक यशोधर्मा का 'कुल चिह्न' भी था। परन्तु अनेक तर्को के आलोक में हार्नले के मत को अमान्य ठहराया जा सकता है, यथा अर्द्धचन्द्र प्रतीक चिह्नांकन के आधार पर उसका तादात्म्य यशोधर्मन से स्थापित करना समादरणीय नहीं प्रतीत होता, क्योंकि यह प्रतीक तो गुप्त मुद्राओं पर भी परिलक्षित होता है, जैसे कुमारगुप्त प्रथम एवं स्कन्दगुप्त के सिक्कों पर, जो एलन के ''कैटलॉग ऑफ द क्वायंस ऑफ ब्रिटिश म्यूजियम'' में विस्तार से वर्णित है। 1964 के ''जे0 एन0 एस0 आई0'' के अपने शोधपरक निबन्ध में डी0 देवहूति ने भी हार्नले के मत का दृढ़तापूर्वक निराकरण किया है। अतः इन सिक्कों का संबंध प्रभाकरवर्धन तथा हर्ष से स्थापित करना पूर्णतया निरापद है। ये मुद्राएँ हर्ष के साम्राज्य विस्तार के निर्धारण में सहयोगी हैं।

हर्ष की एक सुवर्ण मुद्रा के0 डी0 बाजपेयी को फर्रुखाबाद से प्राप्त हुई है, इसके पुरोभाग पर ''परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री महाराज हर्षदेवः'' मुद्रालेख एवम् पृष्ठतल पर नन्दी पर आरुढ़ शिव–पार्वती की आकृति अंकित है, इसे 'Unique Gold Coin' की संज्ञा दी गई है और जो 'Indian Numismatic Studies' में प्रकाशित है। उक्त मुद्रा का चिह्नांकन हर्ष चरित के "वृषांकामभिनवघटितां हाटकमयीं मुद्रां'' के विवरण के समस्तरीय है। यह मुद्रा बसलेरा (शाहजहाँपुर) तथा मधुबन (आजमगढ़) के अभिलेखों की इस ऐतिहासिक अभिव्यंजना को समर्थित कर देती हैं कि आधुनिक उत्तर प्रदेश हर्ष के प्रशासन में सम्मिलित था।

13.4 हर्ष की मुद्राएँ

थाने''वर के वर्धन वं''ीय शासक प्रभाकरवर्धन के बाद कन्नौज के मौखरियों का शासन भी वर्धनों के हाथ लग गया। दोनों वंश सम्बन्धी थे। पर मौखरी वंश में किसी उत्तराधिकारी के अभाव में थाने''वर के शासक हर्ष वर्धन को ही मौखरी सत्ता सौंप दी गयी। इससे हर्ष ने अपनी राजधानी अब थानेश्वर के स्थान कनौज बदल लिया। इसे पुलकेशिन द्वितीय के रैहोल अभिलेख में 'उत्तरापथ–पृथिव्याः स्वामी' कहा गया है। पर इसके बहुत कम सिक्के अभी तक प्राप्त हो सके हैं। इसके सिक्कों की अपनी विशेषताएँ हैं।

विशेषताएँ–

1. इसके स्वर्ण तथा रजत प्रकार की कुछ सिक्के प्राप्त हुए हैं। पर इनकी संख्या बहुत कम है। सम्भवतः पूर्व मध्यकालीन शासकों की सिक्कों के प्रति उपेक्षा नीति से यह अछूता नही था क्योंकि तब तक किसी भी राजवंश का एक छत्र राज्य स्थापित नहीं हो पा सका था।
2. यद्यपि अन्तरप्रान्तीय व्यापार प्रचलित था पर दैनिक जीवन में स्वर्ण सिक्कों का प्रचलन लगभग बन्द होने लगा था। इसी से हर्ष के काल में भी अधिकांश चाँदी के सिक्कों का चलन था।
3. तत्कालीन शासक सिक्कानीति स्वयं अपने हाथ में रख कर अपने अधीन टकसाल रखते और अपने ढंग का सिक्का तैयार कराते थे। हर्ष ने भी इसी क्रम में सिक्कों को निर्गत कराया था।
4. हर्ष ने गुप्त कालीन शैली के अनुकरण पर सिक्के चलाये। इनकी अपनी कोई निजी शैली नहीं थी।
5. हर्ष का साम्राज्य सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर था। पर उसके सिक्के लगता है कि सभी जगह प्रचलित नहीं थे। तभी भिटौरा ढेर (फैजाबाद, उ० प्र०) से उसके सिक्के मौखरी शासकों के सिक्कों के साथ प्राप्त हुए हैं। अन्य किसी निधि का ज्ञान इसके सिक्के के संदर्भ में नहीं मिलता।
6. हर्ष के सिक्के शीलादित्य नाम से प्राप्त हुए हैं। इसका उल्लेख ह्वेनसांग ने हर्ष के उपनाम के रूप में किया है। इस के सोने और चाँदी दोनो धातुओं की सिक्के प्राप्त हुए हैं। एक पर 'हर्षदेव' का भी अंकन मिला है। परन्तु स्वर्ण सिक्के अत्यल्प हैं क्योंकि व्यापार में चाँदी का ही आयात होता होगा।
7. इसके सिक्के मध्य भारतीय शैली में बने उत्तर गुप्त शासकों के सिक्कों के समान पृष्ठभाग पर पंख फैलाए मयूर की आकृति अंकित है।
8. इन पर भी गुप्त सिक्कों की तरह उत्कीर्ण छन्दोबद्ध लेख है– 'विजिता वनिर वनिपतिः श्री शीलादित्य दिवम् जयति।' इन पर कई स्थानों पर हर्ष संवत् में तिथि का भी अंकन है।

13.5 हर्ष के स्वर्ण सिक्के –

हर्ष के स्वर्ण सिक्के दो प्रकार के प्राप्त होते हैं – 1. ि''व–पार्वती प्रकार, 2. अ''वारोही प्रकार। इनका विवरण निम्न प्रकार है –

1. शिव–पार्वती प्रकार

पुरोभाग– सिक्कालेख– परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री महाराज हर्षदेव

पृष्ठभाग– नन्दी पर आसीन शिव एवं पार्वती

ऐतिहासिक विवेचन

1. इसे अतिविशिष्ट प्रकार का सिक्का बताया गया है।
2. यह एक मात्र सिक्का ही फरूखाबाद से के0डी0 बाजपेयी को मिला था।
3. हर्षचरित में इस प्रकार के सिक्के का उल्लेख निम्न पंक्तियों से सुमेलित किया जा सकता है–**वृषांकामभिनवघटितां हाटकमयीं सिक्का।**
4. इस सिक्के से प्रकट है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश पर हर्ष का अधिकार था। इसकी पुष्टि उसके मधुबन (मऊ) तथा बासखेड़ा (शाहजहाँपुर) से प्राप्त अभिलेखों से होती है।
5. इससे इस समय शैव धर्म के प्रसार पर प्रकाश पड़ता है।
6. ह्वेनसांग के हर्षवर्द्धन शीलादित्य की जगह यहाँ 'हर्षदेवः' का उल्लेख है जो कनौज का शासक हर्ष है।

2. अश्वारोही प्रकार

पुरोभाग– भाला लिए अश्वारोही राजा, भाला कंधे पर, सिक्कालेख– हर्षदेव

पृष्ठभाग– सिंहासनासीन देवी, बाएँ हाथ में कार्नकोपिया

ऐतिहासिक विवेचना

1. यह हर्षदेव के विजय अभियान का सूचक है।
2. यह गुप्त शैली पर तैयार किया गया है।
3. कार्नकोपिया का अंकन इस पर विदेशी प्रभाव का बोधक है।
4. इस सिक्के का उल्लेख कनिंघम की पुस्तक (Coins of Medieval India) में किया गया है।
5. कनिंधम ने इस हर्षदेव को कश्मीर का शासक माना है जिसका सम्बन्ध काबुल से भी था। इसका ज्ञान कल्हण की राजतरंगिणी से प्राप्त होता है कि हर्ष की रानी वसन्तलेखा का संबन्ध काबुल से था। पर हार्नले ने इस सिक्के का सम्बन्ध कनौज के शासक हर्ष से जोड़ा है। किन्तु बर्न और देवहूति ने इस मत को अस्वीकार किया है। पर शिव–पार्वती प्रकार पर हर्ष के लिए 'हर्षदेव' का उल्लेख हार्नले के मत को पुष्ट करता है। साथ ही डॉ. मुखर्जी के अनुसार हर्षचरिति में हर्ष के लिए हर्षदेव का उल्लेख हुआ है। नौसारी और अफसद अभिलेखों में भी हर्ष के लिए इस नाम का उल्लेख किया गया है।
6. भाला कंधे पर रखने की स्थिति प्रारम्भिक राजपूतों की ओर संकेत करता है जो कुषाण, हूण आदि आक्रमणकारी अब हिन्दू धर्म स्वीकार कर थानेश्वर के दरबार में नायक (राजपूत) थे।

13.6 हर्ष के रजत सिक्के

मिटौरा ढेर से प्राप्त

पुरोभाग– राजा का सिर

पृष्ठभाग– मयूर का अंकन, सिक्कालेख– विजिता बनिरवभिपतिः शीलादित्य दिवम् जयति, कई स्थान पर अंक भी खुदे हैं।

ऐतिहासिक विवेचन

5. ये सिक्के भिटौरा निधि (फैजाबाद जिला, उ० प्र०) से प्राप्त हुए हैं। वहां से मिले 522 रजत सिक्कों में से एक प्रतापशील का है जो बाण के अनुसार प्रभाकरगुप्त का दूसरा नाम था तथा 284 सिक्के श्री शीलादित्य, हर्ष की है।
6. इन पर खुदे अंकों का सम्बन्ध हर्ष संवत् से हैं।
7. ह्वेनसांग ने हर्ष के लिए शीलादित्य का उल्लेख किया है। इस आधार पर इसे हर्ष का सिक्का माना जाता है। पर इस मत पर हार्नले ने आपत्ति किया है। उनके तर्क है कि–

अ. कश्मीरी परम्परागत ग्रंथ में प्रतापशील का ही नाम शीलादित्य दिया गया है। जो विक्रमादित्य के पुत्र कहे गए है।

ब. विक्रमादित्य को इसने हूणों के शासक मिहिरकुल के विरुद्ध स्थापित संघ के नेतृत्व करने वाले यशोवर्मन से समीकृत किया है।

स. हर्ष की उपाधि शीलादित्य का कहीं उल्लेख हर्षचरित में नही है।किन्तु बर्न ने इसका खण्डन करते हुए इसे हर्ष का सिक्का माना है। उनका आधार निम्न हैं –

क. बाण द्वारा प्रभाकरवर्धन के लिए प्रतापशील का उल्लेख तथा ह्वेनसांग द्वारा हर्षवर्धन के लिए शीलादित्य के उल्लेख को अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता।

ख. इन सिक्कों पर जो उपाधियाँ दी गई हैं वे वर्धन वंश के शासक प्रभाकरवर्धन और हर्षवर्धन के लिए सर्वथा उचित हैं।

ग. इन सिक्कों की प्राप्ति हर्ष के साम्राज्य सीमा से हुई हैं और उसके सहयोगी मौखरी शासकों की सिक्कों

के साथ।

डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी ने इसके समर्थन में निम्न तर्क और जोड़ा है कि ये सिक्के गुप्त शासकों की सिक्कों के अनुकरण पर तैयार किए गए हैं तथा ईशानवर्मन और दूसरे मौखरी राजाओं के समान निर्मित हैं। अतः इन्हें हर्ष का ही सिक्का मानना सर्वथा उचित है।

13.7 सारांश

सामान्य रूप से भारतवर्ष में पूर्वमध्य युग का समय गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात छठीं शती ईसवी से प्रारम्भ माना जाता है। इस समय एक छत्र साम्राज्य का सर्वथा अभाव दृष्टिगोचर होता है। अनेक छोटे–छोटे राजवंशों का अभ्युदय राजनीतिक पटल पर हो चुका था, और ये राज्य आपस में सतत–संघर्षशील थे। केवल हर्ष वर्धन ने एकछत्र साम्राज्य का सपना संजोया था किन्तु वह भी दक्षिणी भारत की सीमा को अतिक्रमित करने में अक्षम सिद्ध हुआ। इसीलिए उसके अभिलेखों ने उसे ''सकलोत्तरापथेश्वर नाथ' विरुद् से विभूषित कर तोष प्राप्त करना श्रेयस्कर समझा। यह कहा जा सकता है कि यह युग हिन्दू नरेशों की अवनति का युग था। स्कन्दगुप्त के मृत्यूपरान्त ही गुप्त सत्ता का निरन्तर ह्रास परिलक्षित होता है। इसके चिह्न सिक्कों में भी दृष्टिगत होते हैं। परवर्ती गुप्त कालीन सिक्कों में निरन्तर दुराकृति और धातु–मिश्रण के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। छठीं श0 ईसवी से लेकर बारहवी शती ईसवी के मध्य विशुद्ध स्वर्ण सिक्के तो अत्यन्त दुर्लभ हैं, यहां तक कि रजत और ताम्र मुद्राएँ भी कम ही प्राप्त होती हैं। इनका प्रसार भी राष्ट्रव्यापी नहीं जान पड़ता। किसी एक प्रकार की निश्चित मुद्रा प्रणाली का अभाव था। मुद्राओं की महत्वशीलता इस युग में बाधित हो गई थी।

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

28. मौखरि एवं वर्द्धन वंश के सिक्कों के विषय में वर्णन कीजिये।

....

....

29. हर्ष के कितने प्रकार के सिक्के प्राप्त हुए हैं? टिप्पणी कीजिये।

....

....

30. वर्द्धन शासक हर्षवर्द्धन की मुद्राओं के विषय में विभिन्न इतिहासकारों के मतों का वर्णन कीजिये।

....

....

13.9 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्त परमे''वरी लाल : भारत के पूर्वकालिक सिक्के।

राव राजवन्त एवं राव प्रदीप कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

चक्रवर्ती एस.के. : प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र का अध्ययन।

उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

ओझा, रायबहादुर गौरी''ंकर हीराचन्द्र : प्राचीन मुद्रा।

पाण्डेय, विमले''ा कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

इकाई 14–पल्लव सिक्के

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्दे''य

14.2 पल्लव राजवंश की मुद्राएँ

14.3सिक्कों के प्रकार

14.4 सारांश

14.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.6 संदर्भ ग्रन्थ

14.0 प्रस्तावना

भारतीय इतिहास के सर्वांग स्वरूप के अंकनार्थ उत्तर भारत के साथ–साथ दक्षिण भारत के पुरा–साहित्य एवं पुरातत्व के प्रासंगिक उपादनों की व्याख्या अपेक्षित है। अनेकानेक आर्ष ग्रंथों यथा रामायण, महाभारत, सूत्र साहित्य एवं पौराणिक–परम्परा (''उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चौव दक्षिणं, वर्ष तद् भारतनाम भारती यत्र संततिः'', विष्णु पुराण 3.3.1) के रूप में दक्षिण का महत्व सुरक्षित है।

सामान्यतया भारतवर्ष के उस भू–क्षेत्र को दक्षिण या दक्षिणापथ की संज्ञा दी जाती है, जो नर्मदा नदी के दक्षिण में स्थित है। गोदावरी के दक्षिण का भू–क्षेत्र द्रविड़ संस्कृति के प्रभाव में था जो बहुत दिनों तक आर्यों के क्रिया–कलाप का केन्द्र नहीं बन सका था परन्तु ब्राह्मण काल के पश्चात् दक्षिण भारत में आर्य संस्कृति का संप्रवेश एवं समुन्नयन प्रारम्भ हुआ एवं आर्य तथा द्रविड़ परम्पराओं में पारस्परिक सामंजस्य एवं समन्वय की प्रक्रिया का शुभारम्भ हुआ। अशोक के अभिलेखों की यह सूचना है कि तृतीय शती ईसा पूर्व में मौर्य साम्राज्य मैसूर तक प्रसरित था। अशोक के अभिलेखों में सूदर दक्षिण के चोल, पाण्ड्य इत्यादि राज्यों का उल्लेख संदर्भित है।

सामान्यतया ऐसा मानते हैं कि भारत की प्राचीनतम मुद्राएँ उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत से कम मिली है तथापि इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि दक्षिण भारत में भी प्राचीन आहत मुद्राओं का प्रचलन था परन्तु कालान्तर में इनका प्रचलन दक्षिण में सहसा बन्द हो गया जबकि परवर्ती कालों में अधिक परिष्कृत मुद्राएँ बनाई जाने लगीं और मुद्रा नीति समुन्नत होती रही । कालान्तर में इस भू–क्षेत्र में सातवाहन सिक्के प्रचलन में आए, (जो पूर्व अध्याय में वर्णित है) इन सिक्कों पर नाव अथवा जहाज का अंकन प्राप्त होता है जो आंध्र शासक के सामुद्रिक विजय अथवा सामुद्रिक व्यापार का अभिसूचक माना जाता है।

दक्षिण भारत के प्रारम्भिक स्थानीय सिक्के आकार में अत्यन्त लघु हैं जिनका सम्भावित भार 2 से 3 ग्रेन तक मापा गया है। इनमें बहुसंख्य सिक्के लेख रहित हैं और जिन सिक्कों पर लेखांकन हैं, वे आकार–लघुता के कारण सुपाठ्य नहीं बन सके हैं। विशेष रूप से दक्षिण में आन्ध्र एवम् तमिलनाडु से दक्षिणभारतीय मुद्राओं के साथ–साथ रोमन मुद्राएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हुई हैं। ये मुद्राएँ आगस्टस तथा उसके उत्तराधिकारी शासकों से सम्बन्धित हैं। इन मुद्राओं के भारत में प्रवेश एवं प्रसरण के मूल में व्यापारिक भावना क्रियाशील रही होगी। स्वर्ण, रजत एवं ताम्र तीनों ही प्रकार की दक्षिण भारतीय मुद्राओं का अभिज्ञान हुआ है।

दक्षिण भारतीय मुद्राओं में सर्वप्रथम उन राजवंशों की मुद्राओं कोमीमांसित करना उचित प्रतीत होता है, जो सातवाहन सत्ता के ह्रास के पश्चात् पूर्वी और पश्चिमी दक्कन में छोटे–छोटे राजवंशों के द्वारा चलाए गए थे।सातवाहन–सत्ता के विघटन के पश्चात् दक्षिण में राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया क्रियाशील हो जाती है। आर0 सी0 मजूमदार ने ''The Age ofImperial Unity'' और ''The Classical Age'' में इस प्रवृत्ति का सविस्तारउल्लेख किया है और यह भी स्पष्ट किया है कि सातवाहन–शासन के अधीनस्थ रहचुके उन भू–क्षेत्रों में अनेक छोटे–छोटे राजवंश अभ्युदित हो गए। इन शक्तियों में''**पल्लव**'' ही एक ऐसी राजनीतिक शक्ति थे जिन्होंने एक क्षेत्र विशेष परशताब्दियों तक अपना आधिपत्य कायम रखा। शेष शक्तियाँ अल्पावधि तक हीजीवित रहीं । इनके द्वारा जारी किए गए सिक्कों की समीक्षा इस इकाई में की जायेगी।

14.1 उद्‌देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्‌देश्य पल्लव वंश के शासकों के सिक्कों की उत्पत्ति, तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक, वजन मानक एवं निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

14.2 पल्लव राजवंश की मुद्राएँ

आन्ध्र–सातवाहन सत्ता के पराभव के पश्चात् पल्लवों ने सातवाहन साम्राज्य के दक्षिणी और दक्षिणी पूर्व क्षेत्रों पर आधिपत्य स्थापित कर 'तोण्डैमण्डलम' को केन्द्र मानकर अपना शक्ति–संवर्द्धन किया और 'कांचीपुर' में अपनी राजधानी स्थापित की। परन्तु दुर्भाग्य से इस वंश के प्रारम्भिक इतिहास की तरह ही मुद्रा–शास्त्रीय इतिहास भी संभ्रम–सापेक्ष है।

सर्वप्रथम इलियट ने अपने ग्रन्थ ''Coins of Southern India'' में भारत के पूर्वी तटीय क्षेत्रों से प्राप्त अनेक प्रकार के सिक्कों का कर्तृत्व संबंध या तो कुरुम्बरों से या पल्लवों से स्वीकार किया है। परन्तु इस भू–भाग से प्राप्त विभिन्न प्रकार के सिक्कों का विस्तृत विवरण इनके द्वारा नहीं प्रकाशित किया गया। टी0 देसिकाचारी ने अपने ग्रंथ ''South Indian Coins'' में पल्लव मुद्राओं के विभिन्न प्रकारों का विवरण प्रकाशित किया है, परन्तु इनका क्रम–विन्यास बहुत स्पष्ट नहीं है, जिसके अन्तर्गत मुद्रा प्रकारों को उनके तिथिक्रम के अनुसार सुव्यवस्थित किया जा सके। मुद्रा–समूह में विभिन्न प्रकार के सिक्कों को व्यस्थित करने का एक आधार उनकी शैलीगत विशेषता हो सकती है।

जब पल्लव राजवंश पूर्वी क्षेत्र में समुन्नत–स्तर पर अधिष्ठित हुआ तो सातवाहनों द्वारा जारी 'सिंह और उज्जैन' प्रकार के सिक्कों को प्रारम्भिक पल्लव शासकों ने कृष्णा और गोदावरी जिलों में प्रचलित किया। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि 'वृषभ' ही पलल्वों का 'राजकीय–चिह्न' था, जिसका उत्त्कीर्णन शासनादेश पत्रों तथा सीलों पर भी प्राप्त होता है। परन्तु कतिपय ताम्रपत्र सीलों पर 'वृषभ' के अतिरिक्त किसी दूसरी पशु आकृति का अंकन मिलता है, जो सिंह–सदृश है और जिसका अंकन अनेक मुद्राओं पर भी उपलब्ध है। किसी अन्य सकारात्मक प्रमाणाभाव में प्राप्ति स्थल के आधार पर इन्हें पल्लवों से ही सम्बन्धित स्वीकार किया जा सकता है। देसिकाचारी ने अपने ग्रन्थ ''वनजी प्दकपंद ब्वपदे'' में ऐसा विचार प्रतिपादित किया है कि सिंह प्रतीकांकन प्रकार वाले कतिपय सिक्के मदुरा अथवा कुम्बकोनम से आते थे जो कि पल्लव प्रशासन के अन्तर्गत थे । चोल और पाण्ड्यों के अभ्युदय के पश्चात् इन भू–क्षेत्रों से पल्लवों का आधिपत्य समाप्त हो गया। इन तर्कों से यह स्पष्ट होता है कि 'वृषभ' के अतिरिक्त 'सिंह प्रतीक चिह्न' भी पल्लवों की प्रारम्भिक मुद्राओं पर व्यापक रूप से प्रयोग हुआ था। 'सिंह प्रतीकांकन प्रकार' के सिक्कों के तैथिक अनुक्रम का नेर्धारण अत्यन्त असम्भव है, केवल उनकी बनावट और शैली इस निर्धारण में कञ्चित सहयोग दे सकती है, वह भी केवल इतना कि इसमें कौन सिक्के पूर्ववर्तींऔर कौन अनुवर्ती हैं।

देसिकचारी ने अपने ग्रन्थ में अनेक लेखयुक्त पल्लव मुद्राओं को प्रकाशित किए है। इन्होंने उन मुद्राओं पर कुछ लेख पढ़ेथे जो इस प्रकार हैं – 'श्रीभार', 'श्रीनिधि' इत्यादि। इन मुद्राओं की निर्माण–विधि और शैलीगत विशेषता उपर्युक्त प्रतीक चिह्नों के अंकन वाले मुद्राओं के समस्तरीय है। देसिकाचारी ने 'श्रीभार' को 'महेन्द्र वर्मन' और 'श्रीनिधि' को 'नरसिंह वर्मन द्वितीय राजसिंह' से समीकृत किया था। यही समीकरण श्री निवास गोपालाचारी द्वारा भी समर्थित किया गया था। उन्होंने स्वयं वृषभ अंकित एक दूसरे प्रकार की मुद्रा को विवेचित किया था। जिस पर मुद्रालेख 'वबु' पुरोभाग पर और पृष्ठतल पर व्याघ्र के साथ मत्स्य और जहाज का अंकन है। गोपालाचारी के अनसार इसका कर्तृत्व–सम्बन्ध महेन्द्रवर्मन से था। परन्तु कुछ तथ्यों के अलोक में उपरोक्त मत को सुग्राह्य नहीं माना जा सकता।

(1) पुराभिलेखिक साक्ष्यों के आधार पर महेन्द्रवर्मन की उपाधि 'गुणभार' थी 'श्रीभार' नहीं।

(2) इन उपाधियों को महेन्द्रवर्मन के अतिरिक्त नरसिंहवर्मन प्रथम, परमेश्वरवर्मन प्रथम, नन्दिवर्मन, नरसिंहवर्मन द्वितीय इत्यादि भी धारण करते थे, इस प्रकार विरुदांकित मुद्रा का संबंध उक्त शासकों में किसी से भी हो सकता है।

(3) चट्टोपाध्याय का सुझाव है कि गोपालाचारी द्वारा प्रकाशित मुद्रा का संबंध पल्लवों से तो स्वीकार किया जा सकता है, और पृष्ठतलीय प्रतीक चिह्नांकन व्याघ्र जहाज और मछली यह सूचित करते हैं कि पल्लव शक्ति का विस्तार चोल, पाण्ड्य और चेरों के भू–भाग तक हो गया था, परन्तु इनका संबंध महेन्द्रवर्मन से था, यह संशय का विषय है।

इन मुद्राओं के पृष्ठतल का अंकन चोल मुद्राओं के अंकन के सदृश है। लगभग नवीं शती के मध्यवर्ती चरण में चोल सत्ता में आए थे, परन्तु दसवीं शती से पूर्व चोल मुद्राओं के पर्याप्त साध्य उपलब्ध नहीं हैं। हो सकता है ये मुद्राएँ चोल शासकों के लिए आदर्श रही हों।

मदुरा के पास से कुछ दूसरे प्रकार के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं जिनके पुरोभाग पर 'वृषभ की बैठी हुई' आकृति का अंकन है और पल्लव लेखन शैली में मुद्रालेख 'श्री श्री' पृष्ठतल पर अंकित है। इस मुद्रा को, प्रतीक चिह्न, लिपि और मुद्रालेख के आधार पर तथा प्राप्तिस्थल के आधार पर पल्लवों से संबंधित तो माना जा सकता है, परन्तु इसका प्रचलनकर्त्ता कौन पल्लव शासक था, यह कहना दुष्कर है।

14.3 सिक्कों के प्रकार

तोण्डैमण्डलम को केन्द्र बनाकर पल्लवों ने साम्राज्य विस्तार किया था। इनकी राजधानी कांचीपुरी थी। यहाँ से इनके निम्न प्रकार के सिक्के मिले हैं –

सिंह और उज्जैन प्रकार–

ये कृष्णा एवं गोदावरी जिले में मिले हैं। ये इनकेप्रारम्भिक सिक्के थे। यहाँ पल्लवों का राजचिन्ह वृषभ के स्थान सिंह बनाया गया प्रतीत होता है। सम्भवतः अंकन करने वाले ने वृषभ की आकृति को जो उनकी राजाज्ञों के शीर्ष पर अंकित होता था सिक्कों पर कुछ अन्तर से स्थान दिया है जो सिंह सदृश्य जान पड़ता है। जबकि यह वास्तव में वृषभ ही है।

सिंह चिन्हाकित सिक्के–

कुछ प्रारम्भिक सिक्कों पर सिंह का प्रतीक अंकित है। पर यह नही कहा जा सकता कि इसमें तथा ऊपर के मुद्रा प्रकार में से कौन पहले का है।

वृषभांकित श्रीभार और श्रीनिधि लेखयुक्त सिक्के–

इन सिक्कों का निर्माण – कौशल और शैली पूर्व सिक्कों की तरह है। अन्तर मात्र लेख का है। मुद्राविदों ने श्रीभार की समता महेन्द्र वर्मन तथा श्रीनिधि का नरसिंह वर्मन, राजसिंह द्वितीय से स्थापित किया है। पर महेन्द्र वर्मन की उपाधि 'गुणभार' थी 'श्रीभार' नहीं।

वृषभांकित 'बबु' लेखयुक्त सिक्के–

इसके पुरोभाग पर वृषभ का अंकन और'बबु' लेख है तथा पृष्ठभाग पर व्याघ्र के साथ मत्स और जहाज अंकित है। इसे गोपालाचारी ने महेन्द्रवर्मन की मुद्रा माना है। पर यह उचित नही प्रतीत होता क्योंकि इसकी उपाधि 'गुणभार' थी। इन उपाधियों को अन्य पल्लव शासक नरसिंह वर्मन प्रथम, परमेश्वर वर्मन प्रथम आदि ने भी धारण किया था। इसके पृष्ठभाग का अंकन समुद्री क्षेत्र तक इस शासक का राज विस्तार व्यक्त करता है जहाँ तक पल्लव शक्ति स्थापित हो चुकी थी। पर यह महेन्द्र वर्मन का ही है नहीं कहा जा सकता।

बैठा वृषभ और 'श्री श्री' लेख–

ये सिक्के मदुरा से प्राप्त हुए हैं। प्राप्ति स्थान, अंकन, लेख तथा लिपि के आधार पर तो ये पल्लव शासकों की मुद्रा लगते हैं, पर इसका सम्बन्ध किस पल्लव शासक से था ज्ञात नहीं होता।

14.4 सारांश

यद्यपि दक्षिण भारत से प्राप्त पुरावशेष उत्तर भारत की अपेक्षा अधिक प्राचीन हैं पर ऐतिहासिक दृष्टि से दक्षिण के सम्बन्ध में जो जानकारी मिलती है वह उत्तर की अपेक्षा अधिक पुरानी नहीं है। नन्दों के पहले दक्षिण के इतिहास के विषय में हमारा ज्ञान पूर्णतया शून्य है। अशोक के समय से दक्षिण के इतिहास की जानकारी मिलती है क्योंकि पहली बार उसी के अभिलेखों में चोल, पाण्डय, सत्यपुत्र, केरल, ताम्रपर्णी का उल्लेख आया है जो दक्षिणापथ के राज्य हैं। इन्हीं के द्वारा दक्षिण–पूर्वी एशियाई देशों में भारत का उपनिवेशीकरण प्रारम्भ हुआ था जिससे वृहत्तर भारत की नींव पड़ी।

सिक्कों के इतिहास के लिए यहाँ से प्राचीन सिक्के बहुत कम मिले हैं। जो मिले भी वे हमें कोई जानकारी

नहीं देते। पर इधर खोजियों द्वारा यहाँ से प्राचीन काल के सिक्के प्राप्त किए गए हैं जिनका अध्ययन कुछ दशाब्दों से प्रारम्भ हुआ है। इनसे यहाँ के इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ता है। इन सिक्कों की उत्तरी भारत के सिक्कों से अपनी अलग विशेषताएँ रही हैं।

14.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पल्लव वंश के सिक्कों के विषय में वर्णन कीजिये।

   ....

   ....

2. पल्लव वंश में कितने प्रकार के सिक्के प्राप्त हुए हैं? टिप्पणी कीजिये।

   ....

   ....

3. उत्तर तथा दक्षिण भारतीय मुद्राओं के बीच अन्तर को स्पष्ट कीजिये।

   ....

14.6 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्त परमे''वरी लाल : भारत के पूर्वकालिक सिक्के।

राव राजवन्त एवं राव प्रदीप कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

चक्रवर्ती एस.के. : प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र का अध्ययन।

उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

ओझा, रायबहादुर गौरी''ांकर हीराचन्द्र : प्राचीन मुद्रा।

पाण्डेय, विमले''ा कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

इकाई 15–चोल सिक्के

इकाई की रूपरेखा

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्दे”य

15.2 चोल वंश के सिक्के

15.3 चोल शासकों के सिक्कों का इतिहास

15.4 सारांश

15.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.6 संदर्भ ग्रन्थ

15.0 प्रस्तावना

दक्षिण भारत के तमिल प्रान्त में प्राचीन युग में जो राजवंश उत्कर्ष–परक स्थिति पर आसीन हुए उनमें चोल राजवंश को विशेष उल्लिखित किया जा सकता है। नीलकण्ठ शास्त्री ने अपने ग्रंथ ''The Colas'' में इस वंश के इतिहास पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है। संगम साहित्य में चोलों के प्रारम्भिक इतिहास का वर्णन मिलता है परन्तु प्रामाणिक राजनीतिक इतिहास की जानकारी नवीं शताब्दी में विजयालय के अभ्युदय के साथ मिलती है। चोलो ने स्वर्ण–रजत, और ताम्र तीनों ही धातुओं की मुद्राओं का प्रचलन कराया था।

कतिपय ताम्र सिक्कों का संबंध प्रारम्भिक चोल शासकों से स्थापित करने का प्रयास किया गया है। ये मुद्राएँ तंजोर के सर्वेक्षण शोधों के द्वारा प्रकाश में आईं हैं जिनके एक भाग पर पूँछ उठाए हुए व्याघ्र का अंकन है और दूसरे भाग पर हस्ति या मीन का अंकन प्राप्त होता है। ये मुद्राएँ 'Indian Arechaeological Reports' 1961–62, में प्रकाशित हैं। ऐसा सुझाव प्रस्तावित किया गया है कि व्याघ्र प्रतीकांकन वाली वर्गाकार ताम्र–मुद्राओं को प्रारम्भिक चोलों से संबंधित किया जा सकता है, जिन्होंने व्याघ्र को 'राजचिह्न' के रूप में ग्रहण किया था। यद्यपि कतिपय मुद्राशास्त्री इस समीकरण को संदेहास्पद बताते हैं, उनके तर्क निम्नवत् हैं:–

(1) उपरोक्त मुद्राओं के समतुल्य किसी प्रकार की अन्य मुद्रा का न मिलना इस तादात्म्य को दृढ़ता से स्थापित करने में बाधक है।

(2) तथाकथित मुद्राओं पर अंकित व्याघ्र की आकृति नहीं है, वरन् एक विशेष प्रकार की सिंहाकृति है जो सर्वथा पल्लव मुद्राओं तथा समय–समय पर प्रचलित अन्य मुद्राओं पर भी देखी जा सकती है। इस प्रकार इनका संबंध प्रारम्भिक चोलों की अपेक्षा पल्लवों से स्थापित करना अधिक श्रेयस्कर है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारम्भिक चोल मुद्राओं से संबंधितनिश्चयात्मक तादात्म्य सर्वथा संशयशील है। यद्यपि उत्तर कालीन चोल मुद्राओंके संदर्भ में ऐसा नहीं है। उत्तर कालीन चोल शासकों और उनके द्वारा प्रचलितमुद्राओं में अधिकांश का समीकरण संभव हो सका है। नीलकण्ठ शास्त्री कासुझाव है कि इनका राजचिह्न व्याघ्र था, जो बहुसंख्य ताम्रपत्रों पर पाण्ड्यों की'मीन' तथा 'चेरों' की जहाज के साथ दिखाई देता है। यह पाण्ड्यों तथा 'चेरों' केऊपर राजनीतिक प्रभुत्व का प्रमापक माना जा सकता है।

15.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको चोल शासकों के सिक्कों की उत्पत्ति, तकनीक, वर्गीकरण, प्रतीक, वजन मानक एवं निर्माण से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

15.2 चोल वंश के सिक्के

प्राप्त मुद्रा श्रंखलाओं के आधार पर प्रथम ज्ञात नामा शासक अरिञ्जय का अभिज्ञान होता है। जे0 एन0 एस0 आई0, के इकतीसवें खण्ड में प्रकाशित एक रजत मुद्रा का तादात्म्य प्रस्तुत शासक से स्थापित किया गया है।

इस मुद्रा पर अंकित ''विशिष्ट प्रकार के सिंह'' की आकृति संभवतः विष्णुकुण्डिन और पल्लव प्रतीकों की निरन्तरता की द्योतक बताई गई है। वास्तविक चोल सिक्कों का प्रारम्भ उत्तम चोल (973–85ई०) के सिक्कों के साथ होता है। ''Coins of Southern India'' में इलियट ने एक स्वर्ण मुद्रा का प्रकाशन किया था और इसके भार मान को 50 से 60 ग्रेन के मध्य बताया था। एम0 एच0 कृष्ण और शास्त्री ने इस पर मुद्रालेख ''उत्तम सोलन'' का पाठ प्रस्तावित किया था। इस प्रकार इसे उत्तम चोल के शासन काल में रखने में कोई हानि नहीं दिखाई देती ।

''उत्तम चोल'' विरुदांकित सभी प्रकार की मुद्राओं का संबंध नीलकण्ठ शास्त्री प्रभृति विद्वानों ने केवल उत्तम चोल से ही स्थापित करने का सुझाव नही दिया है, क्योंकि रजत और ताम्र मुद्राओं पर यह विरुद नागरीलिपि में अंकित है। इस प्रकार इनका संबंध राजेन्द्र प्रथम से भी हो सकता है क्योंकि ''उत्तम चोल'' उपाधि चोल शासक राजेन्द्र प्रथम द्वारा भी ग्रहण की गई थी। परन्तु यह तादात्म्य बहुत तर्क संगत नहीं प्रतीत होता क्योंकि चोल सिक्कों पर नागरी लिपि का व्यवहार राजराज चोल के कार्यकाल से दिखाई देता है। ब्रिटिश म्यूजियम मेंसुरक्षित इकलौते प्रकार की स्वर्ण मुद्रा को बिडुल्फ ने प्रकाशित किया था जिस पर मुद्रालेख 'मतिरांटकन' पढ़ा गया है। यह मदुराटण्कन के समस्तरीय है और इससे संबंधित मदुराटण्कन–मादाई का उल्लेख पुराभिलेखों में भी हुआ है जो ''उत्तम चोल'' के शासन काल से संबंधित है। यह सिक्का एलन और एम0 एच0 कृष्ण द्वारा प्रकाशित सिक्के के समरूप है।

सुंग लेखांकित सिक्कों को भी बिडुल्फ ने उत्तम चोल से संबंधित बताया है, परन्तु इस मत का निराकरण शास्त्री, बेसिकाचारी सदृश विद्वानों ने किया है। इनका तर्क है कि (1) विडुल्फ द्वारा 'सुंग' मुद्रा लेख का पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है। (2) विभिन्न प्रजातियों के सिक्के आंध्र देश से प्राप्त हुए हैं जिन पर 'सुंग' मुद्रालेख टंकित है, जो कुलोत्तुंग प्रथम के कार्यकाल से संबंधित होने के निश्चित प्रमाण हैं।

बहुसंख्य स्वर्ण, रजत और ताम्र सिक्कों का कर्तृत्व संबंध राजराज प्रथम (985–1016ई०) से स्थापित किया जाता है। इसने चोल साम्राज्य की सीमाओं को अत्यन्त सुविस्तृत कर दिया। केरल, पाण्ड्य, सिंघल, पश्चिमी गंग इत्यादि पर राजराज का स्थायी रूप से अधिकार हो गया। उत्तर में उसके सैन्याभियान और उसके वर्चस्व स्थापन को संकेतित करने वाले मुद्रा प्रकारों पर उत्तम चोल के शासन काल से चले आ रहे मुद्रा प्रतीक चिह्न व्याघ्र, मीन और जहाज का अंकन प्राप्त होता है। इन पर नागरीलिपि में 'राजराज' का अंकन मिलता है। राजराज की बहुसंख्य ऐसी मुद्राएँ मिली हैं जिस पर खड़ी आकृति या बैठी हुई आकृति का अंकन है। दक्षिण भारतीय मुद्राओं के परिप्रेक्ष्य में यह इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि सर्वप्रथम राजराज के काल में प्रारम्भ की गई थी। इस प्रकार की मुद्राओं में स्वर्ण, रजत और ताम्र सभी मुद्राएँ सम्मिलित हैं।

चट्टोपाध्याय का सुझाव है कि अनगिनत प्रकार की ताम्र मुद्राएँ ''खड़ी आकृति तथा बैठी हुई आकृति के अंकन वाली'' प्राप्त हुई हैं, जिन पर 'राजराज' लेख भी टंकित है, परन्तु एक प्रकार के प्रजाति की मुद्राएँ दूसरे प्रकार के प्रजाति की मुद्राओं से बनावट में सर्वथा भिन्न हैं। चिह्नांकनों में विभेद एक लम्बे परिवर्तन को अभिसूचित करते हैं। भद्दी आकृति और अधिक भद्दी हो गई थी और एक स्तर पर आते–आते सम्पूर्ण आकृति बिन्दुओं और पंक्तियों में ही दर्शित है। उपर्युक्त चिह्नांकनों वाली ताम्र मुद्राएँ, जिन पर राजराज लेखांकन भी सुलभ है, राजराज द्वारा जारी की गई थीं। इस प्रकार की मुद्राओं को प्रवर्तित करने के साथ–साथ सुदीर्घ स्थायित्व और सुविख्यात करने का श्रेय भी राजराज को जाता है। परन्तु उपरोक्त 'प्रकार' की सुविदित सम्पूर्ण वर्ग की ताम्र–मुद्राएँ राजराज के काल में ही जारी की गईं थीं, संदेहास्पद प्रतीत होता है।

एक ऐसी मुद्रा प्राप्त हुई है जिसको लेकर विद्वानों में विवाद है। इस पर परम्परागत व्याघ्र, मीन और जहाज का अंकन है तथा नागरी लिपि में 'युद्धमल्ल' मुद्रालेख सुपाठ्य हो चुका है। इसके तादात्म्य को लेकर अनेक मीमांसाएँ प्रस्तावित की गईं हैं। मुद्रा के पुरोभाग के प्रतीकांकन के आधार पर कतिपय मुद्राशास्त्रियों ने इरो चोल वंश से संबंधित करने का सुझाव दिया तथा कुछ ने 'मल्ल' उपाधि के आधार पर इसे चालुक्य (विशेषकर पूर्वी चालुक्य) वंश से समीकृत करने का प्रयास किया। परन्तु मुद्रालेख और निर्माण–विधि के आधार पर इसे चालुक्यों से संबंधित करना ही युक्तियुक्त है।

नेशनल म्यूजियम कोपेन हेगेन में एक छोटा स्वर्ण सिक्का सुरक्षित है। इसके पुरोभाग पर दो दीपाधारों के मध्य व्याघ्र बैठा हुआ प्रदर्शित है तथा दो पंक्तियों का तमिल में लेख ''चेदि कुल'' अंकित है। लेखांकन के आधार पर इसका तादात्म्य दुष्कर है परन्तु प्रतीकांकन के आधार पर इन्हें चोलों से संबंधित बताया जाता है।

स्वर्ण, रजत और ताम्र मुद्राओं के कतिपय प्रकार के सिक्कों का संबंध राजेन्द्र चोल (1012–1044 ई०) से स्थापित किया जाता है जो सुनिश्चित है। सिक्कों पर परम्परागत प्रतीक चिह्नों का अंकन और मुद्रालेख ''श्री राजेन्द्र'' अथवा ''गंगैकोण्डचोल'' अंकित है। यह नाम पुराभिलेखों में भी संदर्भित है।

राजेन्द्र चोल के उपरान्त राजाधिराज प्रथम, राजेन्द्र द्वितीय और वीर राजेन्द्र प्रथम क्रमशः शासक हुए। राजाधिराज की मुद्राओं में स्वर्ण, रजत दोनों प्रकार की मुद्राएँ उपलब्ध हुई हैं। इनकी मुद्राओं पर ''श्री राजाधिराज'' म (हा) राजाधिराज, एवं केवल 'रा' मुद्रालेख भी प्राप्त होता है। ये सभी प्रकार की मुद्राएँ उत्तरी कनारा से प्राप्त हुई हैं। हो सकता है कि राजाधिराज ने इन्हें कर्नाटक क्षेत्र के लिए जारी किया हो।

दौलेश्वरम् के समुत्खनन से स्वर्ण मुद्राओं की एक बृहद् मुद्रा–निधि प्रकाश में आई है जिससे 'कुलोत्तुंग प्रथम' की मुद्राओं की जानकारी होती है। कुलोत्तुंग पूर्वी चालुक्य शाखा के नरेश राजराज प्रथम का पुत्र था। उसकी माता राजेन्द्र प्रथम (चोल) की पुत्री थी। इस प्रकार यह दोनों वंशों का प्रतिनिधित्वकर्ता था। कुलोतुंग (1070–1122 ई०) के शासनासीन होने के उपरान्त लगभग एक शताब्दी से चोलों के अधीन होते हुए भी वेंगी अब स्वनियुक्त शासक के अधीनस्थ साम्राज्य का एक अंग बन गया । पश्चिम से चालुक्यों का खतरा समाप्त हो गया।

हुल्श के द्वारा दो विशेष प्रकार की मुद्राओं को चर्चित किया गया था, जिसकी निर्माण विधि पूर्वी चालुक्यों (शक्तिवर्मन, राजराज) द्वारा जारी सिक्कों की निर्माणविधि के समस्तरीय है। परन्तु चालुक्यों के 'वराह' के स्थान पर इन पर ''व्याघ्र'' का अंकन है और मुद्रालेख ''चोल नारायन'' उपलब्ध है। हुल्श ने इनका संबंध कुलोत्तुंग प्रथम से स्थापित किया था। हुल्श का तर्क था कि कुलोत्तुंग द्वारा धारण की जाने वाली उपाधि ''राजनारायन'' के सदृश ही उपर्युक्त उपाधि भी है। और उपाधि सादृश्य के कारण इन मुद्राओं को कुलोत्तुंग प्रथम की मुद्रा स्वीकार की जानी चाहिए। परन्तु शास्त्री और टी0 नायर का विचार हुल्श के विरोध में जाता है। नायर ने मद्रास म्यूजियम में सुरक्षित ठीक उसी शैली के दो सिक्कों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है। एक सिक्के पर 'वराह'' और मुद्रालेख ''श्री चुलनरायन'' का अंकन है और दूसरे पर ''व्याघ्र'' एवं ''चालखुरायन'' मुद्रालेख सुलभ है जो ''चालुक्य नारायन'' से संबंधित किया जा सकता है। दोनों विद्वानों ने प्रथम प्रकार के सिक्के का तादात्म्य राजराज प्रथम चोल से तथा दूसरे प्रकार के सिक्के का तादात्म्य जिस पर चालुक्य नारायन लेख अंकित है, पूर्वी चालुक्य नरेश शक्तिवर्मन प्रथम के साथ स्थापित किया है। परन्तु केन्द्रीय प्रतीक चिह्न, निर्माण विधि और भारमान के आलोक में ''चालखुरायन'' विरुदांकित मुद्रा को चोल–चालुक्य शासक कुलोत्तुंग प्रथम के शासन काल में जारी किया हुआ माना जा सकता है।

दौलैश्वरम् मुद्रानिधि से ऐसे भी सिक्के प्राप्त हुए हैं जो बनावट में पूर्वी चालुक्यों के समान हैं। प्रतीक चिह्नों में व्याघ्र, मीन और जहाज का अंकन है, और इन पर मुद्रालेख ''कंगैकोण्डचोलन'', ''मलैन्दुकोण्डचोलन'' के आधार पर इन्हें क्रमशः राजेन्द्र चोल (गंगैकोण्डचोल) और राजाधिराज प्रथम से समीकृत किया गया था। परन्तु बालकृष्ण नायर ने इस समीकरण की संभावना को संशयशील बताया है। इनका तर्क है कि चूँकि ये मुद्राएँ वेंगी में निर्मित की गई थीं इसलिए इन्हें कुलोत्तुंग प्रथम से पहले नहीं ले जाया जा सकता। नायर ने मुद्रा लेख का पाठ 'कंगैकोण्डचोलन' के स्थान पर 'कटैकोण्डचोलन' को स्वीकार किया है। एक तथ्य यह भी ध्यातव्य हो जाता हैकि इन मुद्राओं में एक मुद्रा 'राज' विरुद्रांकित है जो नायर के अनुसार कुलोत्तुंग की उपाधि राजकेसरी की संकेतक हैं। राजेन्द्र प्रथम ने इस उपाधि का प्रयोग कभी नहीं किया। इन तर्कों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत मुद्राओं का संबंध कुलोत्तुंग प्रथम से स्थापित करना ही श्रद्धेय प्रतीत होता है। नायर की ऐसी स्थापना है कि ''मलैन्दुकोण्डचोलम्'' लेखांकित मुद्राएँ भी कुलोत्तुंग प्रथम से ही संबंधित थी क्योंकि यह तमाम आभिलेखिक प्रमाणों से सुस्पष्ट है कि कुलोत्तुंग प्रथम मलैन्वु अथवा चेर का विजेता था। कतिपय कम भार के स्वर्ण सिक्के खुदाइयों से एवं ब्रिटिश म्यूजियम से प्रकाश में लाए गए हैं जिनका कर्तृत्व संबंध भी कुलोत्तुंग प्रथम से स्थापित किया जाता है।

केवल एक प्रकार की ऐसी इकलौती ताम्र मुद्रा प्राप्त हुई है जिसके पुरोभाग की सारी विशेषताएँ चोल

मुद्राओं जैसी हैं और पृष्ठ तल पर लेख ''श्रीकुलोतु'' का अंकन इसके संबंध को कुलोत्तुंग से स्थापित करने के लिए पर्याप्त है।

कुलोत्तुंग प्रथम के बाद के चोल सिक्कों का तादात्म्य बहुत ही अनिश्चित है क्योंकि उन पर या तो कोई लेख नहीं है या लेखाक्षर इतने कम हैं कि उनके आधार पर इनके कर्तृत्व संबंध की स्थापना बहुत सुनिश्चित नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ कतिपय मुद्राओं पर प्राप्त लेख इस प्रकार हैं– 'वी', 'ना', 'चो' इत्यादि।

15.3 चोल शासकों के सिक्कों का इतिहास

चोल सिक्कों का इतिहास निम्न ज्ञात होता हैं :

1. चोलों का उदय तमिल प्रदेश में हुआ था। इनका व्यवस्थित राजनीतिक इतिहास विजयालय के समय से प्राप्त होता है। इसके पूर्व की भी कुछ सिक्के उत्खनन से प्राप्त हुई है। इनकी ताम्र सिक्के तंजौर से प्राप्त हुई है। इन सिक्कों के एक ओर पूँछ खड़ा किए व्याघ्र अंकित है तथा दूसरी और हाथी या मछली का अंकन है। चूँकि व्याघ्र शासकों का राजचिन्ह था अतएवं इन लेखविहीन सिक्कों को चोल शासकों का प्रारम्भिक सिक्का माना गया है। किन्तु इसके मानने के विरोध में दो तर्क दिए जाते हैं:

   (अ) चोल शासकों के बाद के सिक्के इन प्रारम्भिक सिक्कों के आधार पर बनने चाहिए थे। पर ऐसा नही है।

   (ब) व्याघ्रांकन को सही न मानकर उसके स्थान पल्लव सिक्कों की तरह यहाँ सिंह का अंकन है। इससे इन सिक्कों को चोलों की अपेक्षा पल्लवों द्वारा निर्गत मानना उचित है।

इन आधारों पर यह संशयजन्य है कि क्या ये चोलों से सम्बन्धित हैं या पल्लवों से? पर बाद के इनके सिक्कों पर जिन्हें उत्तरकालीन चोल शासकों की सिक्के मानते हैं इस प्रकार का भ्रम व्याघ्र के स्थान सिंह का नहीं होता। वहाँ स्पष्ट व्याघ्र का अंकन है जो चोलों का राजचिन्ह था। अगर उसके साथ कहीं मीन और कहीं जहाज भी अंकित है तो स्पष्ट है कि पाण्डयों के चिन्ह मीन तथा चेरों के चिन्ह जहाज के अंकन का कारण चोलों का पाण्डयों और चेरों पर विजय रहा होगा।

2. चोल राजाओं के नाम के मद्रालेख वाले सिक्के भी प्राप्त हुए हैं जिनका क्रम उत्तम चोल के समय से बैठाया जा सकता है। जिस स्वर्ण मुद्रा का प्रकाशन इलियट ने किया था, उसका वजन 50–60 ग्रेन के बराबर था। उस पर कृष्ण और नीलकण्ठ शास्त्री ने मुद्रालेख 'उत्तम चोल' पढ़ा है। इस आधार पर इसे उत्तम चोल की सिक्के मानना उचित है। पर उत्तम चोल उपाधि अंकित बहुत सी और सिक्के प्राप्त हुई हैं जो ताम्र और रजत की बनी हैं। इन पर यही उपाधि भी अंकित है। रजत और ताम्र की इन सिक्कों को नीलकण्ठ शास्त्री ने उत्तम चोल से सम्बन्धित नहीं बताया है। इसके पीछे कारण है कि ये विरुद रजत और ताम्र सिक्कों पर भी अंकित हैं। साथ ही राजेन्द्र चोल ने भी यही विरुद धारण की थी। अतः ये राजेन्द्र चोल के कहे जा सकते हैं। पर यह उचित नही है क्योंकि इस पर नागरी लिपि में लेख अंकित है। नागरी लिपि का प्रचलन राजराजा चोल के समय से प्रारम्भ हुआ था। अतः ये सिक्के उत्तमचोल के ही रहे होंगे।

एक अन्य मुद्रा पर विडुल्फ ने 'मतिराटंकन' पढ़ा है। यह विरुद अभिलेखों में प्रयुक्त 'मदुरांटकण–मदुराई' के समान है जिसका उल्लेख उत्तम चोल के लिए हुआ है। अतः इस प्रकार की भी सिक्के उसने निर्गत की थीं।

विडुल्फ को कुछ 'सुंग' लेखांकित सिक्के मिले थे जिन्हें उन्होंने उत्तम चोल से जोड़ा है। पर नीलकण्ठ शास्त्री आदि विद्वान इससे सहमत नही है क्योंकि :

(अ) 'सुंग' मुद्रालेख को अशुद्ध पाठ माना जाता है।

(ब) कुलोतुंग के काल के आंध्र प्रदेश में मिले विभिन्न वर्गों के सिक्कों पर 'सुंग' लेख अंकित है। इससे इन्हें कुलोतुंग से सम्बन्धित मानना चाहिए।

(स) राजराज प्रथम चोल की सिक्के भी विभिन्न प्रकार की प्राप्त हुई हैं। ये स्वर्ण रजत और ताम्र की हैं। इसमें एक प्रकार पर व्याघ्र, मछली और जहाज का अंकन है तथा इस पर नागरी लिपि में मुद्रालेख राजराज अंकित

है। यह इसके व्यापक विजय का द्योतक है।

एक प्रकार की इसकी ऐसी सिक्के मिली हैं जिन पर खड़ी तथा बैठी राजा की आकृति अंकित है। इसका महत्त्व इसलिए है कि राजा की आकृति का अंकन यहीं से इस वंश की मुद्रा पर प्रारम्भ होता है। पर चट्टोपाध्याय बहुसंख्य ताम्र सिक्कों पर खड़ी तथा बैठी राजा की आकृति को देखकर इसे पहले वाली मुद्रा से भिन्न प्रकार की मुद्रा मानते हैं। इसका कारण है कि इस वर्ग की सिक्के भद्दे आकार की हैं। इन पर बनावट भी पहले वर्ग की सिक्कों की अपेक्षा अधिक भद्दी हैं। इसमे आगे चलकर इसी समय इन देवताओं की आकृतियाँ बिन्दुदार रखाओं के सहारे तैय्यार की गयी हैं। इन पर भी राजराज अंकित है। अतः ये भी राजराज द्वारा निर्गत मानी जाती हैं।

कुछ अन्य सिक्के भी इसी के नाम के साथ जोड़ी जाती हैं। इस प्रकार की सिक्कों के पृष्ठभाग पर नागरी लिपि में युद्धमल्ल मुद्रालेख है तथा पुरोभाग पर पूर्व सिक्कों की तरह व्याघ्र, मछली और जहाज का अंकन है। यद्यपि इसके पुरोभाग पर बनी आकृतियों के आधार पर इसको कुछ मुद्राविदों ने चालुक्य वंश के शासकों से सुमेलित किया है। पर यह सुमेलन उचित नहीं है। निर्माण, तिथि और लेखन शैली के आधार पर इसे चोल वंश से सम्बन्धित करना ही उचित है क्योंकि राजराज ने केरल, पाण्डय, सिंघल, पश्चिमी गंग आदि पर स्थायी अधिकार स्थापित किया था। इससे इसे 'युद्धमल्ल' कहना अधिक उचित प्रतीत होता है।

एक छोटी स्वर्ण मुद्रा के पुरोभाग पर दो दीपधारकों के मध्य बैठा व्याघ्र प्रदर्शित है तथा पृष्ठभाग पर दो पंक्ति का लेख चेदिकुल अंकित है। इसके प्रतीक के आधार पर यह चोलशासक की मुद्रा लगती है।

3. राजेन्द्र चोल की सिक्कों के पुरोभाग पर परम्परागत चिन्ह अंकित है तथा पृष्ठभाग पर मुद्रालेख – श्री राजेन्द्र या गंगैकोण्ड अंकित है।
4. राजाधिराज की सिक्के स्वर्ण और रजत दोनो की प्राप्त हुई हैं। इनके पुरोभाग पर पूर्ववत् चिन्ह अंकित है तथा पृष्ठभाग पर मुद्रालेख है– श्री राजाधिराज, म (हा) राजाधिराज या केवल रा।
5. कुलोतुंग प्रथम की कुछ सिक्के प्राप्त हुई हैं। यद्यपि इनकी बनावट पूर्वी चचुलक्यों की सिक्कों की तरह हैं पर यहाँ वाराह के स्थान व्याघ्र है और मुद्रालेख चोल नारायन है। हुल्श ने इस प्रकार की सिक्कों को कुलोतुंग प्रथम से जोड़ा है। पर नायर और शास्त्री ने इसका विरोध निम्न आधारों पर किया हैं :

इसी प्रकार की दो और सिक्के प्राप्त हुई हैं जिनमें एक के पुरोभाग पर वाराह का अंकन है और पृष्ठभाग पर सिक्कालेख– श्री चुलनारायन है। दूसरे के पुरोभाग पर व्याघ्र का अंकन है और पृष्ठभाग पर लेख– श्री चोलखुरायन है। पहले प्रकार के मुद्रा लेख का समुलेन राजराज प्रथम चोल से किया गया है तथा दूसरे प्रकार के मुद्रालेख का सुमेलन चालुक्य शासक शक्तिवर्मन प्रथम के साथ किया गया है।

पर चोलुखरायन लेखांकित मुद्रा का सम्बन्ध चोल चालुक्य शासक कुलोतुंग से करना अधिक समीचीन लगता है।

कुछ ऐसे सिक्के दौलैश्वरम् मुद्रानिधि से प्राप्त हुई हैं जिसके अग्रभाग पर व्याघ्र, मछली और जहाज अंकित है तथा पृष्ठभाग पर मुद्रालेख– कंगैकोण्डचोलन, मलैन्दुकोण्डचोलन अंकित है। इन्हें क्रमशः राजेन्द्र चोल और राजाधिराज प्रथम से समीकृत किया है। पर नायर इसके विरोधी हैं। इन्होंने 'कँगैकोण्डोचोलन' पाठ के स्थान 'कटैकोण्डचोलन' पढ़ा है। इनमें एक मुद्रा पर 'राज' अंकित है जो 'राजकेसरी' का संक्षिप्त रूप है जिसे कुलोतुंग प्रथम ने धारण किया था राजेन्द्र प्रथम ने नहीं। अतः यह कुलोतुंग प्रथम की है। दूसरी मुद्रा को भी इसी से सम्बन्धित बताया गया है क्योंकि अभिलेखों के आधार पर यह इसी की उपाधि थी।

एक मुद्रा के पुरोभाग पर चोल सिक्कों के चिन्ह अंकित है और पृष्ठभाग पर मुद्रालेख– श्री कुलोत है। यह स्पष्टतः कुलोतुंग प्रथम की मुद्रा है।

6. इसके बाद के शासकों के सिक्के या तो मुद्रालेख रहित हैं या कुछ अक्षर 'वी', 'ना' आदि लिखे हैं जिससे उनका स्पष्ट समीकरण नहीं खोजा सकता है।

15.4 सारांश

तमिल प्रदेश में चोल–सत्ता की प्रमुखता थी। उनके भी सोने के कुछ सिक्के हैं किन्तु उनमें वैभव का सर्वथा अभाव है। उनमें सोने की मात्रा में विविधता देखने में आती है और कुछ तो सोने की कलई–मात्र जान पड़ते हैं।

उन्हें चाँदी के सिक्के भी प्रचलित करने का श्रेय दिया जा सकता है जो दक्षिण भारत में विरल हैं। इनके सोने और चाँदी दोनों धातुओं के सिक्कों के प्रतीक एकसरीखे हैं। इन दोनों धातुओं के अद्यतम सिक्के उत्तम चोल के हैं जिन पर एक ओर नागरी अक्षरों में उसका नाम उत्तम चोल और दूसरी और एक छत्र के नीचे पाँच लांछनों– (1) दीप–स्तम्भ (2) धनुष (3) बैठा व्याघ्र (4) रेखा और (5) मत्स्य–युग्म की एक पाँत है। इस समूचे अंकन के दोनों ओर चामर का अंकन हुआ है। उसके उत्तराधिकारी राजराज (प्रथम) (985–1016 ई0) ने उत्तम चोल के सिक्कों के पट ओर के प्रतीक को अपने चाँदी और सोने के सिक्कों के दोनों ओर अंकित किया था और उसके नीचे अपना नाम दिया था। इसी भाँत के सिक्के राजेन्द्र चोल (1011–1043 ई0) के भी हैं। उन पर उसका नाम श्री राजेन्द्रः अथवा उसका विरुद गंगैकोण्ड चोलन लिखा मिलता है। सोने के कतिपय सिक्कों पर एक ओर मत्स्य और बैठे व्याघ्र का अंकन और तमिल आलेख चण्ड चोलः है, इन्हें राजाधिराज प्रथम (1018–1042 ई0) का अनुमान किया जाता है।

6 ग्रेन वजन के कुछ ऐसे सिक्के हैं जिनके एक ओर उत्तम चोल के सिक्कों वाला प्रतीक है और दूसरी ओर नागरी में युद्धमल आलेख है। इस प्रकार का विरुद किसी चोल–शासक का ज्ञात नहीं होता, मल्ल शब्द चालुक्यों के विरुद के निकट जान पड़ता है। इस आधार पर अनुमान किया जाता है कि राजेन्द्र चोल ने इन्हें चालुक्य नरेश राजराज नरेन्द्र (1019–1061 ई0) के साथ अपनी बेटी के विवाह के अवसर पर निछावर के निमित्त अथवा किसी अन्य प्रयोजन से बनवाये होंगे। एक ग्रेन से 30 ग्रेन भार के चाँदी के कुछ नन्हें सिक्के उत्तरी कनारा जिले से प्राप्त हुए हैं जिनके एक ओर सिंह अथवा व्याघ्र तथा कटार का अंकन है और दूसरी ओर बड़े सिक्कों पर नागरी में राजाधिराज और छोटे सिक्कों पर केवल रा लिखा है। सम्भक्तः ये सिक्के भी निछावर के निमित्त चोल–विजय के किसी अवसर पर बनाये गये रहे हों।

घटिया सोने, चाँदी और ताँबे के राजराज के एक विचित्र भाँत के सिक्के हैं, जिन पर चित ओर राजा और दूसरी ओर एक बैठे व्यक्ति, शंख और बैठे व्याघ्र का अंकन है। दोनों ओर के ये प्रतीक रेखा–खचित हैं। इन पर पट भाग पर राजराज आलेख है। इस प्रकार के सिक्के सर्वप्रथम कदाचित् पाण्ड्यों ने तिनवेली के कुर्ची–क्षेत्र में प्रचलित किये थे। उन्हीं का अनुकरण इन सिक्कों पर किया गया है। चोल–शक्ति के विस्तार के साथ इस भाँत के सिक्कों का विस्तार हुआ और पीछे चलकर इस भाँत को श्रीलंका के शासकों ने भी अपनाया। इस कारण ये सिक्के श्रीलंका–मानव भाँत के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। इस भाँत के ताँबे के जो सिक्के मिलते हैं, उनकी बनावट में विविधता देखने में आती है। कुछ तो सपाट धरातल के हैं। कुछ आकार में छोटे हैं और उनके दोनों ओर का धरातल वर्तुलाकारउभरा हुआ है। उनके प्रतीकों में भी क्रमिक ह्रास परिलक्षित होता है। इनको देखते हुए जान पड़ता है कि राजराज के बाद भी ये सिक्के दीर्घकाल तक बनाये जाते रहे। इसी ढंग के कुछ अन्य सिक्कों पर मिश्रित तमिल लिपि में श्री कुलोत्तुंग लिखा है। कुछ ऐसे भी हैं जिन पर श्री लंकेश्वर अथवा श्री लंकवीर आलेख है। कदाचित् इन दोनों ही आलेखोंवाले सिक्के राजराज के ही अपने हैं और वे उसके श्रीलंका की विजय से सम्बन्ध रखते हैं।

15.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

31. चोल वंश के सिक्कों के विषय में वर्णन कीजिये।

....

....

32. चोलों के कितने प्रकार के सिक्के प्राप्त हुए हैं? टिप्पणी कीजिये।

....

....

33. चोल काल में सोने के सिक्के को क्या कहा जाता था?

....

15.6 संदर्भ ग्रन्थ

गुप्त परमेश्वरी लाल : भारत के पूर्वकालिक सिक्के।

राव राजवन्त एवं राव प्रदीप कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

चक्रवर्ती एस.के. : प्राचीन भारतीय मुद्राशास्त्र का अध्ययन।

उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

ओझा, रायबहादुर गौरी''ांकर हीराचन्द्र : प्राचीन मुद्रा।

पाण्डेय, विमले''ा कुमार : प्राचीन भारतीय मुद्रायें।

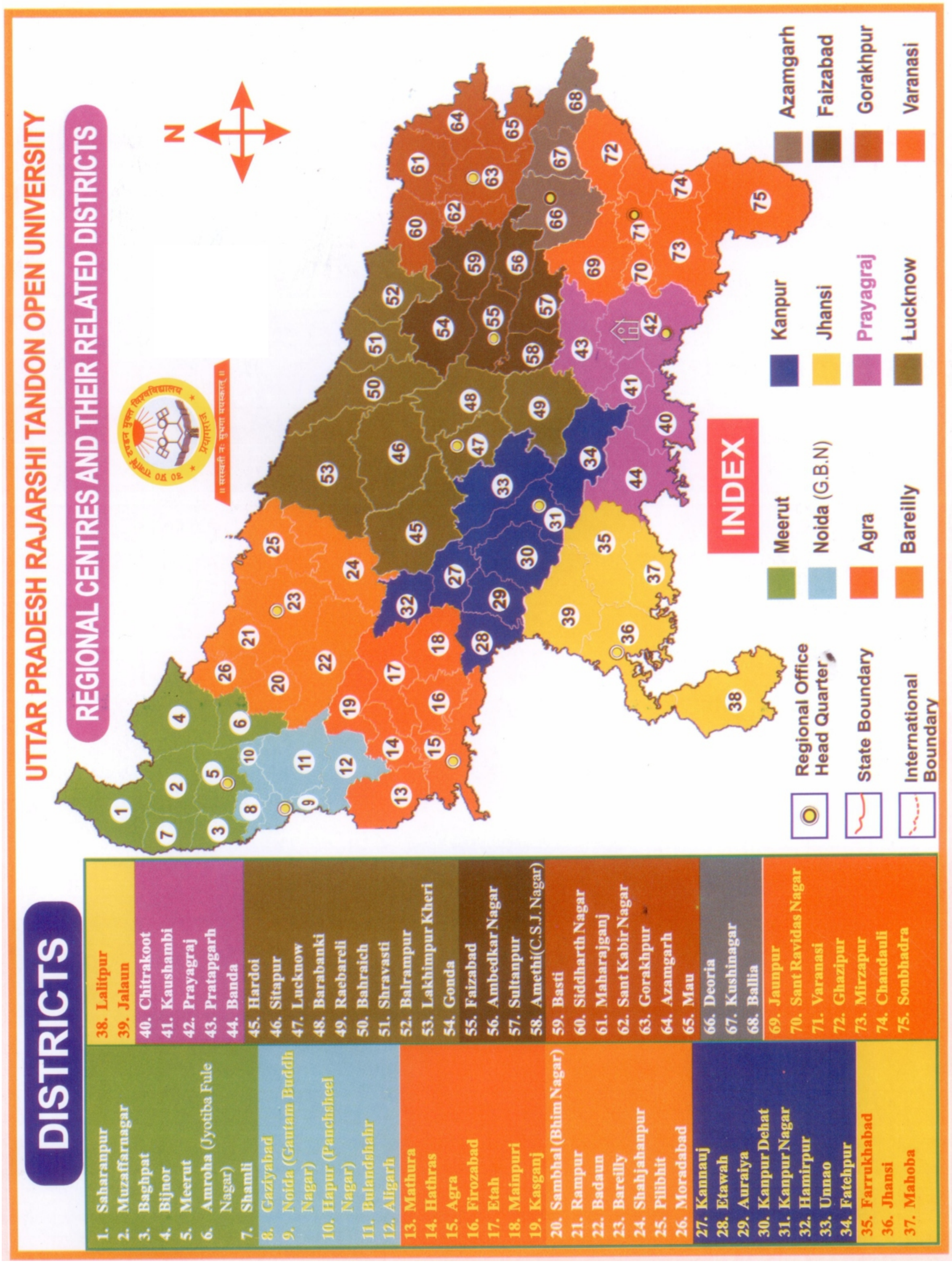

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज – 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी-छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333